Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

अस्ताचल की ओर

CC-0. In Public Dom ... tion ... lwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167886

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ताचल की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ताचल की ओर

[भाग ३]

आर्य साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821400

081
167886
Central Library
167886
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

लेखक

गुरुदत्त

मो. 7065618655, 9213527666
हिन्दी साहित्य सदन
2, बी.डी. चैम्बरस, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड़,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

भारती साहित्य सदन
नयी दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© गुरुदत्त

R
089.9143
GUR-A

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 886982140
Web: aarshsahitya.com

167886

₹1.50-

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 886982140
Web: aarshsahitya.com

प्रकाशक : भारती साहित्य सदन, नयी दिल्ली-११०००१

संस्करण : प्रथम (मार्च, १९८५)

वितरक : भारती साहित्य सदन सेल्स
३०/९०, कनॉट सर्कस, नयी दिल्ली-११०००१

मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

: १ :

पण्डित शिवकुमार को त्रिविष्टप की राजधानी में रहते हुए छत्तीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वह अभी तक भी राजगुरु के पद पर आसीन था। यद्यपि जिस राजा ने उसको इस पद पर प्रतिष्ठित किया था उस राजा संजीवायन लामा का देहान्त हो चुका था। उसका देहान्त तो शिवकुमार के आने के दस वर्ष उपरान्त ही हो गया था। उस समय जो युवराज पद पर था वह इस समय राजा के पद पर आसीन हो राज्य कर रहा था। उसको राज्य करते हुए भी छब्बीस वर्ष हो गये थे।

संजीवायन लामा ने तत्कालीन महामन्त्री त्रिभुवन थापा के पुत्र कीर्तिमान को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया था। वही इस समय त्रिविष्टप का राजा था। महामन्त्री त्रिभुवन का भी बहुत पहले देहान्त हो चुका था।

इस अवधि में राज्य और देश की स्थिति में भी पर्याप्त अन्तर आ चुका था। उस समय, जब शिवकुमार इस देश में आया था, इस देश की जनसंख्या बहुत कम थी। किन्तु अब इसके ग्रामों और नगरों की जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। विगत तीस वर्षों में तो इस देश की जनसंख्या लगभग द्विगुणित हो गई थी। तदपि राज्य-व्यवस्था इतनी सुव्यवस्थित थी कि न तो कोई व्यक्ति भूखा सोता था और न ही कोई निर्वस्त्र रहता था। जीवन अति सुलभ और सरल था। उस राज्य में अन्न, वस्त्र और रहने के लिये निवास योग्य भूमि आदि बड़ी ही सुगमता से उपलब्ध थे।

देश में व्यापार पनप रहा था। उद्योगधन्धे भी प्रगति कर रहे थे। देश-विदेश से व्यापार किया जाता था। उस देश का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसे बेकार अथवा बेरोजगार कहा जा सके। परिवारों में सुख और शान्ति थी। इस प्रकार यह देश सुख और आनन्द का धाम बना हुआ था।

राज्य के विद्वान् मन्त्रियों के परामर्श पर जब देश के चिकित्सालय, आतुरालय और रुग्णालय आदि राज्य की ओर से चालू किये गये थे तो उस समय महाराज ने अपने राजगुरु से प्रश्न किया था, "पण्डितजी! इनकी स्थापना से देश में मृत्यु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या पर नियन्त्रण लग जायेगा, प्रजा स्वस्थ रहेगी, इससे जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होगी और उसका परिणाम होगा बेकारी का बढ़ना और फिर उससे लोग भूखे मरने लग जायेंगे ? आवश्यक वस्तुओं की माँग बढ़ जायेगी तो वस्तुओं के मूल्य बढ़ जायेंगे, प्रजा भोजन और वस्त्र आदि का अभाव अनुभव करने लगेगी ?"

शिवकुमार का कहना था—"महाराज ! वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि का जनसंख्या में वृद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं है। अपितु इसका मुख्य कारण है अयोग्य व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि। अन्नादि आवश्यक सामग्री यदि सस्ती भी हुई किन्तु जनता अयोग्य और अज्ञानी हुई तो वह भूखी और दुःखी ही रहेगी। जनसंख्या में वृद्धि से तो अन्न के उत्पादकों में ही वृद्धि होती है। हाँ, यदि मातायें सन्तान उत्पन्न करती जाएँ और पिता अपनी सन्तान को उचित शिक्षा न दें तो देश में धन-धान्य में वृद्धि होने पर भी भुखमरी का वातावरण बन जायेगा।

"अयोग्य जन ही भूखे मरते हैं। जो योग्य होता है वह जितना भोग करता है उससे कहीं अधिक उत्पादन करता है। परमात्मा ने कहिये अथवा कि प्रकृति ने, खाने वाले प्रति एक मुख के साथ काम करने वाले दो हाथ दिये हैं। हाथों से काम लेने की योग्यता और विधि का ज्ञान होना परमावश्यक है। इसका ज्ञान शिक्षा प्राप्त करने से मिलता है।

"ईश्वर की कृपा है कि आपको तो बहुत ही योग्य और विद्वान् शिक्षक उपलब्ध है।"

पण्डित शिवकुमार का कहना उपयुक्त ही था। आचार्य बृहस्पति के प्रयत्नों से विगत तीस वर्षों में देश का उत्पादन प्रजा की आवश्यकता से कहीं अधिक होता रहा था।

महाराज संजीवायन लामा तो पण्डित शिवकुमार और आचार्य बृहस्पति के प्रयास आरम्भ करने के कुछ ही वर्ष उपरान्त ही परलोक सिधार गये थे। उनके स्थान पर महामन्त्री त्रिभुवन थापा का पुत्र कीर्तिमान थापा राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। राजकुमार कीर्तिमान को पण्डित शिवकुमार ने शिक्षित किया था और वह न्यायशास्त्र का ज्ञाता था। यही कारण था कि वह अपने देश की गाड़ी को बड़ी सरलता और सहज ही सफलता की ओर लिये चला जा रहा था।

बृहस्पति की दो सन्तान थीं। एक पुत्र था और एक पुत्री। उसके पुत्र का नाम था शान्तिदेव और पुत्री का नाम कमलिनी। पुत्री का यह नाम बृहस्पति की इच्छा पर रखा गया था।

बृहस्पति द्वारा अपनी कन्या का नाम कमलिनी रखने के कारण को पण्डित शिवकुमार भली-भाँति समझता था। ऐसा विश्वास था कि उस कन्या में भारत के दिवंगत सम्राट समुद्रगुप्त के महामात्य हरिषेण की धर्मपत्नी की आत्मा निवास करती है। बृहस्पति को इसका भान हो गया था। अतः नामकरण के अवसर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वृहस्पति ने 'कमलिनी' नाम का प्रस्ताव किया तो एक बार पण्डित शिवकुमार ने जिज्ञासावश उसके मुख की ओर देखा था और फिर उसके भाव को समझकर उसने इस विषय पर कुछ न पूछना ही उचित समझा था।

महाराज कीर्तिमान के तीन सन्तान थीं। दो पुत्र और एक कन्या। पुत्रों के नाम थे अंशुमान और रविमान तथा कन्या का नाम था कृष्णा।

पण्डित शिवकुमार ने अपने निवासस्थान से चौथाई कोस के अन्तर पर आरम्भ में जिस विद्यालय की स्थापना की थी, आज उसका रूप बड़ा विशाल हो गया था। इस समय उसमें पाँच सौ से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उस विद्यालय में अधिकांशतया वे ही विद्यार्थी थे जो दिन-भर अपनी जीविका के अर्जन में संलग्न रहते थे और सायंकाल वे अपने ज्ञानवर्द्धन का कार्य करते थे।

देश के विभिन्न स्थानों पर इसी प्रकार के अन्य विद्यालय भी थे। देश के निवासी अपने दस वर्ष से अधिक आयु के बालकों को किसी व्यवसाय में नियुक्त कर रात्रि के समय इस प्रकार की शिक्षा दिलवाना अधिक उपयुक्त समझते थे।

पण्डित शिवकुमार का पूर्ण परिवार अभी भी उसी भवन में रहता था जो उसने आज से छत्तीस वर्ष पूर्व आकाशगंगा के किनारे बनवाया था। वह ल्हासा से एक कोस के अन्तर पर था।

उसी प्रकार पण्डित शिवकुमार की दिनचर्या में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। वह वही थी जैसी कि आज से चालीस वर्ष पूर्व थी। रात्रि का आधा प्रहर रहते वह शय्या त्याग देता और फिर अपने नित्यकर्म में प्रवृत्त हो जाता था।

इन्हीं दिनों एक दिन की बात है कि पण्डित शिवकुमार प्रातःकाल अपनी समाधि से उठा तो उसने देखा कि वृहस्पति उसके सम्मुख बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

"क्यों, आज ध्यान, धारणा का अभ्यास नहीं किया ?" पण्डित शिवकुमार ने उससे प्रश्न किया।

वृहस्पति बोला, "पिताजी ! दिनचर्या तो नित्य की ही भाँति आरम्भ की थी किन्तु आकाश में कुछ हलचल होने से मेरी समाधि भंग हो गई। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि कोई एक नक्षत्र पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा है। उसे देख मुझे ऐसा आभास हुआ कि यहाँ किसी प्रकार की हलचल होने वाली है।"

"इसका क्या अभिप्राय समझे हो ?"

"है तो वह नक्षत्र ही; परन्तु उस पर एक आत्मा का वास है, जो इस भूतल पर उतरना चाह रहा है।"

"तो फिर ?"

"मुझे ईश्वरीय प्रेरणा मिल रही है कि मुझे उस आत्मा के पथ का प्रदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए यत्न करना चाहिये।"

शिवकुमार ने यह सुना तो कुछ सोच में पड़ गया। उसने अपने पुत्र को समझाते हुए कहा, "सुनो, मैं तुम्हें अपने अनुभव की बात बताता हूं। वर्तमान समय में मानव-समाज में भावना का आवेश होने लगा है। किन्तु भावना प्रायः बुद्धि से अविचारित होती है।

"इस भावना के कारण ही मत-मतान्तर के आधार पर जन-जन में भेदभाव उत्पन्न होने लगा है। भारत में यह विभेद महात्मा बुद्ध के काल से आरम्भ हुआ है।

"यद्यपि महात्मा बुद्ध का यह आशय नहीं था। उन्होंने तो कर्म और व्यवहार में शुद्धता और सरलता ही लाने का यत्न किया था। परन्तु उस व्यवहार में सरलता का कोई दिग्दर्शन न रह पाने से शुद्धता और सरलता केवल नाम की ही रह गईं और 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि' का घोष प्रमुख हो गया है। उससे श्रद्धा में अपार वृद्धि हुई है किन्तु आचरण पतन की ओर प्रवृत्त हो गया है।

"समाज में मानव पथ-प्रदर्शन तो सामयिक ही होता है, स्थायी पथ-प्रदर्शन धर्म-साहित्य होता है। जब तक महात्मा बुद्ध का जीवन रहा, तब तक किसी सीमा तक उनका जीवन उनके शिष्यों और भक्तों का पथ-प्रदर्शन करता रहा किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त ऐसी कोई वस्तु नहीं रही जो उनका पथ-प्रदर्शन कर पाती। प्राचीन धर्मग्रन्थों पर से बुद्ध के जीवनकाल में ही आस्था को समाप्त कर दिया गया था। स्वयं बुद्ध ने कुछ नवीन रचना की नहीं।

"इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बौद्ध समाज दिशाविहीन हो गया और उसके फलस्वरूप समस्त समाज ही दिशाविहीन हो गया। इसका यह भी दुष्परिणाम हुआ कि शताधिक मत-मतान्तरों की सृष्टि हो गई। बुद्ध से पूर्व प्रजा में एक आधार पर ही बंटवारा पाया जाता था। वह आधार था कर्म का। कर्म के आधार पर बंटवारा होता था। संसार में दो ही प्रकार के कर्म हैं। एक कर्म होता है दैवी और दूसरा होता है आसुरी। इसके आधार पर प्रजाजन या तो दैवी स्वभाव के होते थे या फिर आसुरी स्वभाव के। परन्तु जब से भावनाओं का आवेश हुआ है तब से दलबन्दियां होने लगी हैं जो कि आधाररहित हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि लोग बुद्धियुक्त व्यवहार को छोड़कर दल-बन्दियों के पीछे चल पड़े हैं।

"इसकी जड़ें बड़ी गहन पैठ गई हैं। अब इस समय समझाने से उसका कुछ भी प्रभाव नहीं होगा। बुद्धिरहित विचार करने से तो भावना अटल ही बनी रहती है और फिर सब अपनी-अपनी भावना के अनुसार व्यवहार करते हैं। किसी दूसरे की कोई सुनने को तैयार ही नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस कारण मुझे सन्देह है कि तुम्हारा उसके पीछे जाना किसी प्रकार से भी लाभदायक सिद्ध हो। जो लोग बुद्धि से विचार कर अपना कार्य करते हैं उनको तो समझाया जा सकता है; किन्तु जो भावना के पीछे दौड़ा करते हैं, उनको समझाने का कोई साधन नहीं है।

"इस पर भी मैं यह समझता हूं कि अपनी अन्तरात्मा के अनुसार कार्य करने में किसी प्रकार की हानि नहीं है। अन्तरात्मा की प्रेरणा पर चलना ही चाहिये। इसमें सफलता अथवा असफलता का विचार छोड़कर निष्काम भाव से कर्म करना श्रेयस्कर होता है। यदि सफलता नहीं मिली अथवा असफल सिद्ध हुए तो उस अवस्था में निराश भी नहीं होना चाहिये।"

अपने पिता का इस प्रकार का विश्लेषण सुनकर बृहस्पति ने कहा, "पिताजी! हम ब्राह्मण हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि जहां शिक्षा देने का अवसर उपलब्ध हो वहां निस्संकोच भाव से शिक्षा देने का यत्न करना चाहिये।

"आपकी कृपा से मैं इतना दुर्बल हूँ नहीं कि जो असफलता मिलने पर निराश होकर दुःख का अनुभव करने लगूंगा।"

"किन्तु प्रश्न यह है कि जो तुमने देखा है, उसे तुम कहाँ पाओगे और फिर किस प्रकार उसका पथ-प्रदर्शन करोगे?"

"मैं तो उसके जन्म-स्थान पर ही जाऊँगा और फिर वहीं से उसका पथ-प्रदर्शन करना आरम्भ कर उसे निरन्तर कल्याण के मार्ग पर लगाने का यत्न करूँगा।"

"तुम्हारा परिवार?"

"पत्नी तो अपने बच्चों के पालन-पोषण में ही आनन्द का अनुभव करती है। पुत्र भी अपने जीवन-कार्य में लीन हो गया है। उसने भी अपना उद्देश्य इस देश की शिक्षा की गाड़ी को दिशा प्रदान करना निर्धारित कर लिया है।

"इस प्रकार मैं एक प्रकार से स्वतन्त्र जीव हो गया हूँ और शीघ्र यहां से प्रस्थान करना चाहता हूँ। जिधर वह नक्षत्र जा रहा है, मैं उधर ही प्रस्थान करूँगा।"

अपने पुत्र की बात सुनकर पण्डित शिवकुमार उसके मुख की ओर देखने लगा। फिर उसको विचार आया कि उसके पुत्र बृहस्पति की आत्मा उसकी अपनी आत्मा से बहुत उन्नत अवस्था में है। इसलिये उसने भी यही सोचा कि उसको अपने साथ बाँधकर रखना उचित नहीं होगा।

यह विचार कर पिता ने अपने पुत्र से कहा, "जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम मुझसे अधिक ज्ञानवान हो। अतः तुम स्वयं विचार कर सकते हो कि तुम्हारे लिये क्या करणीय है और फिर तुम उसको किस प्रकार कर सकते हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिता से इस प्रकार सहज ही अवकाश मिल जाने पर बृहस्पति प्रसन्न था। वहाँ से वह अपनी माता के समीप गया। उसकी माता चन्द्रमुखी अपनी पुत्रवधू सुन्दरी के समीप बैठी किसी पुस्तक का पाठ अपनी पुत्रवधू सुन्दरी से सुन रही थी।

बृहस्पति ने द्वार पर खड़े होकर पूछा, "माँ! मैं भीतर आ सकता हूँ?"

"क्यों, कोई विशेष कार्य है?"

"हाँ माँ!"

"ठीक है, आ जाओ। तुम्हारी पत्नी आज मुझे कालिदास सुनाकर समझा रही थी। बहुत रसमय है। फिर इसके समझाने का ढंग भी उतना ही रसमय है।"

"मुझे खेद है कि मेरे कारण आपके स्वाध्याय में विघ्न उपस्थित हो गया है; किन्तु मैं आप लोगों को एक अत्यावश्यक सूचना देने आया हूँ।"

"हाँ, बोलो।" माँ ने कहा।

तब तक बृहस्पति अपनी माता और पत्नी के मध्य रिक्त स्थान पर बैठ गया था। माँ के कहने पर उसने बताया, "माँ! मैं शीघ्र ही विदेश-यात्रा पर जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"कहाँ?"

"यह बता पाना सम्भव नहीं है। अन्तरिक्ष से संकेत मिला है कि मुझे विदेश जाने के लिए तैयार रहना चाहिये। अतः मैंने अपने जाने की तैयारी कर ली है।

"उसी के आधार पर आप लोगों को यह सूचना देने चला आया हूँ।"

इससे पूर्व भी बृहस्पति कभी-कभी अन्तरिक्ष के समाचार सुनाता रहता था। वह कहा करता था कि अग्नि और इन्द्र उसके लिए अन्तरिक्ष से सन्देश लाया करते हैं। ये उसके लिए वैकुण्ठ निवासियों के सन्देश लाते हैं। अतः आज जब बृहस्पति ने अपने जाने की बात कही तो उसका आशय उसकी माता और पत्नी दोनों ही समझ गयी थीं। जो सन्देश उसको प्राप्त होते थे वे प्रायः उसकी दिनचर्या से ही सम्बन्धित होते थे।

आज भी जो बात बृहस्पति ने की वह उसी प्रकार कही थी जैसे कि वह पहले कहा करता था। उन प्राप्त होने वाले सन्देशों से उसकी जीवनचर्या में किसी प्रकार कोई अन्तर नहीं आता था। इसलिये उसकी माँ ने कहा, "हाँ, बोलो, हम सुन रहे हैं। तुम यह बताओ कि जा कहाँ रहे हो?"

"यह तो अभी मुझे भी विदित नहीं है।"

"फिर किस दिशा की यात्रा करोगे?"

"अभी तक तो यही सन्देश मिला है कि मुझे जाने की तैयारी करनी है। एक नक्षत्र है, जो रात्रि के तृतीय प्रहर के आसपास उदय होता है। वह मेरा पथ-प्रदर्शन करेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर उसकी पत्नी ने पूछा, "तो क्या अभी तक उसने किसी पथ का निर्देश नहीं किया ?"

"नहीं।"

"तब तो मैं भी आपके साथ चलूँगी।"

"तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है।"

"मेरी आवश्यकता आपको नहीं है अथवा मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है?"

"आदेश देने वाले को तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।"

"कौन है वह ?"

"अन्तरिक्ष की शक्तियाँ हैं। अनेक शक्तियाँ निर्देश करती हैं, इन्द्र हैं, अग्नि हैं, वायु हैं। इनमें से किसका निर्देश है, अभी तो यह भी विदित नहीं हो पाया है। हाँ, इतना मैं जानता हूँ कि अन्तरिक्ष की ये शक्तियाँ जड़ हैं। अतएव ये स्वतः कुछ भी नहीं जानतीं। इनके पीछे जो सन्देश देने वाली शक्ति है वह आदि शक्ति है। उसे परमात्मा कहते हैं।"

बृहस्पति की पत्नी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसे कुछ अस्वाभाविक-सा लगा। उसने अपनी सास से कहा, "माताजी ! आपको इनके खाने-पीने का कुछ विशेष ध्यान रखना चाहिये। मुझे कुछ ऐसा अनुभव होने लगा है कि इस देश के दूध-घी में अब वह शक्ति नहीं रह गई है जो कि पहले होती थी।"

यह सुनकर चन्द्रमुखी को हँसी आ गयी। उसने कहा, "बृहस्पति ! तुमने सुन्दरी के साथ विवाह किया है। विवाह के समय अग्नि को साक्षी कर तुम दोनों ने शपथ ली थी कि तुम दोनों एक-दूसरे के पूरक बनोगे। तुम्हारे मार्ग एक होंगे, तुम्हारा रहन-सहन एक होगा, तुम्हारा खान-पान एक होगा।

"इसलिये मैं यही उचित समझती हूँ कि तुम दोनों को पृथक् में बैठकर विचार-विमर्श कर लेना चाहिये। सुन्दरी सदा तुम्हारा साथ देने के लिए तत्पर रहती है। इस समय भी वह यही चाहती है कि वह तुम्हारे साथ एक होकर रहे। यही उसके कहने का आशय है।"

"हाँ माँ ! तुम ठीक कहती हो। हम दोनों एक प्राण दो शरीर हैं। कम से कम इस जीवन में तो यह है ही। इस जीवन में हमने साथ-साथ रहने का संकल्प लिया है, शपथ ली है। मैं तो आगामी जीवन में भी इसकी ही अपनी जीवन-संगिनी के रूप में कामना करता हूँ। परन्तु वह मेरे अधीन नहीं है।"

"तो तुम्हारे अधीन क्या है ?"

"मेरे अधीन यही है कि मैं प्रायः नित्य घर से बाहर अपने कार्य पर जाता हूँ और सायंकाल कर लौट आता हूँ।

"यही मैं अब करने का विचार कर रहा हूँ। यदि एक सायंकाल न लौटूँ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी सायंकाल लौट आऊँगा। मैं अभी इस जीवन का भोग करने वाला हूँ और इसमें यह मेरी सह-धर्मिणी है।"

वृहस्पति की बात सुनकर सुन्दरी आश्वस्त हुई। उसे सान्त्वना मिली कि उसका पति उसको छोड़कर जा नहीं रहा है। यह वह अनुभव करती थी कि अपने विवाहित जीवन में कभी एक क्षण के लिए भी वृहस्पति ने अपने कथन के विपरीत कुछ नहीं किया था। उसको अपने पति के प्रति और अधिक लगाव का अनुभव होने लगा। वह मन ही मन मुस्करा रही थी।

चन्द्रमुखी ने वृहस्पति के कथन को सुना और उस पर उसने जब सुन्दरी के मुख पर अनुकूल प्रतिक्रिया देखी तो उसको भी सन्तोष हुआ। उसने भी यही समझा कि बात बन गई है।

उसने यही उचित समझा कि पति-पत्नी परस्पर पृथक् में वातचीत कर लें। इसलिये उसने कहा, "तब तो ठीक है। तुम अनुमान से अपनी पत्नी को बता देना कि अपनी यात्रा से कब तक लौटने की आशा करते हो, जिससे कि उसका मन निश्चिन्त हो जाए।" इतना कहकर चन्द्रमुखी वहाँ से उठ गई।

उस समय सुन्दरी और वृहस्पति में विशेष बात नहीं हुई। किन्तु रात्रि में दोनों दम्पति परस्पर विचार-विनिमय करने लगे। एक ओर वृहस्पति और सुन्दरी थे तथा दूसरी ओर पण्डित शिवकुमार और चन्द्रमुखी थे।

यह परिचर्चा रात्रि को सोने से पूर्व हुई। चन्द्रमुखी ने अपने पति से कहा, "वृहस्पति कह रहा था कि वह कहीं विदेश जाने का विचार कर रहा है।"

"हाँ, मुझे भी उसने बताया था। मैं तो यह समझा हूँ कि वह किसी ईश्वरीय कार्य से जा रहा है।"

"किन्तु देव ! भविष्य के विषय में तो परमात्मा भी निश्चयपूर्वक कुछ कह नहीं सकता। जिस प्रकार हम अपने कार्यों से भविष्य की योजना बनाते हैं वैसे ही वह भी अपनी योजना बनाता है और फिर अपने ऋतों के अनुसार उसको चलाने लगता है।"

शिवकुमार ने अपनी पत्नी का समाधान करते हुए कहा, "ऋत परमात्मा की शक्ति है, जिससे मनुष्य कार्य करता है। शक्ति तो परमात्मा की है परन्तु मनुष्य अपने कार्य की दिशा निर्धारित करने के लिए स्वतन्त्र होता है। वह ईश्वरीय शक्ति का प्रयोग तो करता है परन्तु यह वह अपनी रुचि और बुद्धि के अनुसार ही करता है।

"वृहस्पति ने यह आभास दिया है कि कोई प्रबल इच्छा वाला आत्मा इस लोक में आ रहा है। वह कुछ अनिच्छित कार्य न करने लग जाए, इस कारण ईश्वर वृहस्पति को प्रेरणा दे रहा है कि वह उस जीव का भली प्रकार मार्गदर्शन करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तदपि क्या होगा, वृहस्पति उसके मार्गदर्शन में कितना सहयोगी सिद्ध होगा, यह न तो वृहस्पति के अधीन है और न ही इस विषय में परमात्मा कुछ कर सकता है।

"मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। उसे कर्म करने का सामर्थ्य ईश्वर प्रदान कर रहा है और वह मार्गदर्शन भी कर रहा है। इस प्रसंग में यह मार्गदर्शन वृहस्पति के माध्यम से हो रहा है। तदपि कार्य करने वाला कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है, किन्तु उन कर्मों का फल भोगने में तो वह ईश्वर के ऋतों के अधीन है।"

"तो आपको कैसा अनुभव हो रहा है? क्या कुछ शुभ नहीं दिखायी देता?" चन्द्रमुखी ने अपनी आशंका व्यक्त करते हुए अपने पति से प्रश्न किया।

शिवकुमार ने अपनी पत्नी का समाधान करते हुए कहा, "मानव-समाज इस समय चिकनी ढलान पर पहुँचकर नीचे को फिसलता जा रहा है। इस ढलान से फिसलकर मनुष्य गहनतम गर्त में भी जा सकता है।

"ईश्वर जीव का सयुजा और सखा होने से मानव की सहायता करना तो चाहता है और वह चाहता है कि वह उस गर्त में न गिरे। उसे वह बचाना भी चाहता है। किन्तु अपने इस प्रयत्न में वह सफल हो भी पायेगा अथवा नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

यह सुन चन्द्रमुखी आश्चर्य व्यक्त करती हुई कहने लगी, "बड़ी विचित्र बात है। वह सर्वशक्तिमान् होते हुए भी मनुष्य जिस अनिच्छित प्रवाह की ओर बहता चला जा रहा है, उससे वह उसको रोक नहीं सकता?"

"हाँ, यह नियम है। उसका कारण यह है कि मनुष्य का जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र होने से मनमानी करने लगता है और कर्म करने के उपरान्त उसका फल तो अवश्यम्भावी है। अपने किये हुए कर्म का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ेगा।"

इससे चन्द्रमुखी का समाधान हो गया। उसने अपने मन की बात पूछते हुए कहा, "आपको क्या दिखाई देता है? वृहस्पति अपने इस नवीन कार्य से कब तक वापस आ जायेगा?"

"वृहस्पति लौट तो आयेगा, इसमें सन्देह नहीं है; किन्तु इसमें कुछ समय लगेगा।"

अपने पति की बात सुनकर चन्द्रमुखी कुछ उदास-सी हो गयी। उसने पूछा, "मेरे जीवनकाल में वह लौट आयेगा कि नहीं?"

शिवकुमार कुछ विचार करने लगा। फिर उसने कुछ सोचकर कहा, "यह तो ईश्वर का विधान है कि वह तुम्हारे और सुन्दरी के जीवनकाल में लौट आयेगा। इस पर भी इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ बता पाना मेरे लिये सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है।"

अपने पति का विश्लेषण सुनकर चन्द्रमुखी को अधिक प्रसन्नता नहीं हुई। किन्तु वह समझती थी कि इसमें उसके पति का क्या दोष है और न ही वह बृहस्पति का दोष देख रही थी। वह जानती थी कि ईश्वरीय नियमों के सम्मुख किसी का वश नहीं चलता। ईश्वरीय विधान महान् भँवर की भाँति घूमता है और मनुष्य को अपनी लपेट में ले लेता है। इस कारण वह समझती थी कि अब प्रतीक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

उधर अपने शयनागार में बृहस्पति अपनी पत्नी सुन्दरी को समझाने का यत्न कर रहा था। उसने कहा, "अनेक दिनों से मुझे यह प्रेरणा मिल रही थी कि संसार में कुछ महान् उथल-पुथल होने वाली है। यद्यपि उस उथल-पुथल का श्रीगणेश तो महात्मा बुद्ध के आविर्भाव से ही आरम्भ हो गया था। यह लोक-कल्याण के लिए ही हो रहा था! परन्तु अपनी हीन दृष्टि के कारण मनुष्य इसको विकृत भी तो कर सकता है।

"लोक-कल्याण के उस ईश्वरीय प्रयास में महात्मा बुद्ध का प्रयत्न तो उचित दिशा में ही चल रहा था किन्तु उनके देहान्त के उपरान्त उनके अनुयायियों ने महात्मा बुद्ध के कार्यों पर अपनी बुद्धि का आवरण लगाकर कुछ इस प्रकार की तरंग-सी उत्पन्न कर दी है कि उसके कारण मानव-समाज घोर पतन की ओर उन्मुख हो गया है।

"अब एक अन्य हलचल होने लगी है। परमात्मा तो इसमें भी मानव का मार्गदर्शन करने का यत्न कर रहा है। इस कार्य के लिए उसने मुझे माध्यम बनाया है।

"सुन्दरी! यदि मैं चाहूँ भी कि मैं इसमें सहायक न बनूं तो भी इस ईश्वरीय विधान के विपरीत मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं उससे विमुख नहीं हो सकता। इसलिये मुझे तो जाना ही होगा।

"आज प्रातःकाल पिताजी ने समाधि में ध्यान लगाया और उन्होंने अपनी दूर दृष्टि से देखकर बताया है कि मेरा यह प्रयास कदाचित् सफल नहीं होगा।

"इस पर भी मैं जाऊँगा और घटनाओं का दिशा-चक्र बदलने का भरसक यत्न करूँगा।

"देवि! मैं तुम्हें भारतवर्ष के इतिहास का एक पृष्ठ सुनाता हूँ।

"एक समय ऐसा आया जबकि भारतवर्ष असुर प्रकृति वाले जनों का एक प्रबल गुट बन गया था। उस समय देश के पूर्वांचल में भौमासुर बल का संचय कर रहा था। दूसरी ओर महादैत्य जरासन्ध ईश्वरीय विधान का उल्लंघन करने के लिए कर्म कर रहा था। तीसरी ओर मथुरा में कंस ने अपनी सहोदरा बहन को कारागार में बन्दी बनाकर डाल दिया था। मध्य भारत में शिशुपाल एक दूषित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा में जाने वालों के त्रिकोण को बल देने के लिए उद्यत हो उस ओर को चल पड़ा था। उन्हीं दिनों हस्तिनापुर में सत्यवती नाम की एक महिला अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए असुरों की सृष्टि कर चुकी थी।

"ऐसे समय में परमपिता परमात्मा ने इस सबको उचित दिशा प्रदान करने के लिए बन्दीगृह में मरने वाले पाँच इन्द्रों को बन्दीगृह से मुक्त कराकर भारत भूमि में जन्म लेने के लिए भेज दिया। इसके साथ ही मथुरा की कारागार में बन्द देवकी के गर्भ में भी एक महान् आत्मा को जन्म लेने के लिए भेज दिया।

"इस प्रकार दो दल बन गये। एक दल था असुरों का और दूसरा दल था देवताओं का। समय पाकर दोनों ही दल अपने पूर्ण सामर्थ्य से परस्पर संघर्षरत हो गये।

"ईश्वरीय शक्तियाँ थीं—कृष्ण, पाँच पाण्डव, शिखण्डी, द्रुपद, धृष्टद्युम्न इत्यादि। असुर शक्तियाँ थीं—धृतराष्ट्र की सन्तान कौरव, जरासन्ध, शिशुपाल, कंस और उनके अनेकानेक बन्धु-बान्धव तथा सहायक।

"कृष्ण और नारद ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा दी। उसका प्रयोजन यह था कि इस यज्ञ के निमित्त से कृष्ण अथवा युधिष्ठिर के पक्ष की सारी शक्तियाँ एक दिशा में कार्य करने के लिए प्रवृत्त हो जाएँ।

"राजसूय यज्ञ आरम्भ भी नहीं हो पाया था कि किसी निमित्त से कृष्ण ने युद्ध आरम्भ कर दिया और जरासन्ध की हत्या कर दी। भौमासुर और कंस भी उससे पूर्व, अर्थात् यज्ञ आरम्भ होने से पूर्व ही परलोक पहुँचा दिये गये। राजस्थान और मध्य भारत में असुरों का गढ़ तोड़ा जा चुका था। शिशुपाल को यज्ञ में ही मार डाला गया।

"इतना होने पर भी युधिष्ठिर अपना सर्वनाश करने के लिए जुआ खेलने के लिए उद्यत हो गया। उसने जुआ खेला और सबकुछ हार गया। किसी प्रकार वह उस छलना से, जो उससे खेली गई थी, बच निकला, परन्तु उसके सिर पर सर्वनाश का भूत चढ़ा बैठा था। वह दूसरी बार जुआ खेलने चल दिया और उसमें उसने सारे राज्य को दाँव पर लगा दिया।

"कृष्ण ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक था। उसने पग-पग पर पाण्डवों की रक्षा की और इस प्रकार उसने पाण्डवों की अथवा दैवी पक्ष की निरन्तर सहायता की। किन्तु पाण्डव बार-बार कुछ इस प्रकार कोई कृत्य कर बैठते थे जो कि कृष्ण द्वारा किये गये सारे प्रयास को निरस्त कर देता था।

"इससे कृष्ण को अत्यन्त निराशा हुई। उस निराशा के वशीभूत वह अपने ही परिवार को गहन अन्धकार में भटकता-सा छोड़कर स्वयं वहाँ से लुप्त हो गया।

"मेरे कहने का अभिप्राय है कि समय-समय पर ईश्वरीय शक्तियाँ मानव-समुदाय को उचित मार्ग पर लाने के लिए अपनी ओर से अवतार भेजा करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु मनुष्य तो दिनानुदिन पतन के मार्ग की ओर ही अग्रसर होता जाता है।"

सुन्दरी अपने पति की बात को ध्यान से सुनती रही, किन्तु कुछ कहने में स्वयं को असमर्थ पा वह चुपचाप लेटी रही।

: २ :

इस बात को हुए कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन जब सुन्दरी की नींद खुली तो उसने अपने पति की शय्या को शून्य देखा। सुन्दरी ने विचार किया कि अन्य दिनों की अपेक्षा उसका पति आज कुछ पहले ही उठ गया होगा। तदपि वह स्थिर नहीं रह सकी और पति को देखने उसके पूजागृह में चली गयी। वह वहाँ भी नहीं था। सुन्दरी ने सोचा, कदाचित् अपने पिता के अभ्यास कक्ष में हो। वहाँ जा कर देखा तो वह वहाँ भी नहीं था।

सुन्दरी को इससे चिन्ता हुई तो वह अपनी सास के कक्ष में चली गयी। चन्द्रमुखी ने उसे इस प्रकार अचानक आई देखा तो पूछा, "सुन्दरी ! क्या बात है ?"

"माताजी ! मैं उनको एक घड़ी-भर से इधर-उधर खोज रही हूँ। कहीं दिखायी ही नहीं दिये।"

"तो इसका अभिप्राय है कि वह अपने कार्य पर चला गया है ?"

"मैं क्या कह सकती हूँ ?"

उस समय अधिक कुछ कहने को नहीं था।

प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होने पर जब सारा परिवार अल्पाहार करने के लिए बैठा तो सुन्दरी ने शिवकुमार को बृहस्पति के घर पर न होने की सूचना देते हुए प्रश्न कर दिया।

शिवकुमार ने उसका उत्तर देते हुए अपने अनुमान से कहा, "मैं समझता हूँ कि वह अपने ईश्वरीय कार्य के लिए चल दिया होगा।"

"तो फिर ?"

"फिर यही कि शान्तिदेव की शिक्षा समाप्त होते ही उसका विवाह कर दिया जाए।"

यह सुनकर शान्तिदेव बोला, "मैं तो पिताजी के लौटने की प्रतीक्षा करना उचित समझता हूँ।"

उसका समाधान करते हुए शिवकुमार ने कहा, "सम्भवतया उसके लौटने में विलम्ब हो जाए। ऐसी स्थिति में मेरा तो यही परामर्श है कि विवाह तो समय पर हो ही जाना चाहिये। सन्तान-सूत्र का उच्छेद नहीं होना चाहिये।"

शान्तिदेव का अनुमान था कि मानव-समाज को एक विशाल कड़ाही में भूना जा रहा है। काल अपने शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष तथा उत्तर एवं दक्षिण अयन रूपी करछुलों से मानव-समाज को उस कड़ाही में उथल-पुथल करता जा रहा है। महर्षि व्यास द्वारा बताया गया मानव-समाज का यह चित्र उसकी आँखों के सम्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छा गया और इस प्रकार उसमें स्वयं को विवश पाकर वह मौन हो गया।

इस समय शान्तिदेव की आयु इक्कीस वर्ष की हो गयी थी। दो वर्ष उसने और अधिक अध्ययन किया और फिर अपने पिता के कार्य पर नियुक्त हो गया। उसका पितामह पण्डित शिवकुमार उसका पथ-प्रदर्शन करने लगा।

शान्तिदेव को अपने कार्य में नियोजित कर शिवकुमार उसके लिये उचित कन्या की खोज करने लगा। शान्तिदेव के सम्मुख जब यह प्रश्न रखा गया तो उसने अपने पितामह के सम्मुख भूतपूर्व महाराजा संजीवायन लामा के छोटे भाई की पौत्री की ओर संकेत कर दिया।

शिवकुमार ने उसके विषय में पूछगीछ आरम्भ की। पद्मश्री लामा नहीं था और उसके परिवार में भी कोई लामा नहीं रहा था। अतः जब शिवकुमार ने अपना प्रस्ताव भेजा तो उसे सुनकर पद्मश्री उससे मिलने के लिए चला आया।

पद्मश्री के यथोचित आदर-सत्कार के उपरान्त शिवकुमार ने उससे पूछा, "आपने मेरे प्रस्ताव पर विचार किया?"

"जी हाँ, मैं उसी सम्बन्ध में उपस्थित हुआ हूँ।"

"बोलिये?"

"कृपया बताइये कि आपने मेरी पौत्री का निर्वाचन किस आधार पर किया है? जहाँ तक मैं समझता हूँ कि हमारी परस्पर कभी बातचीत हुई नहीं। कदाचित् आपने तो कन्या को देखा तक भी नहीं होगा?"

"आपका कथन उचित है। इस पर भी जिसका विवाह होने वाला है, उसने कन्या को देखा है। उसके संकेत पर ही मैंने अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया था।"

"यह तो और भी आश्चर्य की बात है।"

"क्या?"

"मेरी पौत्री तो किसी विद्यालय में पढ़ने गयी ही नहीं, फिर शिक्षाध्यक्ष ने उसको किस प्रकार देख लिया?"

"मैं इस प्रश्न का उत्तर दे नहीं सकता। मैंने उससे विवाह के लिए कहा था कि अब उसको विवाह कर लेना चाहिये। मैंने उसको यह भी कहा कि मैं इस विषय में प्रयत्न आरम्भ कर रहा हूँ। इस पर उसने ही सुझाव दिया था कि उसको आपकी पौत्री पसन्द है, यदि उसके साथ विवाह हो जाए तो अच्छा है।

"इससे अधिक मैं आपको कुछ बता नहीं सकता। आप कहेंगे तो मैं अपने पौत्र को बुलवा लेता हूँ। वह कदाचित् इस सम्बन्ध में आपका समाधान कर सके कि उसने किस प्रकार और कहाँ आपकी पौत्री को देखा है।"

"मैं भी यही उचित समझता हूँ कि आप अपने पौत्र को बुलवाकर पुछवा दीजिये। यदि वह मेरा समाधान कर सके तो फिर इस विषय पर आगे बात सम्भव हो सकेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने अपने गृह-सेवक श्रवणकुमार को बुलाकर उसे शान्तिदेव को बुलाने के लिए कह दिया।

श्रवणकुमार आदेश पाकर शान्तिदेव के कक्ष में गया और उसको बुला लाया।

शान्तिदेव ने अपने बाबा के साथ एक अन्य व्यक्ति को भी उपस्थित देखा तो हाथ जोड़कर उसको नमस्कार किया। शिवकुमार ने उसको बैठने के लिए संकेत किया और फिर कहा, "ये तुमसे कुछ जानना चाह रहे हैं।"

शान्तिदेव ने पूछा, "आज्ञा कीजिये।"

"आप रेवती को कैसे जानते हैं?"

"मैं माताजी की एक सखी द्वारा बताये गये वर्णन के आधार पर ही जितना जाना जा सकता है, उतना जानता हूँ।"

"वह किस प्रकार?"

"मैं एक दिन अपनी भगिनी कमलिनीदेवी से मिलने के लिए गया था। उस समय आपकी पौत्री भी वहाँ मेरी भगिनी के समीप बैठी थीं। उनके साथ एक अन्य महिला भी थीं। सम्भवतया वे आपकी पुत्रवधू हों। मैं उनके विषय में जानता नहीं।

"मेरे वहाँ पहुँचने पर वे दोनों महिलायें चल दी थीं। बस, उतना ही मैंने देखा है।

"उनके जाने के उपरान्त मैंने अपनी बहिन को बताया कि मैं इस कन्या से विवाह करना चाहता हूँ। वह इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने का यत्न करें।

"उसके आधार पर मुझे सूचना मिली कि आपकी पौत्री सुशील और विदुषी हैं। अब जब मेरे पितामह ने मेरे विवाह की चर्चा आरम्भ की तो मैंने अपने मन की बात बता दी। उसके बाद क्या होता रहा है, मुझे विदित नहीं।"

पद्मश्री ने पूछा, "आपने उस कन्या में ऐसा क्या गुण देखा था जो उसके साथ विवाह की इच्छा करने लगे हैं?"

"उसमें स्त्रियोचित सभी लक्षण जोकि एक दृष्टि में देखे जा सकते थे, वे हैं। इसके अतिरिक्त मेरी भगिनी ने जो कुछ अपनी खोज के आधार पर बताया है वह भी उसके गुणी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।"

इतनी बात से पद्मश्री का सन्तोष हो गया। उसने पण्डित शिवकुमार को कहा, "जब आपका प्रस्ताव आया तो मैंने इसकी चर्चा अपने परिवार में की। मैंने जब बताया कि आप लोगों की ओर से प्रस्ताव आया है तो यह सुनकर रेवती प्रसन्न हुई और उसने कह भी दिया कि उसे इससे प्रसन्नता होगी।

"उसकी चंचलता देखकर मुझे सन्देह हुआ कि कहीं ये दोनों नदी के तट पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमण करते हुए मिले हों।"

शान्तिदेव बीच में ही बोल उठा, "जी नहीं। उसके अतिरिक्त मैंने उनको कहीं अन्यत्र नहीं देखा है।"

इस प्रकार जब दोनों पक्ष सहमत और सन्तुष्ट हो गये तो उसी समय पद्मश्री ने शिवकुमार और शान्तिदेव को प्रणाम किया और शुभ लक्षणस्वरूप उसको स्वर्ण मुद्रायें दक्षिणा में देकर पूछा, "विवाह किस प्रकार करना चाहेंगे?"

"जिस प्रकार भी आप उचित समझें।"

"मैं तो अपने देश के और समाज के रीति-रिवाज के अनुसार करना चाहूँगा।"

शिवकुमार कहने लगा, "मेरा तो इस विषय पर एक ही आग्रह है कि वर-कन्या अपने सम्बन्धी और मित्रों के सम्मुख सहिष्णुतापूर्वक अपना विवाहित जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेकर वचन दें।

"हम तो ईश्वरवादी हैं और ऐसे अवसरों पर ईश्वर को ही स्मरण करते हैं। परन्तु घर के पुरुखाओं के सम्मुख वचन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ।"

"परन्तु मैंने तो सुना था कि आप तो स्वयं को ही परमात्मा मानते हैं?"

"जी नहीं। किसी ने आपको मेरे विषय में यह भ्रम डाल दिया है। मैं स्वयं को परमात्मा नहीं मानता। मैं यह मानता हूँ कि प्रत्येक प्राणी में परमात्मा की शक्ति कार्य करती है। इस प्रकार वह मुझमें भी विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी उसकी ही शक्ति से हिलता-डुलता और सब प्रकार के कार्य करता है। वैसे ही मैं भी करता हूँ। मुझमें और दूसरों में वही अन्तर है जो किसी धनी के दो पुत्रों में अन्तर हो सकता है। वह यह कि एक तो अपने पिता के धन का भली-भाँति और प्रभावी प्रयोग करता है और दूसरा उसका अपव्यय करता है, मानो उसमें उसके प्रयोग की बुद्धि ही न हो।"

पद्मश्री बोला, "इसके अनुसार तो मुझमें भी आपके परमात्मा की शक्ति विद्यमान है?"

यह सुनकर शिवकुमार को हँसी आ गयी। उसने कहा, "परमात्मा एक है। वह मेरा नहीं, हम सबका है। हम दोनों के परमात्मा पृथक्-पृथक् नहीं हैं। यह सम्भव है कि कोई अयोग्य पुत्र पिता द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति का भोग करता हुआ भी अपने पिता को स्वीकार न करे और सबकुछ अपना ही अर्जित बताये; परन्तु सब को उत्पन्न करने वाला तो परमात्मा ही है।"

"यह प्रज्ञा नहीं है?"

"वह क्या होती है?" शिवकुमार ने प्रतिप्रश्न किया।

"बुद्धि।"

"दो बातें ऐसी हैं जो इस बुद्धि के विषय में समझ लेना अत्यन्त आवश्यक हैं। एक तो यह कि कार्य करने की शक्ति और प्रज्ञा भिन्न-भिन्न हैं। किसी मूर्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति का ही उदाहरण ले लीजिये। वह तो गणित के सामान्य नियमों का भी प्रयोग नहीं कर सकता। नियमों को वह भले ही जानता हो, किन्तु प्रयोग के समय वह विभ्रम में पड़ जाता है।

"दूसरा व्यक्ति विलक्षण बुद्धि का है। वह गणित के कठिन-से-कठिन प्रश्न को सुगमता से सरल कर लेता है। किन्तु उस व्यक्ति में बल की कमी है और यदि उसको पैदल चलने के लिए कहा जाए तो वह आधा कोस जाने पर ही हाँफने लग जाता है।

"इस प्रकार एक में बल है, बुद्धि नहीं; दूसरे में बुद्धि अधिक है, किन्तु बल की कमी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि शरीर में केवल प्रज्ञा की ही सामर्थ्य नहीं होती, प्रज्ञा के अतिरिक्त भी कुछ है।

"हम उस 'कुछ' को प्राण कहते हैं। यह प्राण परमात्मा की देन है।

"वैसे प्रज्ञा भी परमात्मा की ही देन है। इस पर भी कार्य करने की सामर्थ्य और प्रज्ञा ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

"इससे मैं तो यही समझता हूँ कि न तो प्रज्ञा परमात्मा है और न ही प्राण परमात्मा है। इन दोनों को चलाने वाला तत्त्व जीवात्मा होता है।

"यह तो शरीर में है, परन्तु एक अन्य तत्त्व भी है जो सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी इत्यादि को चला रहा है। साथ ही ज्ञान का भी भण्डार है।"

पद्मश्री सहसा पूछ बैठा, "तो आपने उस शक्ति का ही प्रयोग किया था? जन-प्रजा और सैनिक आपके विरोध में उठ खड़े हुए थे?"

"जी हाँ।"

"उस समय मेरा पुत्र, जो रेवती का पिता है, वह सेनाध्यक्ष था। उसकी सूचना पर मैं महाराज से मिलने गया था। उन्होंने कहा था कि आपने मनुष्य की प्रज्ञा से कुछ अन्य का भी मनुष्य में होना सिद्ध कर दिया है।

"परन्तु उसके उपरान्त तो कभी आपने वैसी बात सिद्ध करके दिखायी नहीं?"

शिवकुमार मुस्करा दिया। बोला, "फिर कभी वैसा अवसर भी तो उपस्थित नहीं हुआ। उसके बाद इस देश के निवासियों ने सदा मेरा मान ही किया है। मुझे कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। यही कारण है कि पुनः कभी उस प्रकार की सामर्थ्य का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई।"

पद्मश्री को यह सब सुनकर विस्मय हो रहा था।

अपनी पौत्री के विवाह के विषय में पद्मश्री सन्तुष्ट होकर गया और फिर दो सप्ताह के भीतर ही विवाह-कार्य सुसम्पन्न हो गया।

विवाह के अवसर पर शान्तिदेव के पिता बृहस्पति को जब सम्बन्धियों तथा नगर-निवासियों ने उपस्थित नहीं देखा तभी सबको यह विदित हुआ कि वह घर से कहीं बाहर गया हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R089.9143
GUR-A
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Central Library
167856
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

पौत्र के विवाह के उपरान्त शिवकुमार का जीवन पुनः अपनी गति से शान्ति-पूर्वक व्यतीत होने लगा था। उसकी दिनचर्या में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं आया। न ही इतनी अधिक आयु हो जाने पर भी उसके शरीर में कोई ऐसा प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था जो कि मनुष्य-शरीर को उसके मन अथवा बुद्धि को क्षारित कर दे। उसकी रूपराशि में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था और न उसकी आभा में कोई कमी दृष्टिगोचर होती थी।

शिक्षा अध्यक्ष होने के साथ-साथ शान्तिदेव राजगुरु के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

वृहस्पति के घर से जाने के चार वर्ष बाद की बात है कि एक दिन शान्तिदेव शिवकुमार से मिलने के लिए आया।

शान्तिदेव का नियम था कि वह प्रातःकाल अपने घर पर अल्पाहार करने के उपरान्त राजप्रासाद में पहुँच जाया करता था। राजप्रासाद में परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में भी राज्य की भी चर्चा होती रहती थी। कभी-कभी धार्मिक विषय पर भी चर्चा होती थी। कीर्तिमान को इन विषयों पर चर्चा की उतनी आवश्यकता नहीं होती थी जितनी कि भूतपूर्व महाराज संजीवायन लामा को हुआ करती थी। इसका कारण था कीर्तिमान की पत्नी मृदुला।

उस दिन शान्तिदेव राजप्रासाद को गया। उसके उपरान्त वह शिक्षा-प्रबन्धक के कार्यालय में जाया करता था। आज वह राजप्रासाद से लौटकर वहाँ न जाकर अपने घर वापस आ गया।

उस समय शिवकुमार अपने अध्ययन कक्ष में बैठा स्वाध्याय कर रहा था। शान्तिदेव वहाँ जाकर उसके समीप बैठ गया। उसके आने पर शिवकुमार का ध्यान भंग हुआ तो उसने अपने पौत्र की ओर देखा। उसको बैठा देख पूछने लगा —"क्या बात है, आज तुम जल्दी कैसे आ गये? शिक्षा कार्यालय नहीं गये?"

"जी नहीं। मैं महाराज की आज्ञा से इधर आ गया हूँ।"

"हाँ, बोलो।"

"महाराज के पास पाटलिपुत्र के महाराज कुमारगुप्त का एक पत्र लेकर उनका सन्धि-विग्रह मन्त्री आया है। उस पत्र में कुमारगुप्त ने भारत और त्रिविष्टप में कुछ विवाद का उल्लेख किया है।

"महाराज चाहते हैं कि उन बातों पर यदि आपके समक्ष विचार-विमर्श हो तो उपयुक्त होगा।

"इस विषय में महाराज ने आपसे विचार-विमर्श करने की इच्छा व्यक्त की है।"

"महाराज ने कोई समय निर्धारित किया है?"

"नहीं, समय तो कोई निर्धारित नहीं किया है; किन्तु मुझको घर भेजने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167886

का अभिप्राय तो यही हो सकता है कि वे आपसे तुरन्त ही मिलना चाहते हैं।"

"ठीक है। तुम अपने काम पर जाओ, मैं महाराज के पास जाता हूँ।"

पाटलिपुत्र-नरेश कुमारगुप्त का दूत सिक्किम के मार्ग से आया था। उसके साथ उसके संरक्षक और सेवक भी थे। त्रिविष्टप की सीमा में प्रविष्ट होते ही अपने एक प्रतिहार के माध्यम से उसने सन्देश भिजवा दिया था कि पाटलिपुत्र से वह अपने नरेश का एक आवश्यक पत्र लेकर उससे मिलने के लिए आ रहा है।

सूचना मिलने पर महाराज कीर्तिमान ने अपने मन्त्रिमण्डल में इस सूचना की चर्चा की। मन्त्रिमण्डल का यह मत था कि पड़ोसी राज्य का दूत यदि सद्भावपूर्वक आये तो उससे मिलना महाराज का कर्तव्य है। जब तक उसके आने के उद्देश्य के विषय में ज्ञान न हो जाए, तब तक विचार के लिए कोई बात उपस्थित नहीं की जा सकती। हाँ, अनुमान लगाने में किसी प्रकार की हानि नहीं।

तदपि किसी प्रकार का अनुमान नहीं लगाया जा सकता और मन्त्रिमण्डल ने निश्चय किया कि दूत के निवास की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

इस समय तक मगधराज का दूत त्रिविष्टप की राजधानी में अपने दल सहित पहुँच गया था। उसके निवास की व्यवस्था हो चुकी थी और उसने मगध की ओर से त्रिविष्टपराज को अपना ज्ञापन भी प्रस्तुत कर दिया था।

महाराज मन्त्रिमण्डल के सम्मुख ही पण्डित शिवकुमार से विचार-विमर्श करना चाहते थे।

मगध-नरेश ने अपने ज्ञापन में यह लिखा था कि त्रिविष्टप राज्य की अनियन्त्रित अर्थनीति के कारण भारत देश में आवश्यकताओं की अनेक वस्तुओं का अभाव होने लगा है। उससे उनका देश निर्धनता की ओर अग्रसर हो रहा प्रतीत होता है। इस स्थिति से निस्तार पाने के लिए भारत के अर्थशास्त्रियों की यह धारणा है कि दोनों देशों के व्यापार पर भी किसी प्रकार का नियन्त्रण होना परमावश्यक है।

भारत का सन्धि-विग्रह मन्त्री इसी विषय पर बातचीत करने के लिए त्रिविष्टप भेजा गया है।

पण्डित शिवकुमार के सम्मुख जब यह समस्या उपस्थित की गयी तो उसने इस समस्या पर कुछ क्षण तक विचार किया और फिर कहा, "मैं समझता हूँ कि वस्तु के आदान-प्रदान से न तो कोई धनी हो सकता है और न ही निर्धन। केवल वह देश अथवा राज्य ही धनी हो सकता है जिसके सभी घटक किसी-न-किसी प्रकार के उपार्जन और उत्पादन में अपना योगदान करते हों। और जिस देश में अकर्मण्य नागरिकों की संख्या अधिक होती है, वह देश निर्धन हो जाता है।

"उपार्जन और अनुपार्जन से अभिप्राय यह है कि ऐसे कार्य करना, जो मानव का वास्तविक कल्याण करते हों। जो मनुष्य में कार्य करने और फिर उससे उपार्जन करने की शक्ति में वृद्धि करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपार्जन करने वाले कर्म वे होंगे जो मानव-शरीर में उपार्जन की शक्ति में तो वृद्धि न कर पायें परन्तु कामनायें पूर्ण करने में संलग्न रहें। जो व्यक्ति ऐसी कामनाओं के पीछे भागता फिरता हो, जिनसे मानव मन, बुद्धि और शरीर के सामर्थ्य का ह्रास अथवा नाश होता हो।

"हमने अपनी अर्थनीति में उन पदार्थों के उत्पादन और निर्माण का अधिक प्रयास किया है जिनसे हमारी प्रजा अधिकाधिक उपार्जन करने में सक्षम होती जा रही है। उसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश की आर्थिक स्थिति में न केवल सुधार हुआ है अपितु वह सुदृढ़ होती जा रही है। अर्थ का भरपूर भोग किया जा रहा है, तदपि उसमें निरन्तर वृद्धि भी हो रही है।

"इसके विपरीत भारत में ऐसे कार्यों में वृद्धि होती दिखाई दे रही है जहाँ अर्थ का व्यय तो हो रहा है परन्तु उसके कारण मनुष्य के उपार्जन करने की क्षमता और शक्ति में वृद्धि नहीं हो रही है। यहाँ तक कि वहाँ की उपार्जन शक्ति का निरन्तर ह्रास होना आरम्भ हो गया है।

"भारत में साम्राज्यवाद है। सम्पूर्ण देश में एकाकी शासन चलाने का यत्न किया जा रहा है। जहाँ छोटे-छोटे क्षेत्रों के शासक होते थे, उनके स्थान पर आयुक्त नियुक्त किये जा रहे हैं। वे आयुक्त अपने-अपने क्षेत्र में मानव के विकास में न किसी भी प्रकार का सहयोग दे रहे हैं और न ही वे कोई निर्देश देने में समर्थ हैं। वे तो केवल मानव-विकास के फल के उपभोक्ता ही उत्पन्न कर रहे हैं।

"इसका ही यह परिणाम है कि वह देश निरन्तर निर्धनता की ओर बढ़ रहा है। वहाँ जीवनोपयोगी पदार्थों का निर्माण और उत्पादन नहीं किया जा रहा है। इसके विपरीत वहाँ भोग के पदार्थों की सृष्टि और उस सृष्टि में निरन्तर वृद्धि की जा रही है।

"वहाँ ऐसे अनपढ़, बुद्धि-विहीन मन वाले पुजारियों, धर्म-गुरुओं और लेखकों की सृष्टि हो रही है। उत्पादन शक्ति को मनुष्य के हाथ से छीनकर यन्त्र के अधीन करने का यत्न किया जा रहा है। मानव द्वारा उत्पादित वस्तुओं की अपेक्षा यंत्रों से निर्मित वस्तुएँ महँगी होती हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे तथा अन्यान्य पड़ोसी देशों के लोग जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण कर, जो कि भारत में अधिक मात्रा में उपयोग की जाती हैं, वहाँ भेज रहे हैं और इस प्रकार वहाँ का धन इन देशों की ओर बहने लगा है।

"वास्तविकता तो यही है। मगध-नरेश इसका सुधार तो कर नहीं सके अथवा समस्या को ठीक प्रकार समझ नहीं पाये हैं और व्यर्थ की बात के लिए अपने मन्त्री को हमारे देश भेज दिया है।"

मन्त्रिमण्डल ने शिवकुमार की बात को ध्यान से सुना और अन्त में यह निश्चय किया कि किसी प्रकार कोई समझौता कर लेना चाहिए। किन्तु इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ध्यान में रखना होगा कि देश का धन विदेश की ओर न जाने पाये।

पाटलिपुत्र से आने वाला मन्त्री वररुचि था। अब वररुचि वृद्ध हो गया था। उसके अनुपात में तो पण्डित शिवकुमार तो अभी भी वैसा ही था जैसा कि वह मगध में रहते हुए वररुचि ने उस काल में श्रीनगर में देखा था। शिवकुमार के मुख पर अभी भी वैसा ही तेज और ओज विद्यमान था।

जब दोनों का परस्पर साक्षात्कार हुआ तो दोनों ही एक-दूसरे को देखकर विस्मित-से रह गये थे। वररुचि निश्चय नहीं कर पाया। उसने अपना सन्देह निवारण करने के लिए पूछा, "आप पण्डित शिवकुमारजी के सुपुत्र हैं क्या?"

पण्डित शिवकुमार को हँसी आ गयी। उसने कहा, "मैं स्वयं शिवकुमार हूँ।"

"ओह! आप तो वैसे ही तरुण, तेजस्वी और ओजस्वी हैं, जैसे आज से चालीस वर्ष पूर्व थे।"

"आप जैसा भी समझें। तदपि मैं शिवकुमार ही हूँ। मुझे सूचना मिली थी कि मेरे गुरु पण्डित हरिषेण का देहान्त हो चुका था। उनके परिवार के अन्यान्य घटक भी अधिकांशतया स्वर्ग सिधार गये हैं। आपके महाराजा भी तो वृद्ध हो और पुत्र के वियोग से दुःखी होकर शरीर त्याग चुके हैं। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने पिता से विद्रोह कर दिया था। अब शायद वह अपने ससुर के पास ही रहता है।"

अब तक तो वररुचि को शिवकुमार के शारीरिक गठन पर ही आश्चर्य और विस्मय हो रहा था, किन्तु अब उसके मुख से भारत की गतिविधि का पूर्ण विवरण सुनकर तो और भी आश्चर्य होने लगा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि भारत से बहुत दूर, पर्वत-कन्दराओं में रहकर, जहाँ आने-जाने के कोई साधन नहीं हैं, वह किस प्रकार यह सारी सूचना एकत्रित कर सका है।

सबसे अधिक विस्मय तो वररुचि को इस बात पर हुआ था कि महाराज चन्द्रगुप्त का बड़ा पुत्र महाराज से लड़-झगड़कर अपनी ससुराल में जाकर रहने लगा था और अपने पिता से विद्रोह करने की योजना बना रहा था कि महाराज को उस दुःख से आघात पहुँचा और उनका देहान्त हो गया और यह सारी बात पण्डित शिवकुमार को विदित थी।

वररुचि ने अपने विस्मय के विषय में कुछ नहीं कहा। न उसने किसी प्रकार की व्यक्तिगत बातों में समय व्यर्थ गँवाना उचित समझा। उसने राज्य से सम्बन्धित समस्याओं पर बात करते हुए कहा, "मुझे राज्य की ओर से आपको देने के लिए जो ज्ञापन दिया गया था वह मैंने यहाँ के मन्त्रिमण्डल की सेवा में प्रस्तुत कर दिया था। उस पर आप लोगों ने विचार किया होगा।

"हमारे देश के विद्वानों का विचार है कि आपके देश की अनियन्त्रित अर्थनीति का हमारे देश की अर्थनीति पर दूषित प्रभाव पड़ रहा है। यदि आपने इस ओर ध्यान नहीं दिया और इसमें परिवर्तन नहीं किया तो हमें परस्पर सम्बन्धों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पुनर्विचार करना पड़ जाएगा। सम्भवतया उन पर प्रतिबन्ध भी लगाना पड़ जाए।"

पण्डित शिवकुमार ने पूछा, "वे प्रतिबन्ध अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होंगे अथवा राजनीति से?"

"अर्थनीति और राजनीति हमारे विचार से दो पृथक्-पृथक् बातें नहीं हैं।"

"इसका अभिप्राय यह है कि आप इस देश पर आक्रमण करेंगे?"

"इस विषय में तो मैं निश्चित कुछ कह नहीं सकता। यह सब भारत-सम्राट के अथवा उनके मन्त्रिमण्डल के विचार करने की बात है।

"मेरा सम्बन्ध केवल आपकी अर्थनीति के कारण हमारे देश की अर्थनीति पर पड़ने वाले दूषित प्रभाव से ही है।"

शिवकुमार ने दो टूक उत्तर दिया, "न तो हमारे सैनिक आपके देश में जाकर किसी प्रकार की छीना-झपटी कर रहे हैं और न ही हमारे देश के व्यापारी अपनी सेना के बल पर आपके देश में किसी प्रकार का अनैतिक व्यापार कर रहे हैं।

"हाँ, हमारी आन्तरिक अर्थनीति सुव्यवस्थित है। पर यदि आप चाहते हैं कि किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाया जाए तो यह आपकी अनधिकार चेष्टा होगी।"

"नेपाल एक छोटा-सा राज्य है। उसने तो आप जैसी कोई बात नहीं कही है?"

"उसका कारण तो यही हो सकता है कि वह आपकी अनधिकार चेष्टा का निराकरण करने में स्वयं को असमर्थ समझता होगा, किन्तु हम आपसे लोहा ले सकते हैं।"

"तो आप हमसे लोहा लेने की सामर्थ्य रखते हैं? और अपनी बात मनवाने के लिए यही युक्ति आप प्रस्तुत करना चाहते हैं?"

"हम किसी प्रकार की धमकी नहीं दे रहे हैं। हमने तो दोनों देशों में समान व्यवहार की आकांक्षा का उल्लेख किया है।"

वररुचि मौन सुनता रहा। शिवकुमार ने पुनः कहा, "आप अपने राज्य की किस बात के पालन के लिए हमें कहना चाहते हैं। सब बातों में आपके अपने राज्य में भी समानता नहीं है, तब आप हमसे किन बातों में समानता की अपेक्षा रखते हैं?"

"आप हमारे देश में अपनी वस्तुएँ मत बेचिये और हम आपके देश में अपनी वस्तुएँ नहीं बेचेंगे।"

शिवकुमार को यह सुनकर हँसी आ गयी। उसने कहा, "न तो हमारा राज्य आपके राज्य से कुछ क्रय कर रहा है और न ही आपका राज्य हमारे राज्य से कुछ क्रय कर रहा है। जब हमारी ऐसी स्थिति आयेगी कि हम आपके राज्य से कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रय करने की आवश्यकता समझेंगे, उस अवसर पर हम इस प्रकार कोई समझौता कर लेंगे।"

"परन्तु आपके देश से वस्तुएँ तो भारत में जाती हैं?"

"तो आपका अभिप्राय नागरिकों पर प्रतिबन्ध लगाने का है?"

"जी हाँ।"

"यह सम्भव नहीं है। नागरिकों के परिश्रम और उनके परिश्रम के फल पर हम राज्य का नियन्त्रण उचित नहीं समझते।"

"फिर राज्य किस बात पर नियन्त्रण करता है?"

"शान्ति-व्यवस्था पर। नागरिकों की रक्षा पर। रक्षा आततायियों और दुष्टों तथा प्राकृतिक आपदाओं से करनी होती है। हमारी तो शिक्षा भी राज्य के अधीन नहीं है। नागरिकों ने एक संगठन बनाया है, वही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध और देख-रेख करता है। राज्य उसके लिए आर्थिक सहायता तो देता है, किन्तु उसमें किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं करता कि शिक्षा किस प्रकार की हो अथवा किस प्रकार की न हो।"

"यहाँ की प्रजा बौद्ध क्यों है?"

"यह तो यहाँ के लामा लोग अपने धर्म-प्रचार से यहाँ की प्रजा को बौद्ध बनाये हुए हैं। जब से मैं यहाँ आया हूँ, यहाँ वैदिक मत का प्रचार भी होने लगा है। मैं राज-कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। मैं राजसेवक नहीं हूँ।"

"यहाँ का राज्य किस मत का अवलम्बन करता है?"

"किसी भी मत का नहीं। यहाँ के राजा वैदिक मतावलम्बी हैं, किन्तु प्रजा में बौद्ध मतावलम्बियों की संख्या अधिक है। इसी कारण यहाँ बौद्ध मत की ही शिक्षा दी जाती है। तदपि इस देश में दो-तीन पाठशालायें वैदिक मत की शिक्षा देने वाली भी हैं।"

वररुचि की इस विषय में कोई रुचि नहीं थी। उसने विषय परिवर्तन करते हुए कहा, "आपके देश में कपड़ा, पीतल और काँसे के बर्तन, काष्ठ की वस्तुयें, चर्म की वस्तुयें और सूखे मेवे इतने सस्ते हैं कि दूर दक्षिण तक ले जाने पर भी वे वहाँ निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं से सस्ते होते हैं।

"इसके परिणामस्वरूप हमारे देश के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि आपका छोटा-सा देश प्रति वर्ष एक सौ करोड़ रजत की वस्तुओं का निर्यात करता है और लगभग साठ करोड़ रजत की वस्तुयें आयात करता है। इससे हमारा देश दिन-प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा है।"

"इस आयात और निर्यात में हमारे राज्य का तो किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप है ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं समझता हूँ कि आप अपने देश की इस समस्या को लेकर गलत स्थान पर आ गये हैं। आपकी इस समस्या का समाधान तो कहीं अन्यत्र ही है।"

वररुचि ने निराशा में पूछा, "कहाँ है वह ?"

"वह आपके देश में ही है। मेरा अभिप्राय आपके देश की राज्य-व्यवस्था से है। आपके देश की विकृत अथवा दूषित शिक्षा के कारण वहाँ उपार्जन करने वालों की अपेक्षा अनुपार्जन करने वालों की संख्या अधिक हो गयी है।

"आपके देश की मिथ्या शिक्षा के कारण आपके नागरिक अपना समय और धन उन कार्यों में व्यय कर रहे हैं जिनका धनोपार्जन अथवा उसके लिये शक्ति बढ़ाने में किसी प्रकार का भी योगदान नहीं होता।"

वररुचि कुछ विचार में पड़ गया। उसने कहा, "तो आप ऐसा करिये, मैं आपको पुनः पाटलिपुत्र में आमन्त्रित करता हूँ। आप वहाँ चलकर अपनी बात समझावें तो कदाचित् बात बन जाए।"

"मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा। मुझे वहाँ के राज्य-प्रपंच विकृत लगते हैं। इसके कारण ही तो मैंने वहाँ से पलायन किया था।

"मैं जब वहाँ का महामात्य था, उस समय मैंने वहाँ की राज्य-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था में सुधार करने का यत्न किया था; परन्तु वहाँ के कुछ आश्रमों के मठाधीश मेरे सुधार-कार्यों में बाधक बन गये थे। उसका परिणाम यह हुआ कि अपने पाँच वर्ष के महामात्य काल में कुछ भी सुधार करने मेरे लिये सम्भव नहीं हुए।

"उससे पूर्व जब मैं वहाँ पुरोहित था तो उस समय भी वहाँ के अश्वमेध यज्ञ के विकारों को दूर करने में भी मैं सफल नहीं हो पाया था।

"जब तक वहाँ के ब्राह्मणों का वर्तमान व्यवहार प्रचलित रहेगा तब तक वह राज्य और देश अस्ताचल की ओर ही उन्मुख रहेगा।"

"मैं आपकी बात समझा नहीं ?"

"उसका भी कारण है। वह यह कि आपके गुरु थे पण्डित हरिषेण। वे राज्य के सेवक रहने के कारण स्वस्थ बुद्धि से समस्या को समझ नहीं पाये थे। उनके कर्मों पर उनको वेतन देने वाले की बुद्धि ही राज्य करती थी।"

"बड़े विचित्र व्यक्ति हैं आप। जब भी किसी विषय पर बात की जाए, आप उस सबके लिये वहाँ के ब्राह्मणों को ही दोषी सिद्ध करने का यत्न करते हैं।"

"जी नहीं। मैं ब्राह्मणों पर दोष नहीं लगा रहा। मेरा दोषारोपण तो राज्य पर है। राज्य ने ब्राह्मणों को क्रय कर, उनको अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में वृद्धि का साधन बनाया हुआ है।

"अश्वमेध यज्ञ के समय भी यही समस्या उत्पन्न हुई थी। जो ब्राह्मण राज्य-सेवा में थे वे अपनी सम्मति देने से पूर्व महाराज का मुख देखते थे। उसका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रय करने की आवश्यकता समझेंगे, उस अवसर पर हम इस प्रकार कोई समझौता कर लेंगे।"

"परन्तु आपके देश से वस्तुएँ तो भारत में जाती हैं ?"

"तो आपका अभिप्राय नागरिकों पर प्रतिबन्ध लगाने का है ?"

"जी हाँ।"

"यह सम्भव नहीं है। नागरिकों के परिश्रम और उनके परिश्रम के फल पर हम राज्य का नियन्त्रण उचित नहीं समझते।"

"फिर राज्य किस बात पर नियन्त्रण करता है ?"

"शान्ति-व्यवस्था पर। नागरिकों की रक्षा पर। रक्षा आततायियों और दुष्टों तथा प्राकृतिक आपदाओं से करनी होती है। हमारी तो शिक्षा भी राज्य के अधीन नहीं है। नागरिकों ने एक संगठन बनाया है, वही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध और देख-रेख करता है। राज्य उसके लिए आर्थिक सहायता तो देता है, किन्तु उसमें किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं करता कि शिक्षा किस प्रकार की हो अथवा किस प्रकार की न हो।"

"यहाँ की प्रजा बौद्ध क्यों है ?"

"यह तो यहाँ के लामा लोग अपने धर्म-प्रचार से यहाँ की प्रजा को बौद्ध बनाये हुए हैं। जब से मैं यहाँ आया हूँ, यहाँ वैदिक मत का प्रचार भी होने लगा है। मैं राज-कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। मैं राजसेवक नहीं हूँ।"

"यहाँ का राज्य किस मत का अवलम्बन करता है ?"

"किसी भी मत का नहीं। यहाँ के राजा वैदिक मतावलम्बी हैं, किन्तु प्रजा में बौद्ध मतावलम्बियों की संख्या अधिक है। इसी कारण यहाँ बौद्ध मत की ही शिक्षा दी जाती है। तदपि इस देश में दो-तीन पाठशालायें वैदिक मत की शिक्षा देने वाली भी हैं।"

वररुचि की इस विषय में कोई रुचि नहीं थी। उसने विषय परिवर्तन करते हुए कहा, "आपके देश में कपड़ा, पीतल और काँसे के बर्तन, काष्ठ की वस्तुयें, चर्म की वस्तुयें और सूखे मेवे इतने सस्ते हैं कि दूर दक्षिण तक ले जाने पर भी वे वहाँ निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं से सस्ते होते हैं।

"इसके परिणामस्वरूप हमारे देश के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि आपका छोटा-सा देश प्रति वर्ष एक सौ करोड़ रजत की वस्तुओं का निर्यात करता है और लगभग साठ करोड़ रजत की वस्तुयें आयात करता है। इससे हमारा देश दिन-प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा है।"

"इस आयात और निर्यात में हमारे राज्य का तो किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप है ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं समझता हूँ कि आप अपने देश की इस समस्या को लेकर गलत स्थान पर आ गये हैं। आपकी इस समस्या का समाधान तो कहीं अन्यत्र ही है।"

वररुचि ने निराशा में पूछा, "कहाँ है वह ?"

"वह आपके देश में ही है। मेरा अभिप्राय आपके देश की राज्य-व्यवस्था से है। आपके देश की विकृत अथवा दूषित शिक्षा के कारण वहाँ उपार्जन करने वालों की अपेक्षा अनुपार्जन करने वालों की संख्या अधिक हो गयी है।

"आपके देश की मिथ्या शिक्षा के कारण आपके नागरिक अपना समय और धन उन कार्यों में व्यय कर रहे हैं जिनका धनोपार्जन अथवा उसके लिये शक्ति बढ़ाने में किसी प्रकार का भी योगदान नहीं होता।"

वररुचि कुछ विचार में पड़ गया। उसने कहा, "तो आप ऐसा करिये, मैं आपको पुनः पाटलिपुत्र में आमन्त्रित करता हूँ। आप वहाँ चलकर अपनी बात समझावें तो कदाचित् बात बन जाए।"

"मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा। मुझे वहाँ के राज्य-प्रपंच विकृत लगते हैं। इसके कारण ही तो मैंने वहाँ से पलायन किया था।

"मैं जब वहाँ का महामात्य था, उस समय मैंने वहाँ की राज्य-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था में सुधार करने का यत्न किया था; परन्तु वहाँ के कुछ आश्रमों के मठाधीश मेरे सुधार-कार्यों में बाधक बन गये थे। उसका परिणाम यह हुआ कि अपने पाँच वर्ष के महामात्य काल में कुछ भी सुधार करने मेरे लिये सम्भव नहीं हुए।

"उससे पूर्व जब मैं वहाँ पुरोहित था तो उस समय भी वहाँ के अश्वमेध यज्ञ के विकारों को दूर करने में भी मैं सफल नहीं हो पाया था।

"जब तक वहाँ के ब्राह्मणों का वर्तमान व्यवहार प्रचलित रहेगा तब तक वह राज्य और देश अस्ताचल की ओर ही उन्मुख रहेगा।"

"मैं आपकी बात समझा नहीं ?"

"उसका भी कारण है। वह यह कि आपके गुरु थे पण्डित हरिषेण। वे राज्य के सेवक रहने के कारण स्वस्थ बुद्धि से समस्या को समझ नहीं पाये थे। उनके कर्मों पर उनको वेतन देने वाले की बुद्धि ही राज्य करती थी।"

"बड़े विचित्र व्यक्ति हैं आप। जब भी किसी विषय पर बात की जाए, आप उस सबके लिये वहाँ के ब्राह्मणों को ही दोषी सिद्ध करने का यत्न करते हैं।"

"जी नहीं। मैं ब्राह्मणों पर दोष नहीं लगा रहा। मेरा दोषारोपण तो राज्य पर है। राज्य ने ब्राह्मणों को क्रय कर, उनको अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में वृद्धि का साधन बनाया हुआ है।

"अश्वमेध यज्ञ के समय भी यही समस्या उत्पन्न हुई थी। जो ब्राह्मण राज्य-सेवा में थे वे अपनी सम्मति देने से पूर्व महाराज का मुख देखते थे। उसका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम हुआ कि यज्ञ में ही महाराज की हत्या होते-होते बच गयी।"

यद्यपि वररुचि स्वयं उस समय पाटलिपुत्र में नहीं था, तदपि उसको उस दुर्घटना के विषय में भली-भाँति विदित था। पण्डित हरिषेण ने उसको सबकुछ बताया था। उसके साथ ही हरिषेण ने उसको यह भी बताया था कि ब्राह्मण उस समय कुछ नहीं कर सकते थे। महाराज की सैनिक शक्ति का विरोध करने का सामर्थ्य उनमें किस प्रकार हो सकता था ?

इस प्रकार चार घड़ी-भर से भी अधिक समय तक इस विषय पर विचार-विनिमय होता रहा। समय अधिक हो जाने के कारण शेष वार्तालाप दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।

यह वार्तालाप पण्डित शिवकुमार और वररुचि में हुआ था। शिवकुमार वहाँ से उठकर मन्त्रिमण्डल के समक्ष जा पहुँचा। वहाँ बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा की जा रही थी।

वहाँ पहुँचकर शिवकुमार ने बताया, "ऐसा प्रतीत होता है कि मगध-सम्राट ने अपने अधिकार-क्षेत्र को नेपाल और भूटान तक बढ़ा लिया है। आज के वार्तालाप से तो मेरा यही अनुमान है कि वह त्रिविष्टप को भी अपने अधिकार में करने के लिए लालायित है। अर्थव्यवस्था के विषय में चर्चा तो एक बहाना-मात्र है।

"ऐसी स्थिति में मुझे तो यही दिखाई देता है कि आपके राज्य को मगध से युद्ध करना होगा।

"आज की बातों का सारांश यही है। शेष बात कल होगी। उसके विषय में कल ही बताया जा सकता है।"

इस प्रकार मन्त्रिमण्डल की बैठक विसर्जित हुई और शिवकुमार भी अपने घर के लिए चल दिया।

: ३ :

अगले दिन जब वार्तालाप का समय आया तो उससे पूर्व ही मगध के सन्धि-विग्रह मन्त्री वररुचि ने पण्डित शिवकुमार को एक लिखित सन्धि-पत्र देते हुए कहा, "कल आपसे जो वार्तालाप हुआ है उससे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि अपने राज्य की जो समस्या है, उसको मैं आपको लिखकर दे दूँ। ये हमारे राज्य की माँगें हैं और मैं चाहता हूँ कि इनका उत्तर आपके राज्य की ओर से मुझे लिखित रूप में ही मिल जाना चाहिये।"

शिवकुमार ने उसके माँग-पत्र को अपने हाथ में लेकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

क्योंकि त्रिविष्टप की अनियन्त्रित अर्थव्यवस्था के कारण मगध राज्य की अर्थव्यवस्था बिगड़ रही है, इस कारण हम आपसे निम्न बातों की अपेक्षा रखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. आप अपने नागरिकों पर उसी प्रकार राजस्व लगायें जिस प्रकार हमारे राज्य में लगाया जाता है।
२. त्रिविष्टप और भारत में परस्पर राज्यों द्वारा आयात-निर्यात किया जाए। इसके लिए प्रतिवर्ष दोनों राज्यों के प्रतिनिधि मिलकर यह निश्चय करें कि किस राज्य को किस राज्य से कितनी और क्या-क्या वस्तुयें आयात-निर्यात की जायें। यह ध्यान रखा जाए कि आयात-निर्यात की वस्तुओं का मूल्य समान हो। आयात से निर्यात अथवा निर्यात से आयात का मूल्य कम अथवा अधिक नहीं होना चाहिये।
३. भारतवर्ष का एक प्रतिनिधि त्रिविष्टप की राजधानी ल्हासा में स्थायी रूप से रहेगा और त्रिविष्टप भी यदि चाहे तो अपना एक स्थायी प्रतिनिधि पाटलिपुत्र में रख सकता है। ये प्रतिनिधि दोनों देशों में परस्पर हुई सन्धि पर की जाने वाली कार्यवाही का निरीक्षण करेंगे।
४. इन प्रतिनिधियों की उपाधि 'राजदूत' होगी। भारत के राजदूत की राजधानी में निवास के लिए व्यवस्था करनी होगी। इसके बाद त्रिविष्टप का राजदूत पाटलिपुत्र आयेगा तो उसके निवास की व्यवस्था हम करेंगे।

शिवकुमार ने इस माँग-पत्र को पढ़ा और फिर उसने कहा, "आपको इसका लिखित उत्तर देने से पूर्व इस विषय में मन्त्रिमण्डल से विचार-विनिमय करना होगा।"

"ठीक है, वह आप कर लीजिये।"

पण्डित शिवकुमार उस माँग-पत्र को मन्त्रिमण्डल में ले गया। महाराज कीर्तिमान ने शिवकुमार से पूछा, "इस विषय पर आपकी क्या सम्मति है?"

"मैं समझता हूँ कि इसका उत्तर हमारी ओर से भी लिखित रूप में ही दिया जाना चाहिये।"

"मैं उस उत्तर के विषय में ही पूछ रहा हूँ।"

"इसका निर्णय तो आपका मन्त्रिमण्डल करेगा।"

"मैं इसमें आपकी सम्मति जानना चाहता हूँ।"

"मेरी सम्मति में इसका उत्तर इस प्रकार दिया जाना चाहिये—

१. आपके और हमारे राज्य-नियमों में अन्तर है। हमारे राज्य के नियम कुछ इस प्रकार हैं कि उनके आधार पर हम किसी अन्य राज्य को अपने अनुकूल अथवा प्रतिकूल करना उपयुक्त नहीं समझते। अपने राज्य के लिए नियम बनाने के लिए आप स्वतन्त्र हैं। हम उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। ऐसे ही आपके राज्य द्वारा हम अपने राज्य के नियमों में हस्तक्षेप को भी नहीं सहन कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. अपनी प्रजा के हित के लिये जो नियम हम उचित और उपयुक्त समझते हैं, हम वही नियम बनायेंगे। आप अपनी प्रजा पर जो प्रतिबन्ध लगाना चाहें वह लगाने के लिए आप स्वतन्त्र हैं।

३. हम अपने वर्तमान विधान को बदलने की आवश्यकता नहीं समझते। हमारे राज्य में आपके राज्य के साथ देश की सीमा अथवा किसी अन्य विषय पर भी किसी प्रकार का विवाद नहीं है। आप अपने नागरिकों से व्यवहार रखने में स्वतन्त्र हैं और हम अपने नागरिकों से।

४. हमारी नीति है कि हम अपने नागरिकों पर अर्थ के उपार्जन और व्यय पर किसी प्रकार का प्रतिवन्ध नहीं लगायेंगे। न ही हम व्यक्ति के अर्थ-सम्बन्धी व्यवहार पर किसी प्रकार का नियन्त्रण ही लागू करेंगे।"

पण्डित शिवकुमार ने राज्य के लिपिकार को इस प्रकार का उत्तर लिखा दिया। उसने कहा, "इस पर सायंकाल मन्त्रिमण्डल विचार कर लेगा। यदि मन्त्रि-मण्डल ने इसको स्वीकृति दे दी तो इसको मेरे पास भेज दिया जाए। तब मैं मगध के मन्त्री को यह उत्तर दे दूंगा।"

विगत चालीस वर्ष से त्रिविष्टप में शिवकुमार द्वारा संचालित नीति का ही यह परिणाम था कि त्रिविष्टप के गुप्तचरों को अपने आसपास के सभी देशों की गतिविधियों का ज्ञान रहता था। वे यह सूचना निरन्तर दिया करते थे। पड़ोसी देशों में राजदूत नियुक्त करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई थी। त्रिविष्टप राज्य की नीति यह थी कि वह अपने देश के प्रबन्ध में कुशलता से कार्य कर रहा था। किसी अन्य देश की आभ्यन्तरिक नीतियों में उसको किसी प्रकार की रुचि नहीं थी।

अपना यही आशय उसने मगध को दिये जाने वाले उत्तर में भी स्पष्ट किया था।

शिवकुमार द्वारा लिखाया गया उत्तर मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। मन्त्रिमण्डल ने उसको उसी रूप में स्वीकार किया तो उसको पण्डित शिव-कुमार के पास भेज दिया।

पण्डित शिवकुमार ने दूसरे दिन जब अपना लिखित उत्तर पण्डित वररुचि को दिया तो उसने उसी समय उसको पढ़ना आरम्भ कर दिया। उसको पढ़ लेने के उपरान्त वररुचि बोला, "मेरी दृष्टि में तो यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं है। तदपि मैं इसको लेकर जाता हूँ और अपने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख इसको विचारार्थ प्रस्तुत करूँगा। मन्त्रिमण्डल के निर्णय से आपको सूचित कर दिया जायेगा।"

शिवकुमार को इस पर अधिक कुछ कहने को था नहीं। अतः वह उठकर जाने लगा। इस अवसर पर वररुचि ने पण्डित शिवकुमार के नाम महाराज कुमारगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निजी पत्र दिया। शिवकुमार ने पूछा, "यह क्या है?"

"महाराज का आपके नाम पत्र है।"

शिवकुमार ने वहीं पर पत्र पढ़ लिया। उसमें लिखा था, "यदि आप परिवार सहित अथवा परिवार के बिना जैसे भी आप उचित समझें, पाटलिपुत्र में रहना चाहें तो राज्य आपको सब प्रकार की सुविधायें देने के लिये तत्पर है। पण्डित हरिषेणजी के निधन के उपरान्त हम सम्मति के लिए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण का अभाव अनुभव करते आ रहे हैं।

"यदि आपने स्वीकार कर लिया तो आपको राजपुरोहित के पद पर उन्हीं शर्तों पर नियुक्त कर दिया जायेगा जिन पर आप मेरे पितामह के राज्य के अवसर पर विराजमान थे।

"आपके प्रति राजा और हमारा देश सदा आभार मानेगा।"

पत्र पढ़ने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार ने कहा, "मैं अपने परिजनों के सम्मुख इस पर विचार करने के उपरान्त ही अपना लिखित उत्तर दे सकता हूँ।

"इस समय मेरा ज्येष्ठ पुत्र विदेश गया हुआ है। सम्भवतया वह शीघ्र ही वापस आ जायेगा। उसके आने के उपरान्त ही इस पत्र का उचित उत्तर दिया जा सकता है। मेरे पौत्र और पौत्री यहाँ विवाह-बन्धन से बँधे हैं। उनकी सम्मति लेना भी आवश्यक है।

"तदपि मैं यत्न करूँगा कि यथाशीघ्र महाराज के इस कृपापूर्ण पत्र का उत्तर मैं दे दूँ।"

शिवकुमार ने मन्त्रिमण्डल को वररुचि की प्रतिक्रिया के विषय में बता दिया। मन्त्रिमण्डल ने जब उस पर विचार किया तो यह निश्चय किया गया कि त्रिविष्टप के जो गुप्तचर पाटलिपुत्र में नियुक्त हैं, उनकी सूचना के आधार पर ही इस विषय पर विचार किया जाये।

महाराज कीर्तिमान को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने उसी सायंकाल पण्डित शिवकुमार को भेंट करने के लिये बुला भेजा। शिवकुमार जब आया तो महाराज ने अपनी आशंका व्यक्त कर दी। शिवकुमार ने कहा, "महाराज! आपको अपनी सीमा पर नियुक्त सैनिकों को जहाँ सतर्क रहने के लिये कह देना चाहिए वहाँ उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि कर देनी चाहिए। इसके साथ ही अपनी सैनिक शक्ति को विकसित करना भी आपके लिये आवश्यक है।

"मैं समझता हूँ कि आपको मगध से युद्ध की तैयारी कर लेनी चाहिए। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि हिमालय की ओर से तो भारत त्रिविष्टप पर आक्रमण करेगा नहीं। उसके लिए अन्य मार्ग कश्मीर ही रहता है। अतः उस दिशा में अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है।"

त्रिविष्टप में जैसा कि पण्डित शिवकुमार ने महाराज को परामर्श दिया था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुसार भारत की सीमा तथा कश्मीर के साथ-साथ पाटलिपुत्र में भी अपने गुप्तचरों की गतिविधियों को तीव्र कर दिया गया। वहाँ से त्रिविष्टप में निरन्तर सूचनाएँ आने लगीं।

इसके साथ ही शिवकुमार के परामर्शानुसार त्रिविष्टप में सैनिकों की भी भरती होने लगी। नित्य सैनिकों को शस्त्रास्त्र संचालन का अभ्यास कराया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य का व्यय-भार बढ़ गया। उसके लिये स्थानीय उपशासकों को बुलाकर स्थिति का वर्णन किया गया और उनसे आग्रह किया गया कि वे इस कार्य में राज्य की सहायता करें।

पण्डित शिवकुमार ने उन लोगों से आग्रह किया जो अपनी दैनिक आवश्यकता से अधिक अर्जन करते थे कि वे राज्य को आर्थिक सहायता प्रदान करें। सामान्य नागरिकों के जीवन में केवल यही अन्तर आया कि लाखों की संख्या में नागरिकों को सेना में भरती किया गया था। सेना के अतिरिक्त भी उनसे कार्य लिया जाने लगा था।

राजधानी से सीमा तक जाने वाले सभी मार्गों को ठीक किया गया। सेना के आवागमन तथा स्थानान्तरण को गति प्रदान करने की दृष्टि से वाहनों का निर्माण आरम्भ कर दिया गया।

इसके अतिरिक्त नये-नये प्रकार के ऐसे अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया गया जो कि दूर से शत्रु पर वर्षा कर सकें।

वररुचि के ल्हासा से जाने के दो वर्ष बाद गुप्तचरों ने सूचना दी कि सैनिकों की छोटी-छोटी इकाइयां कश्मीर में प्रवेश कर रही हैं। यद्यपि कश्मीर राज्य सैनिकों के इस जमाव को अपने राज्य में उचित नहीं समझता था, किन्तु प्रवरसेन द्वितीय ने मगध-सम्राट की सहायता से ही राज्याधिकार प्राप्त किया था, इस कारण वह उसको रुष्ट भी नहीं कर सकता था।

भारत से यह सूचना प्राप्त होने पर कि कश्मीर में भारत की सेना का दबाव बढ़ रहा है, त्रिविष्टप ने यही अनुमान लगाया कि निश्चित ही भारत कश्मीर की ओर से त्रिविष्टप पर आक्रमण करने की योजना बना रहा है।

पुंगी ही एक ऐसा स्थान था, जहाँ से त्रिविष्टप में सेना प्रविष्ट हो सकती थी।

इधर त्रिविष्टप के सैनिकों में यह किंवदन्ती प्रचलित थी कि पण्डित शिवकुमार अकेला ही विशाल सेना के आक्रमण को रोक सकता है। उसका परिणाम यह हुआ कि शिवकुमार को ही सेना का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त कर दिया गया।

जैसी कि सम्भावना थी, भारतीय सैनिकों ने कश्मीर के मार्ग से ही त्रिविष्टप में प्रवेश कर दिया। ज्यों ही वे नौ हजार फीट की ऊँचाई पार कर त्रिविष्टप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविष्ट हुए, त्रिविष्टप की ओर से उनका घोर विरोध हुआ। इस प्रकार तीन मास तक निरन्तर भारत के सैनिक कश्मीर की ओर से त्रिविष्टप की सीमा में प्रविष्ट होने का यत्न करते रहे किन्तु त्रिविष्टप की ओर से उसी प्रकार उनका विरोध होता रहा।

तीन मास के उपरान्त ऋतु परिवर्तन आरम्भ हो गया। शीत लहर आरम्भ हो गई। त्रिविष्टप का सारा मार्ग हिमाच्छादित हो गया। इससे भारत की सेना का सीमा में प्रवेश रुक गया।

तभी सूचना मिली कि चन्द्रगुप्त के दोनों पुत्रों में वैमनस्य होने के कारण राज्य दो भागों में विभक्त हो गया है। इसके साथ ही यह भी सूचना मिली कि विन्ध्याचल प्रदेश में विदिशा ने विद्रोह खड़ा कर दिया है।

इस प्रकार भारत द्वारा त्रिविष्टप पर किये जाने वाले आक्रमण का अन्त हो गया। इसके अन्त होते ही त्रिविष्टप ने कश्मीर को आदेश दे दिया कि अपने राज्य से वह सब मागधी सेना को मगध वापस भेज दे। यदि ऐसा न किया गया तो त्रिविष्टप कश्मीर को अपना एक प्रान्त समझकर उस पर अपना अधिकार कर लेगा।

त्रिविष्टप की ओर से इस प्रकार की सूचना मिलने पर कश्मीर ने इस विषय पर वार्तालाप द्वारा विचार-विनिमय करने का आग्रह व्यक्त किया। त्रिविष्टप ने इस कार्य के लिये पण्डित शिवकुमार को श्रीनगर भेज दिया।

कश्मीर-नरेश प्रवरसेन को यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि त्रिविष्टप कश्मीर को स्वतन्त्र राज्य स्वीकार करता है। किन्तु उसने कश्मीर से यह वचन माँगा कि कश्मीर से समस्त मागधी सेना को वापस भेज दिया जायेगा।

मागधी सेना के वापस भेजे जाने पर प्रवरसेन ने यह आशंका व्यक्त की कि इससे मगध राज्य रुष्ट हो जाएगा और सम्भव है, वह कश्मीर पर अधिकार करने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण कर दे। उस अवस्था में त्रिविष्टप कश्मीर की क्या सहायता करेगा?

शिवकुमार ने कश्मीर की समस्या पर विचार किया और फिर इस कश्मीर की सुरक्षा पर विचार-विनिमय होने लगा।

इसी अवधि में एक दिन शिवकुमार ने अपने चुनार उद्यान के डेरे के बाहर पेड़ के नीचे चौकी पर बैठे हुए देखा कि उद्यान के द्वार पर आया एक संन्यासी भीतर आने का यत्न कर रहा है, किन्तु जो सैनिक वहाँ पर रक्षा के निमित्त खड़े हैं, वे उसको भीतर प्रविष्ट नहीं होने दे रहे हैं।

शिवकुमार ने ध्यान से देखा तो पहचान गया। वह संन्यासी के वेश में उसका ही पुत्र वृहस्पति था। उसने तुरन्त अपने सेवक को भेजकर उसको भीतर बुलवा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार पिता-पुत्र का सम्मिलन हुआ। फिर वहीं बैठकर परस्पर कुशल समाचार पूछा जाने लगा।

शिवकुमार ने अपने घर का विस्तार से समाचार दिया और फिर उसको कहा कि बड़ी उत्सुकता से उसके लौटने की प्रतीक्षा की जा रही है।

वृहस्पति ने अपना विवरण सुनाते हुए कहा, "मुझे ल्हासा से गये हुए सात वर्ष, तीन मास और छः दिन हो गये हैं। असुर देश से रोम साम्राज्य पर आक्रमण के कारण मैं उत्तर के मार्ग को छोड़ दक्षिण के मार्ग से आया हूँ। कृष्ण सागर और क्षीर सागर को पार कर यवन देश तथा काम्भोज होता हुआ कश्मीर पहुँच पाया हूँ।

"मैं श्रीनगर में कुछ दिन विश्राम कर त्रिविष्टप को जाने का विचार कर रहा था कि तभी मुझे आपके आयोग के यहाँ होने का समाचार मिला। यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं सीधा आपसे मिलने के लिए चला आया हूँ।"

"यह तो तुमने ठीक ही किया है; परन्तु तुम्हारे उस कार्य का क्या हुआ, जिसके लिए तुम गये थे?"

"उसमें मैं सर्वथा असफल रहा हूँ। अभी तो इतना ही वता रहा हूँ। बात यह है कि मैं थका हुआ हूँ। स्नानादि कर कुछ विश्राम करना चाहता हूँ।"

"ठीक है। तुम विश्राम करो।"

शिवकुमार ने अपने सेवक को बुलाकर वृहस्पति के स्नान आदि की व्यवस्था के लिये कह दिया।

कश्मीर के राज्याधिकारियों से शिवकुमार का वार्तालाप बड़ी सरलता से चल रहा था। पहली ही भेंट में कश्मीर के महामन्त्री चतुरसेन ने कहा, "महाराज मेघवाहन की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र प्रवरसेन प्रथम राज्यासीन हुए। जब प्रवरसेन की मृत्यु हुई तो उनके पुत्र महाराज हिरण्य का राज्याभिषेक मगध के महामन्त्री वररुचि ने किया था।

"तब से ही कश्मीर को मगध का एक प्रान्त समझा जाता रहा है। हिरण्य की मृत्यु के उपरान्त दस वर्ष तक यहाँ मन्त्रिमण्डल का शासन रहा है। उसके उपरान्त चार वर्ष कुछ मास तक मगध के महाराज विक्रमादित्य द्वारा मनोनीत एक कवि महाराज पद पर प्रतिष्ठित रहे थे। पीछे तोरमान के पुत्र प्रवरसेन द्वितीय सहसा प्रकट हो गये और मगध की सहायता से उनको राज्यासीन कर दिया गया। उस समय मगध पर महाराज विक्रमादित्य के पुत्र कुमारगुप्त का शासन था। मगध अभी भी कश्मीर को अपना एक प्रान्त ही मानता है।

"यही कारण है कि जब कुमारगुप्त ने अपनी सेनाओं के आगे बढ़ने के लिए कश्मीर से मार्ग माँगा तो हमको देना पड़ा था, अन्यथा कश्मीर तो सदा से ही त्रिविष्टप से मैत्री के सम्बन्ध का इच्छुक रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने कहा, "मैं त्रिविष्टप राज्य की ओर से आपसे सन्धि पर विचार-विमर्श करने के लिए ही भेजा गया हूँ। हम चाहते हैं कि आप भी त्रिविष्टप की भाँति स्वयं को स्वतन्त्र देश घोषित कर दें। भविष्य में मगध यदि इस मार्ग से अपनी सेना ले जाना चाहे तो इसके लिए वह स्वतन्त्र नहीं होगा। यह आपकी इच्छा पर निर्भर करेगा। यदि आप चाहें तो उसकी सेनायें इस मार्ग से जा सकेंगी अन्यथा नहीं जा सकतीं।

"इसके साथ ही यह विचार करना भी आपके अधिकार में होगा कि इस प्रकार सैनिक अभियान आपके हित में होगा अथवा कि अहित में।

"इसका परिणाम यह होगा कि जिस प्रकार हमारे देश से मगध की पराजय हुई है, उस पराजय में आप भी सम्मिलित नहीं होंगे। और यदि आप उनके युद्ध-अभियान में सम्मिलित होंगे तो युद्ध में हार-जीत के परिणाम का भी आपको भागी बनना पड़ जायेगा।

"मैं त्रिविष्टप राज्य की ओर से यह कहना चाहता हूँ कि भविष्य में यदि फिर किसी देश की सेना आपके देश से होकर हमारे देश पर आक्रमण करेगी तो उसमें आप भी उतने ही उत्तरदायी होंगे जितना कि आक्रमण करने वाला देश होगा।

"यह अब आपके विचार करने की बात है। यदि पुनः इस देश की ओर से किसी देश ने अपनी सेना भेजकर त्रिविष्टप पर आक्रमण किया तो हम उस देश के साथ-साथ कश्मीर को भी अपना वैसा ही शत्रु समझकर इसके साथ भी वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा कि किसी शत्रु के साथ किया जाता है।"

"यदि भारत ने बलपूर्वक यहाँ से अपना मार्ग बना लिया तो?"

"ऐसी अवस्था में यदि आप हमें अपने विश्वास में लेंगे तो फिर हम बलपूर्वक मार्ग बनाने वालों से आपकी सीमा पर ही युद्ध करने के लिए आ जायेंगे। इस प्रकार हम उन साम्राज्यवादियों का मिलकर विरोध करेंगे।"

कश्मीर यह भली-भाँति जानता था कि त्रिविष्टप ने मगध राज्य की सेनाओं को सीमा से बढ़ने ही नहीं दिया था। इससे कश्मीर महाराज समझ गये थे कि बल में त्रिविष्टप भी कम नहीं है। इसलिए वह भी त्रिविष्टप से सन्धि करने के लिए उद्यत हो गया।

यह निश्चय हो जाने पर सन्धि-पत्र का प्रालेख तैयार किया जाने लगा। ऐसे समय पर बृहस्पति श्रीनगर पहुँच गया था।

: ४ :

बृहस्पति को आया देखकर शिवकुमार को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और वह समझता था, इससे उसके परिवार वाले भी बहुत प्रसन्न होंगे। किन्तु कश्मीर से वार्तालाप में अभी समय लग रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्मीर राज्य में दो मुख्य बातों पर विचार-विनिमय होना शेष था। एक तो प्रमुख बात यह थी कि सन्धि होने पर किसको क्या लेना-देना होगा ?

दूसरी मुख्य बात यह थी कि वह सन्धि इन दोनों देशों में परस्पर गुप्त ही रखी जाए अथवा भारत के सभी राज्यों को इसकी सूचना दे दी जाए कि कश्मीर और त्रिविष्टप में परस्पर इस प्रकार की सन्धि हो गई है।

दूसरी बात के सम्बन्ध में शिवकुमार का तो स्पष्ट मत था कि दूसरों से किये जाने वाले व्यवहार में कोई बात गुप्त नहीं रखी जानी चाहिये। इसलिए कुछ इस प्रकार की बात होनी चाहिये कि जिससे सन्धि की बात प्रकट होने पर भारत अथवा किसी अन्य देश को किसी प्रकार की कोई अधर्मयुक्त बात होने का सन्देह न हो अथवा किसी को यह आभास न हो कि उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय किया गया है।

किन्तु कश्मीर राज्य इतनी दूर की नहीं सोच रहा था। वह इसे गुप्त ही रखने के पक्ष में था। शिवकुमार इसीलिए वहाँ रुका हुआ था कि वह कश्मीर को इस प्रकार की प्रेरणा दे सके।

उस दिन वृहस्पति को स्नान आदि करने के उपरान्त विश्राम करने के लिए कह शिवकुमार अपने कार्य में प्रवृत्त हो गया था। वृहस्पति ने यथासमय भोजन आदि किया और वह विश्राम करने लगा।

पिता-पुत्र में फिर दिन-भर किसी प्रकार का वार्तालाप नहीं हुआ। दोनों में परस्पर भेंट रात्रि के भोजन के समय ही हो पाई। उस समय वृहस्पति ने कहा, "मैं अपने नगर ल्हासा से चलकर महामरुभूमि से होता हुआ असुर देश में जा पहुँचा था।

"असुर देश की राजधानी प्रह्लादपुरी दो सप्ताह तक रहा। उसका कारण यह था कि जिस नक्षत्र की गति का मैं अनुसरण कर रहा था, वह वहाँ जाकर रुक गया था। दो सप्ताह तक वहाँ रुकने के उपरान्त मुझे पुनः वहाँ से चलने की प्रेरणा मिली।

"मैं नगर से बाहर निकला ही था कि मुझे वहाँ यरुशलम जाती हुई एक व्यापार मण्डली मिल गयी। जहाँ तक मेरा ज्ञान था मैं भी उस ओर ही जा रहा था। इस कारण मैं उन व्यापारियों के साथ ही चल पड़ा।

"उन लोगों के पास बीस ऊँट थे, जो उनके व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए थे। उन ऊँटों के पाँच स्वामी थे जो उनको ले जा रहे थे। तीन व्यापारी थे। उनमें एक व्यापारी बड़े साधु स्वभाव का व्यक्ति था।

"मैं जब दो दिन तक उनके साथ-साथ चलता रहा तो तीसरे दिन उस व्यापारी ने मुझसे पूछा कि मैं किस ओर जा रहा हूँ। उसका प्रश्न पाली भाषा में था। मैंने भी उसको पाली में ही उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने कहा, 'यरुशलम जा रहा हूँ।'

" 'किस कार्य से जा रहे हैं?'

"मैंने कहा कि मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि वहाँ किसी श्रेष्ठ आत्मा का जन्म होने वाला है।

"मेरे ऐसा कहने पर वह चलता-चलता खड़ा हो गया और मेरे मुख की ओर देखता रहा।

"मैंने पूछा, 'क्यों, क्या बात है?'

" 'मैं भी इसी प्रयोजन से जा रहा हूँ। मुझे भी किसी ने बताया है कि यरुशलम में किसी विशेष आत्मा का जन्म होने वाला है। मैं उसके दर्शन करने की लालसा से वहाँ जा रहा हूँ।'

" 'क्या होगा दर्शन करने से?'

" 'यह तो आप बताइये, आप भी तो जा रहे हैं?'

" 'मैं दर्शन करने के लिए नहीं जा रहा हूँ। मैं तो उस आत्मा का मार्गदर्शन करने के लिए जा रहा हूँ।"

" 'आप क्यों मार्गदर्शन करना चाहते हैं? आपको क्या मिलेगा उसका मार्गदर्शन करने से?'

" 'यह तो मैं नहीं जानता। मैं एक स्थान पर शिक्षक हूँ। मैं शिक्षक क्यों हूँ, मैं यह भी नहीं जानता। अपने शिक्षण-कार्य का मैं वेतन अथवा दक्षिणा आदि कुछ नहीं लेता। मेरा मन कहता है कि मुझे दूसरों को ज्ञान देना चाहिये। इसलिये मैं ज्ञान का दान करता हूँ।'

" 'आपका निर्वाह किस प्रकार होता है?'

" 'मेरे पिता बहुत धनी व्यक्ति हैं। भोजन और निवास की व्यवस्था उन्होंने की हुई है। मैं तो दिन-रात केवल शिक्षा-दान का ही कार्य करता हूँ।'

"मेरी बात सुनकर वह व्यक्ति मेरा मुख देखता रह गया। मेरे भाव की श्रेष्ठता को तो वह अनुभव करता था, परन्तु इस श्रेष्ठता का वह कारण नहीं जानता था।

"इसके बाद उसने अपने विषय में बताना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, 'मेरा स्थान यहाँ से दस कोस के मार्ग पर है। मैं वहीं का रहने वाला हूँ। उस नगर का नाम दमिश्क है। कुछ दिन हुए, यहूद के एक क्षेत्र गैलीलियो से एक व्यक्ति आया था और कहता था कि वहाँ 'जोन' नाम का एक व्यक्ति है। वह वहाँ के लोगों को सावधान कर रहा है कि परमात्मा का प्यारा बेटा आने वाला है। सबको उसके स्वागत के लिए तैयार रहना चाहिये। वह यहूदी जाति का मसीहा होगा और वह रोम के पशुओं की दासता से उनको मुक्ति दिलायेगा। लोग उसकी बात सुनते हैं और उसको पागल समझकर हँस देते हैं। वे कहते हैं कि वह एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति किस प्रकार कोटि-कोटि रोमन पशुओं से हमको मुक्ति दिला सकता है।

" 'मुझे भी कुछ ऐसे ही स्वप्न दिखायी दे रहे हैं, इसलिये मैं 'जोन' से मिलने के लिए जा रहा हूँ।'

" 'इन सौदागरों से आपका क्या सम्बन्ध है?' मैंने उसके विषय में और अधिक जानने की दृष्टि से पूछा।

" 'मेरा नाम साम है। ये सौदागर भी मेरी ही ओर के रहने वाले हैं। मेरे पास कुछ धन था। मैंने उससे यवन देश की वस्तुयें खरीदकर यहूदियों और मिस्रियों के पास बेचने का विचार किया। मैं इनकी मण्डली में भागीदार बनकर सम्मिलित हो गया हूँ।'

" 'कितना माल है?'

" 'इन बीस ऊँटों पर जो माल लदा है उसका लागत मूल्य चार लाख रजत से अधिक होगा। उसमें मेरा माल अस्सी-नब्बे हजार के लगभग होगा। इस प्रकार मैं दोहरे काम पर निकल पड़ा हूँ। मसीहा के दर्शन होने के साथ-साथ कुछ लाभ भी होगा।'

"इस प्रकार मैं भी उन सौदागरों में मिल गया और उनके साथ ही आगे चल दिया। पाँच दिन उनके साथ चलते रहने के बाद हम यरुशलम पहुँच गये। उन पाँच दिनों में मैं जोन की बातें सुनता रहा हूँ। जोन प्रचारक के नाम से विख्यात था।

"जब हम यरुशलम पहुँचे, उस समय दिन का दूसरा प्रहर बीत रहा था। उन दिनों वहाँ यहूदियों का वार्षिक उत्सव चल रहा था। इस कारण नगर में बड़ी भीड़ एकत्रित हो गयी थी और कहीं रहने को स्थान नहीं मिल रहा था। बड़ी कठिनाई से हमें एक सराय के खुले प्रांगण में रहने के लिए स्थान मिल पाया था।

"हम उस प्रांगण में अपने रहने की व्यवस्था कर ही रहे थे कि उस समय एक अर्द्धविक्षिप्त-सा व्यक्ति सराय के द्वार पर आया और अपनी भाषा में कुछ कहने लगा। वहाँ एकत्रित लोग अपना काम छोड़कर उसकी बात सुनने के लिए उसकी ओर चल दिये। वहाँ पर भारी भीड़ एकत्रित हो गयी। मेरी समझ में तो कुछ आ नहीं रहा था, किन्तु मेरा साथी साम बड़े ध्यान से और रुचिपूर्वक उसकी बातों को सुन रहा था!

"दो घड़ी तक वह व्यक्ति इस प्रकार कुछ-न-कुछ कहता रहा और सब लोग दत्तचित्त होकर उसे सुनते रहे। अपना भाषण समाप्त कर वह वहाँ से चलकर भीड़ में विलीन हो गया।

"उसके जाने पर जब मैंने साम से उसके विषय में पूछा तो उसने कहा कि यही वह जोन है जिसके विषय में उसने चर्चा की थी।

"मैंने उससे कहा, 'तो फिर तुमने उस मसीहा के विषय में पूछा क्यों नहीं?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'यह तो उसने स्वयं ही बता दिया था कि आज आधी रात के समय इसी सराय में मसीहा का जन्म होगा।'

" 'तो?'

" 'अब यह देखा जायेगा कि कौन महिला गर्भवती है और वह कहाँ टिकी हुई है?'

"इस प्रकार जब हमारे डेरे सराय के प्रांगण में लग गये तो हम सराय में घूम-घूमकर देखने लगे कि कोई जन्म देने वाली स्त्री उस सराय में टिकी हुई भी है अथवा नहीं। यदि टिकी है तो कहाँ पर है?

"मैं सराय के द्वार पर जाकर बैठ गया था। मैं वहाँ आने-जाने वाली महिलाओं को देखने लगा। शाम के झुटपुटे में एक पुरुष और एक महिला उस सराय में रहने के लिए आये। वे सराय वाले से अपने ठहरने की जगह माँगने लगे। मैंने उस समय देखा कि महिला गर्भवती है और उसका गर्भ लगभग प्रसव की स्थिति पर पहुँच चुका है।

"उसके साथ जो पुरुष था उसने सराय वाले से कहा कि उसकी पत्नी गर्भवती है। सम्भवतया शीघ्र ही प्रसव करे, इसलिये उस पर दया करके उसको रहने का स्थान दे दे।

"किन्तु सराय वाला स्थान दे नहीं रहा था। उसने कहा कि उसकी सराय में बिल्कुल भी स्थान नहीं बचा है। जब वह पुरुष किसी प्रकार भी वहाँ से नहीं टला तो विवश होकर सराय वाले ने घुड़साल में एक स्थान साफ कराकर उनको रहने के लिए दे दिया।

"मेरा नक्षत्र भी उसी सराय पर आकर ठहर गया था। वह भी वहाँ से आगे नहीं बढ़ रहा था।

"यह देखकर मैं सराय का द्वार छोड़ घुड़साल के द्वार पर जाकर बैठ गया। साम भी मेरे साथ ही था। उस महिला ने रात को एक बालक को जन्म दिया। दिन निकलने तक हम वहीं बैठे रहे।

"जब उस महिला के पति को हमारी इच्छा का ज्ञान हुआ और उसने हमारी प्रार्थना स्वीकार की तो फिर वह नवजात शिशु को कपड़े में लपेटकर बाहर लाया और हमें दिखा दिया।

"वह बच्चा देखने में वैसा ही ओजस्वी लग रहा था, जैसा मेरा प्रेरक वह नक्षत्र था।

"उसके बाद दिन-भर साम अपना माल बेचता रहा। मैं वहीं सौदागरों के डेरे पर ही रहा। समय-समय पर मैं उस प्रसूता के पति से मिलकर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर दिया करता था।

"उस व्यक्ति का नाम जोजफ था। उसकी पत्नी का नाम मेरी था। सराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उसने स्वयं को मेरी का पति ही लिखाया हुआ था। उसने मुझको बताया कि वह समीप के ही एक ग्राम का निवासी है। राजा की आज्ञा हुई कि कर चुकाया जाए, सो वह कर चुकाने के लिए आया है।

"सायंकाल जब साम अपने व्यापार से वापस आया तो उसने पुनः उस शिशु के दर्शन करने चाहे। जोजफ ने दर्शन करा दिये। उस रात मैंने आकाश में देखा तो पाया कि मेरा पथ-प्रदर्शक नक्षत्र कहीं नहीं है। मैं समझ गया कि वही शिशु है, जिसके पथ-प्रदर्शन के लिए मुझे यहाँ आने की प्रेरणा मिली थी।

"वह पुरुष और महिला तीन दिन तक वहाँ रहे। इन तीनों दिन जोन वहाँ के नगर में घूम-घूमकर घोषणा करता रहा कि उसके नगर में संसार के उद्धार के लिए मसीहा का जन्म हो गया है।

"साम दिन-भर तो अपना माल बेचता रहता और सायंकाल वापस लौटने पर वह जोजफ के पास जाकर जोन द्वारा किये जाने वाले प्रचार के बारे में बताता था। यह सुनकर जोजफ को भय लगने लगा। वह समझता था कि यदि जोन की बात वहाँ के आयुक्त के कान में पड़ गयी तो वह उस बच्चे को पकड़वाकर मरवा देगा।

"उसका भय ठीक ही था, निराधार नहीं था। यद्यपि रोम के सम्राट द्वारा नियुक्त आयुक्त यरुशलम के स्थानीय यहूदियों की ही एक समिति बनाकर शासन चला रहा था, किन्तु यह समिति केवल नाम के लिए ही थी। उसका कारण यह था कि समिति के सदस्यों की नियुक्ति किसी निर्वाचन द्वारा नहीं होती थी, अपितु आयुक्त स्वयं अपनी इच्छा से उनकी नियुक्ति करता था। और वह उन सदस्यों को भरपूर वेतन देता था, जिससे कि उनको किसी प्रकार की शिकायत रहे ही नहीं।

"उस समिति के सदस्य यरुशलम के ही रहने वाले थे। इस कारण वे वहाँ के निवासियों के प्रतिनिधि ही माने जाते थे। तदपि वे आयुक्त के निर्णय के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं करते थे।

"एक दिन साम अपने दिन-भर के व्यापारिक कार्य से शाम को लौटा तो उसने बताया कि नगर में यह बात कानोंकान बतायी जा रही है कि वहाँ के आयुक्त को यह विदित हो गया है कि यहूदियों को रोमनों की राजनीतिक दासता से मुक्त करने के लिए उनका मसीहा यरुशलम में जन्म ले चुका है। इस सूचना के आधार पर उसने अपनी परामर्शदात्री समिति की बैठक बुलाकर उनसे जोन द्वारा प्रचारित बात के परिणाम के विषय में परामर्श किया है।

"साम ने जब यह समाचार मुझे दिया तो मैं घुड़साल में चला गया और वहाँ मैंने उस नवजात शिशु के माता-पिता को इस विषय में बता दिया। इससे उन दोनों को चिन्ता होने लगी। दोनों पति-पत्नी परस्पर अपनी भाषा में विचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श करने लगे।

"उसी दिन आधी रात के समय जोसफ मेरे खेमे में आकर कहने लगा कि वे लोग यह नगर छोड़कर अपने गाँव वापस जा रहे हैं।

"मैंने पूछा, 'क्यों ?'

" 'मुझे ऐसा लग रहा है कि आयुक्त के सैनिक कल प्रातःकाल ही जोन द्वारा प्रचारित शिशु की खोज आरम्भ कर देंगे। मेरी पत्नी को भय है कि यदि उनको उसका शिशु मिल गया तो वे उसको ले जाकर मार देंगे।'

"मैंने वहाँ के लोगों तथा साम के मुख से जो कुछ भी सुना था उस पर विचार करते हुए मुझे जोजफ का भयभीत होना उपयुक्त ही लग रहा था। मैंने भी उसको यही परामर्श दिया कि उसको तुरन्त यहाँ से चला जाना चाहिये।

"मैंने उसको यह भी कहा कि प्रसूता पैदल ही चलकर लम्बी यात्रा नहीं कर पायेगी। तब वह बोला कि उसके पास इतना धन तो नहीं कि वह कोई वाहन किराये पर ले सके।

"मैंने उसको एक स्वर्ण देकर कहा कि वह सराय के बाहर से कोई वाहन कर उसमें अपनी पत्नी को ले जाए। मैं भी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गया। जब से वह वहाँ आया था तब से मैं ही उससे मिलता रहता था और समय-समय पर उसकी सब प्रकार की सहायता कर दिया करता था। स्वर्ण मुद्रा देखकर वह विस्मय में मेरे मुख को देखने लगा।

"मैंने उसका सन्देह निवारण करने का यत्न किया। मैंने उसको बताया कि मैं डेढ़ सहस्र कोस से केवल एक बालक के पालन-पोषण के लिए यहाँ आया हूँ। मैंने उसको कहा कि मुझे उनके परमात्मा जहोवा ने भेजा है।

"जहोवा का नाम सुनकर वह आश्वस्त हो गया। तब वह सराय के बाहर गया और एक रथ भाड़े पर ले आया। रथ के आने पर हम तीनों उस शिशु को ले रथ में सवार हो सूर्योदय से पूर्व ही यरुशलम से बाहर निकल गये।

"चार दिन तक हम रथ में यात्रा करते रहे, तब कहीं जाकर जोजफ का गाँव दिखायी दिया। वे दोनों तो अपने घर पर चले गये और मैंने भी वहीं किराये पर एक मकान ले लिया और वहाँ रहने लगा। मैं नित्य उस बालक को देखने के लिए जाया करता था।

"इस प्रकार आते-जाते गाँव के लोगों से भी मेरा परिचय बढ़ने लगा। ग्रामवासियों से ही मुझे विदित हुआ कि जोजफ बढ़ई का काम करता है। वहीं मुझे यह भी विदित हुआ कि मेरी उसकी पत्नी नहीं अपितु अविवाहिता पुत्री है। यद्यपि जोजफ के विषय में गाँव वालों की धारणा यही थी कि वह भला और ईमानदार व्यक्ति है। इस कारण गाँव वालों की यही धारणा थी कि मेरी का बच्चा गाँव के किसी 'आवारा' युवक का होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमारे उस गाँव में पहुँचने के एक मास बाद साम भी वहाँ आ गया। उसने बताया कि हमारे यरुशलम से चले आने के बाद अगले दिन ही नगर-भर में जिन बच्चों का जन्म उससे एक सप्ताह पूर्व हुआ था, पकड़कर एकत्रित किया गया और उनको मार डालने की आज्ञा हो गयी।

"इस प्रकार लगभग एक सौ शिशुओं को पकड़कर एकत्रित कर उन्हें मार डाला गया। इससे नगर-भर में आतंक फैल गया और जो यात्री वहाँ आये हुए थे वे भयभीत रहने लगे थे। अधिक समय तक यात्री वहाँ टिक नहीं सके और सबने वहाँ से जाना आरम्भ कर दिया।

"मैंने उससे पूछा कि जोन का क्या हुआ?

" 'उसको पकड़कर आयुक्त के सम्मुख उपस्थित करने की आज्ञा दी गयी थी। राज्य-कर्मचारी उसकी खोज करते रहे किन्तु वह उनको कहीं नहीं मिला।

" 'यद्यपि उत्सव अभी आठ दिन और चलने वाला था। किन्तु इस भगदड़ के कारण उसके रंग में भंग हो गया। विवश होकर हमें भी अपना माल सस्ते मूल्य पर बेचकर किसी प्रकार नकद रुपया एकत्रित करना पड़ा।'

"मैंने साम से पूछा, 'इससे तो तुम्हें व्यापार में हानि हो गयी होगी?'

" 'हानि तो नहीं हुई; हाँ, उतना लाभ नहीं हुआ जितने कि मैं आशा करता था।"

"साम ने मेरी के शिशु के दर्शन किये। फिर उसने मेरी को एक स्वर्ण भेंट में दिया। उसके बाद वह वहाँ से वापस अपने निवास पर चला गया।

"उसके कुछ दिन बाद एक दिन जोजफ मेरे पास आकर मुझसे पूछने लगा कि मुझे उस गाँव में क्या काम है?

"मैंने अपना उद्देश्य उसको बता दिया। इस पर वह कहने लगा कि गाँव वाले कहते हैं कि मैं मेरी के बच्चे का पिता हूँ। इस कारण गाँव वाले मुझ पर रुष्ट होने लगे हैं।

"मैंने जोजफ को समझाया और अपने वहाँ आने का कारण बताया। मैंने उसको कहा कि नित्य मुझे स्वप्न में आकर जहोवा कहता है कि मुझे मेरी के शिशु का पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना है।

"इतने दिनों तक वहाँ रहते हुए मैंने उनकी भाषा के थोड़े-बहुत शब्द सीख लिये थे। मैंने उनकी भाषा में ही टूटे-फूटे शब्दों में उसको समझाने का यत्न किया था।

"जहोवा का नाम सुनकर उसको तो सन्तोष होता था, किन्तु वह कहने लगा कि वहाँ के लोग उसकी इस बात पर विश्वास नहीं करेंगे। उसने यह भी कहा कि उसको यह भय है कि किसी दिन रात्रि के समय गाँव वाले मकान सहित उसको फूंककर भस्म कर देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह सुनकर मैंने कहा कि मैं वहाँ से चला जाता हूँ और यरुशलम जाकर रहता हूँ। बच्चा जब तीन वर्ष का हो जाए तो वह उसको लेकर मेरे पास आ जाएँ और उसे मुझे सौंप दें जिससे कि मैं उसका उचित पालन-पोषण और शिक्षा का प्रबन्ध कर सकूँ।

"यरुशलम के रोमन आयुक्त का नाम हरोड था। यद्यपि उसने जोन द्वारा घोषित सप्ताह में उत्पन्न सारे बच्चों को पकड़कर मरवा दिया था, किन्तु इससे भी उसका भय दूर नहीं हुआ। उसने आज्ञा दे दी कि उस समय जिसका भी कोई बच्चा एक वर्ष से कम आयु का है, उसको पकड़कर मार डाला जाए।

"हरोड की आज्ञा सुनकर जोजफ और मेरी को डर लगने लगा तो उन्होंने अपना बच्चा लिया और अपने गाँव से भागकर मिस्र की ओर चल दिये।

"मैं भी उनके साथ गया। जोजफ बढ़ई का काम करता हुआ मेरी और उसके बच्चे का पालन करता था। मैं कभी-कभी उसकी सहायता करना भी चाहता तो मेरी सहायता स्वीकार नहीं करता था और इस प्रकार वह मेरी और बच्चे से मेरा सम्बन्ध स्थापित होने ही नहीं देता था।

"कुछ वर्ष बाद यरुशलम के आयुक्त हरोड का देहान्त हो गया। इसकी सूचना मिलते ही जोजफ अपने परिवार को लेकर अपने गाँव वापस चला गया।

"इस समय तक बालक, जिसका नाम जोजफ ने यशू रख दिया था, पाँच वर्ष का हो गया था। मैंने उसको देवभाषा और पाली सिखानी आरम्भ कर दी थी। अपनी माँ से वह अपनी हिब्रू भाषा तो यों ही सीख रहा था।

"मैंने उस समय यशू को यह प्रेरणा देनी आरम्भ कर दी कि वह अपनी माँ को साथ लेकर मेरे साथ भारत चला चले। मैंने उसे अपने योग के कुछ चमत्कार भी दिखाये। मैंने उसको यह आश्वासन दिया कि यह सब मैं उसको सिखा दूँगा।

"मेरी अपने पिता को छोड़कर मेरे साथ जाने के लिए तैयार नहीं होती थी और यशू अपनी माँ को छोड़कर जाना नहीं चाहता था। जोजफ तो अपना गाँव छोड़ना ही नहीं चाहता था।

"मैं उन लोगों को प्रोत्साहित करता रहता था। आखिर एक दिन यशू मेरे पास आया और अपना अन्तिम निर्णय बता दिया। उसने कह दिया कि उसकी माँ उसको मेरे साथ भेजने के लिए कदापि तैयार नहीं है।

"गाँव में पढ़ा-लिखा होना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं मानी जाती थी। यद्यपि वह इस बात को नहीं मानता था, किन्तु गाँव वालों के कहने पर वह भी उसी प्रकार की बात कहने लगा था, यद्यपि यह उसकी आत्मा की प्रतिध्वनि नहीं थी।

"एक दिन मैंने उसको समझाते हुए कहा, 'ईश्वर की यह इच्छा है कि तुम भू-मण्डल में ख्याति प्राप्त करो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'जब ईश्वर ऐसा कहता है तो फिर ख्याति तो प्राप्त होगी ही। उसकी कही बात मिथ्या तो नहीं हो सकती। यदि ऐसी बात है तो फिर मैं क्यों अपने घर से बाहर अज्ञात स्थान और लोगों के बीच में जाकर रहूँ ?'

" 'यह तो ठीक है कि परमात्मा के विधान से तुम बड़े व्यक्ति बनने वाले हो, परन्तु यदि बिना ज्ञान प्राप्त किये तुम विख्यात हो गये तो संसार में मूर्खता का ही प्रसार करोगे। इस प्रकार तुम्हारा विख्यात होना अनधिकृत हो जायेगा और इससे समाज का भी ह्रास होगा। यह तो पाप है।'

" 'मैं तो कोई करने वाला हूँ नहीं। जहोवा ही सब कराता है। यदि वह पाप कराना नहीं चाहता है तो मेरे मस्तिष्क में ज्ञान भर दे और यदि वह ज्ञान नहीं भर सकता है तो फिर मुझे बड़ा भी न बनाये।'

"उसकी युक्तियाँ सुन मैं समझ गया कि किसी मूर्ख ने उसके मस्तिष्क में इन विचारों को भर दिया है। उस छः वर्ष के बालक को मैं युक्ति से कुछ समझा नहीं सका।

"तदपि मैंने उसको अपना एक चमत्कार दिखा दिया।

"उसके गाँव का नाम नजरथ था। गाँव वालों को यह सन्देह तो था ही कि मेरी के पुत्र का बाप मैं ही हूँ। उनको यह भी सन्देह था कि मैं मेरी को पथभ्रष्ट करने के लिए ही वहाँ टिका हुआ हूँ। इसलिये मेरे विरुद्ध उन्होंने षड्यन्त्र किया और सारे गाँव वाले उस मकान को घेरकर खड़े हो गये, जिसमें मैं रहता था। मेरा मकान मालिक भी उनके साथ ही था। यद्यपि वह मुझसे प्रतिमास पाँच रजत मकान का भाड़ा लिया करता था। उसे भय था कि कहीं लोग उसका मकान ही न फूँक डालें। उसने मुझसे कहा कि उसे सन्देह है कि गाँव वाले मकान फूँक देंगे, अतः यही उचित है कि मैं मकान से बाहर हो जाऊँ।

"मैंने पूछा, 'क्यों ?'

" 'गाँव वालों को तो आपकी हत्या करनी है ही, किन्तु इससे मेरा मकान भस्म होने से बच जायेगा।'

" 'गाँव वाले मेरी हत्या नहीं कर सकते।'

" 'क्या बात करते हैं आप ? सारा गाँव एकत्रित हो गया है। वे पत्थर मार-मारकर आपकी हत्या कर देंगे। यदि मकान के भीतर छिप गये तो वे मकान को आग लगा देंगे।'

" 'जहोवा मेरी रक्षा करेगा। मुझे कोई नहीं मार सकता।'

"मकान मालिक निराश हो गया। वह चला गया तो फिर जोजफ आया। उसने मुझसे फिर कहा कि लोगों को यह सन्देह है कि मेरी से मेरा अवैध सम्बन्ध है।

"मैंने उसको समझाया कि मैंने उसको सदा बहिन ही माना है। परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा साक्षी है। परमात्मा ही मेरी रक्षा भी करेगा।

" 'यदि परमात्मा पर इतना ही विश्वास है तो तुम बाहर निकलकर स्वयं उस भीड़ से बात क्यों नहीं कर लेते ?'

"मुझे उसकी बात सुन-सुनकर क्रोध आ गया था। मैं अपने कमरे से निकल-कर बाहर चला आया। वह भी मेरे पीछे-पीछे बाहर आ गया था।

"मुझे बाहर आया देखा तो भीड़ ने वहाँ से उठा-उठाकर मुझ पर पत्थर मारने आरम्भ कर दिये। उनके पत्थर मुझ तक पहुँच नहीं रहे थे। उन्होंने सोचा, शायद मैं दूर हूँ इसलिये उनके पत्थर मुझ तक नहीं पहुँच रहे हैं। वे मेरी ओर आगे बढ़ आये और फिर वहाँ से पत्थर फेंकने लगे। पत्थर मेरे चारों ओर इधर-उधर पड़ने लगे। मुझे किसी पत्थर का स्पर्श नहीं हुआ। गाँव वालों ने निरन्तर पत्थर मारने जारी रखे। अन्त में पत्थर भी समाप्त हो गये और गाँव वालों का साहस भी समाप्त हो गया। मैं ज्यों-का-त्यों खड़ा था। मुझे कोई पत्थर नहीं लगा।

"गाँव वाले इससे बड़े भयभीत हुए। वे वहाँ से भाग खड़े हुए। यशू उस समय अपने घर पर ही था। जोजफ ने उसको सारी घटना सुनाई।

"मैंने जब इस घटना के बाद उसको अपने साथ चलने के लिए कहा तो उसकी एक ही रट थी कि वह अपने माँ-बाप को छोड़कर कहीं नहीं जायेगा।

"मैंने उसको अन्त में कहा, 'देखो, मैं तो कल यहाँ से चला ही जाऊँगा। यदि भविष्य में कभी तुमको मेरी विद्या जानने की लालसा होने लगे तो इस पते पर मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हें यह सब सिखा दूँगा।'

"उस पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। मैंने वहाँ टिका रहना उपयुक्त नहीं समझा और वापस चल पड़ा। तीन मास की यात्रा करके मैं यहाँ पहुँच पाया हूँ।"

शिवकुमार ने उसके वस्त्रों को देखकर कहा, "यह भगवे वस्त्र कब धारण किये ?"

"मार्ग में धनाभाव हो गया था। सुरक्षा का भी विचार था। इस कारण इनको धारण कर लिया था। साम से मिलने से पूर्व ही मैंने ये वस्त्र धारण कर लिये थे।

"घर से जाते समय मेरे पास पाँच सौ स्वर्ण थे।" बृहस्पति ने अपने झोले को टटोला और उसमें से कुछ रजत निकालकर कहने लगा, "उसमें से अब यह शेष बचे हैं।"

"इसकी तुम चिन्ता मत करो। अब तुम्हें किसी प्रकार के व्यय करने की आवश्यकता नहीं होगी। यहाँ तो सब त्रिविष्टप सरकार की ओर से ही व्यय किया जा रहा है।"

"मैं समझता हूँ कि अब मैं इन भगवे वस्त्रों को उतार दूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, जिस कार्य के लिए तुमने इनको धारण किया था, वह कार्य अब रहा नहीं। इसलिये कल प्रातःकाल स्नान के उपरान्त इनको मत धारण करना।"

बृहस्पति के आने के एक सप्ताह बाद तक भी शिवकुमार श्रीनगर में ही रहा। कश्मीर सरकार को प्रेरणा देने में यह सब समय लग गया था। अन्त में यह निर्णय हो गया कि दोनों देशों के मध्य हुए सन्धि-पत्र की घोषणा कर दी जाए।

इस निर्णय के उपरान्त भारत देश में जो-जो स्वतन्त्र राज्य थे, उन सबके पास सन्धि-पत्र की प्रतियाँ बनाकर भेज दी गईं। मगध सम्राट कुमारगुप्त के पास भी उसकी एक प्रति भेजी गई थी। इस सन्धि के साथ ही जो थोड़े से मागधी सैनिक कश्मीर में टिके हुए थे, उनको वापस जाने की भी आज्ञा दे दी गई।

कश्मीर और त्रिविष्टप में सन्धि की बात का प्रचार होते ही भारत में विप्लव होने आरम्भ हो गये। उसका परिणाम यह हुआ कि मगध साम्राज्य टूक-टूक हो गया।

इस अवस्था में यह आवश्यक हो गया कि जो-जो राज्य मगध से स्वतन्त्र हो गये थे उनको एक सूत्र में निबद्ध करने के लिए सांस्कृतिक सूत्र को सुदृढ़ किया जाए।

पण्डित शिवकुमार इस योजना पर ही विचार करने लगा था।

: ५ :

बृहस्पति के घर वापस लौट आने पर उसकी माता चन्द्रमुखी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके विपरीत उसकी पत्नी सुन्दरी का व्यवहार सामान्य ही था। उसमें किसी प्रकार का उत्साह विशेष प्रकट नहीं हो रहा था।

रात्रि को जब बृहस्पति सुन्दरी के समीप गया तो सुन्दरी ने उसकी संगति अस्वीकार कर दी। बृहस्पति को भी इसकी यद्यपि विशेष आवश्यकता नहीं थी, केवल विवाहित जीवन के कर्तव्य का पालन करने के लिए, जिससे कि पत्नी प्रसन्न रहे, वह उसकी संगति में रहता था।

आज पत्नी ने स्पष्ट ही कह दिया, "मैं तो विगत साढ़े सात वर्ष से स्वयं को संन्यासिनी जैसी समझने लगी हूँ। इसलिये अब पुनः गृहस्थ में प्रविष्ट होने की लालसा नहीं रही।"

"तब तो ठीक है। अब तुम माताजी के आगार में रहना आरम्भ कर दो।"

"जी नहीं। मैं तो यहीं रहूँगी। आप अपने नीचे रहने की व्यवस्था कर लीजिये।"

शिवकुमार तो पहले से ही नीचे रहता था। ऊपर तो शान्तिदेव, उसकी पत्नी और सुन्दरी तथा चन्द्रमुखी रहते थे।

पत्नी की इच्छा समझकर बृहस्पति ने अपना बिस्तर उठाया और नीचे की भूमि पर सोने के लिए चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातःकाल शिवकुमार ने जब उसको देखा तो पूछा, "तुम तो रात सोने के लिए ऊपर की छत पर गये थे, किन्तु अब मैं देख रहा हूँ कि यहाँ बराबर के आगार में डेरा डाले पड़े हो।"

"जी हाँ। सुन्दरी ने सावधान कर दिया कि अब मुझे अपने जीवनोद्देश्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।"

"मैं भी यही उचित समझता हूँ।"

प्रातःकाल के पूजा-पाठ के उपरान्त शिवकुमार और वृहस्पति दोनों एकसाथ बैठकर अल्पाहार कर रहे थे। चन्द्रमुखी दोनों के समीप बैठी थी। उसे रात ही विदित हो गया था कि वृहस्पति रात पत्नी के आगार में नहीं सोया है। किन्तु अभी तक इस विषय में उसकी सुन्दरी से बात नहीं हो पाई थी।

इस समय जब उसके पति ने अपने पुत्र से इस विषय पर पूछा और पुत्र ने अपने वानप्रस्थ ग्रहण करने की बात कही तो उसने पूछा, "परन्तु मुझे तो कुछ ऐसा आभास मिला था कि सुन्दरी प्रतीक्षा कर रही है।"

"यह भ्रम भी हो सकता है, क्योंकि मैं तो उसके कथनानुसार ही यह मार्ग ग्रहण कर रहा हूँ।"

"वह रुष्ट तो नहीं है?"

"मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। यह उसके मन की बात हो सकती है। मैं अपने मन की बात बता रहा हूँ कि मैं अब अपने जीवन का नया पक्ष ग्रहण करने लगा हूँ। मैंने वानप्रस्थ ले लिया है।"

शिवकुमार ने कहा, "वृहस्पति! मैं समझता हूँ कि तुम ठीक कर रहे हो। मैं तो यह भी समझता हूँ कि तुम्हें अब भारत लौट जाना चाहिये। वहाँ इस समय एक बुद्धिशील ब्राह्मण की नितान्त आवश्यकता है। साम्राज्य टूक-टूक हो रहा है। उसके अंगों को एक सूत्र में बाँधने के लिए तुम वहाँ चले जाओ तो उत्तम है।

"आगामी वर्ष हरिद्वार में कुम्भ होने वाला है। उस अवसर पर वहाँ देश-भर के ब्राह्मण और संन्यासी एकत्रित होंगे। उनको किसी योजना से पुनः एक सूत्र में बाँधकर भारतवर्ष को सुदृढ़ करने का यत्न करना चाहिये, अन्यथा वह देश पुनः विदेशियों के अधीन हो सकता है।"

"परन्तु पिताजी! मेरे यहूद देश जाने से पूर्व आपने एक बात कही थी। वह यह कि आज मानव की ऐसी स्थिति बन गई है। यह दुर्बल प्राणी श्रद्धा पर अधिक आश्रित रहने लगा है। बुद्धि से तो विचार कर ही नहीं सकता।

"वहाँ भी मैंने यही बात देखी है। श्रद्धा भले लोगों की सुमति का अनुकरण नहीं करती। मुझे वहाँ बड़ी निराशा हुई थी। इसी कारण मैं वहाँ से चला आया था। उनकी भी आज मत-मतान्तरों पर विशेष श्रद्धा है, उससे बाहर वे जा नहीं सके।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, भारत की भी यही स्थिति है। यह प्रवृत्ति भारत के ब्राह्मणों से आरम्भ हुई है। पहले तो वे बुद्धि और स्मरण-शक्ति से दुर्बल हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद जैसे गहन ज्ञान को स्मरण रखने की शक्ति का लोप हो गया। वेद को अंकित पत्रों पर प्रचार करने की अपेक्षा वे स्मृति पर अधिक बल देते रहे। जब बुद्धि के साथ स्मृति भी दुर्बल होने लगी तो यज्ञों की पद्धति निकालकर ज्ञान का नाटक करने लगे।

"सृष्टि-रचना के आरम्भ में अग्नि का कार्य समझाने के लिए यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करते हुए मन्त्रोच्चार करने लगे।

"यहाँ से अज्ञानता का आरम्भ हुआ। न तो यज्ञ का उद्देश्य पूर्ण हुआ और न ज्ञान ही सुरक्षित रह सका। मन्त्रों के अर्थ भ्रष्ट होने लगे तो अज्ञान का अन्धकार बढ़ने लगा।

"कालान्तर में कुछ लोगों ने यज्ञ पर सन्देह करना आरम्भ कर दिया। वे श्रद्धा और भक्ति के गीत गाने लगे।

"उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मन्त्रों के अर्थ समझे बिना ही यज्ञों की संख्या बढ़ने लगी। यह तो तुम जानते ही हो कि अश्व जिसको 'अर्वः' कहते हैं, उसका अभिप्राय परमात्मा का तेज है। तुम तो वेद पढ़े हो और उनका अर्थ भी भली-भाँति जानते हो। यह परमात्मा का वह तेज है जो सृष्टि रचना के समय प्रकट हुआ था, उसने अश्वमेध यज्ञ किया था और रचना आरम्भ कर दी थी और उस समय की बात का नाटक करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करने वाले ही पत्नी को अश्व का लिंग स्पर्श कराने लगे।

"यह अज्ञान इतना बढ़ा कि कालान्तर में पशु यज्ञ होने लगे जिनमें पशुओं की बलि दी जाने लगी और उसके बाद नर-यज्ञ होने लगे, जिनमें मनुष्यों की बलि दी जाने लगी।

"ब्राह्मण देवता स्वयं वेद मन्त्रों का अर्थ भूल गये थे और उसका नाटक कराते-कराते अत्याचार करने लगे।

"परिणाम यह हुआ कि बुद्धिजीवी मानवों को इस पर सन्देह होने लगा। वे सन्देह करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति थे। उनमें से कुछ तो नास्तिक हो गये। वे ब्राह्मणों को धूर्त अथवा मूर्ख समझने लगे। इसके साथ ही वे वेद को अश्लील और किस्से-कहानी की पुस्तक कहने लगे।

"सन्देहकर्ताओं में जो दूसरे प्रकार के लोग थे, उन्होंने अपने नये-नये मत चलाने आरम्भ कर दिये।

"इस प्रकार सब अस्ताचल की ओर उन्मुख हो गये। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी जैसे लोग ब्राह्मणों की मूर्खता के कारण वेद धर्म का ही विरोध करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन महापुरुषों ने ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित द्रव्य यज्ञों के जाल में ग्रस्त जनता को अपनी ओर से तो शिक्षित ही करना चाहा था। जनता यह समझी थी कि ब्राह्मणों ने यज्ञ की यह विधि अपना पेट पालने के लिए आरम्भ की थी। इस बहाने ब्राह्मण समुदाय उनका शोषण कर रहा था। बौद्ध और जैन परम्परा ने इसका बहिष्कार किया तो जनता उनका अनुसरण करने लगी।

"जन-साधारण अज्ञानी हो गया। वह तत्त्व को न समझकर कर्मकाण्ड में फँसा तो प्रथम तो वेद की अवहेलना करने लगा और फिर समय बीतते-बीतते वह उनका तिरस्कार भी करने लगा। उसके बाद अवैदिक मत का प्रचार आरम्भ हो गया और इसकी इति हुई वेद-विरोधी मतों के प्रकट होने में।

"इस अवस्था में राजा-महाराजाओं को भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने का अवसर मिल गया। उन्होंने सांस्कृतिक एकता के स्थान पर राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार आरम्भ कर दिया। यह साम्राज्यवाद का मूल कारण हो गया।"

"पिताजी! यह तो मैं समझता हूँ। वर्तमान स्थिति यह है कि जनता एक प्रकार से अशिक्षित अर्थात् यथार्थ ज्ञान से शून्य है। जो ब्राह्मण थोड़ा-सा अल्प-शिक्षित है वह अपनी जीविका चलाने का यत्न कर रहा है। दूसरी ओर राज्य भी प्रजा का शोषण कर रहा है। परन्तु कठिनाई यह है कि यदि जन-साधारण को संगठित किया गया तो यह खण्डित प्रजा और भी अधिक विखण्डित हो जायेगी।

"इसके लिये तो मत-मतान्तरों का रूप बदलना होगा और वह सब वर्जित करना होगा जो आज का ब्राह्मण वर्ग कर रहा है। तथा सबसे पहले तो ब्राह्मण वर्ग को ही सुधारने की आवश्यकता है।"

शिवकुमार ने कहा, "हाँ, यह तो भय है कि प्रारम्भ में प्रजा और राजा लोग अपने मार्ग को सहसा त्यागने के लिए उद्यत होंगे ही नहीं। वे अपने मार्ग पर ही चलते रहेंगे। मेरे पाटलिपुत्र में रहते समय तो देश-भर का एक ही शासक था, मैं उसको ही सन्मार्ग पर नहीं ला पाया था। इस प्रकार देश का मार्गदर्शन करने में असमर्थ रहा था।

"किन्तु अब स्थिति बदल गयी है। देश में अनेक राज्य स्थापित हो गये हैं। वे एक-दूसरे से स्वतन्त्र भी हैं। आज उनको एक-एक करके उचित मार्ग पर लाया जा सकता है।

"उसके लिये यह आवश्यक है कि उनको धर्म का यथार्थ रूप समझाया जाए और फिर उस पर आचरण के लिये आग्रह किया जाए। एक ऐसी प्रबल तरंग उत्पन्न की जाए जिससे कि छोटे-छोटे राज्य सन्मार्ग पर आरूढ़ हो परस्पर सहायक बनकर अपनी प्रजा के कल्याण के लिए यत्न करने के लिए तत्पर हो जाएँ।"

सहसा बृहस्पति के मन में एक विचार-तरंग उठी। उसने कहा, "पिताजी! यद्यपि यह कार्य मुझे असम्भव-सा प्रतीत होता है, तदपि यह उपकारी तो है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अतः आशा न होने पर भी मैं जाना चाहता हूँ। और मैं जाकर यत्न करूँगा कि वेद का सत्य-सत्य चित्र जोकि प्राचीन युग में प्रचलित था, वह वहाँ की जनता तथा नरेशों के मन में अंकित कर सकूँ।"

"हाँ, जनता और राज्यों की डोर वेद से बाँधने की आवश्यकता है। वेद ध्रुव नक्षत्र के समान पथ-प्रदर्शक हैं। उस ओर यदि प्रजा का मुख हो गया तो मानव का कल्याण होगा। सत्य का उदय होगा और भारत की महिमा पुनः संसार में प्रसारित होगी।

"मेरा अभिप्राय है कि सांस्कृतिक-सूत्र से देश की राजनीति को बाँधने का यत्न किया जाए।"

यह सुनकर वृहस्पति विचार करने लगा कि घर पर जो बन्धन था, वह अब नहीं रहा अतः पिता एवं गुरु ने जो कार्य सौंपा है तो उसे पूर्ण करने का यत्न करना ही चाहिये।

इस बार वृहस्पति ने अपने पिता से ही दीक्षा ली और पुनः भगवे वस्त्र धारण कर लिये।

एक सप्ताह-भर घर पर विश्राम कर एक दिन पिताजी को सूचित कर वृहस्पति दक्षिण की ओर हिमालय पार करने के लिए चल पड़ा। ओलसे पहाड़ से दुमला के मार्ग से होता हुआ वह कामरूप की ओर बढ़ गया।

उस दिन प्रातःकाल अल्पाहार के लिए केवल पिता को ही अकेले बैठे देख चन्द्रमुखी को आश्चर्य हुआ तो उसने पूछा, "वृहस्पति कहाँ है? वह अल्पाहार करने के लिए नहीं आया?"

"वह भारत की ओर चला गया है।"

"क्यों?"

"कह रहा था कि उसका गृहस्थ जीवन-कार्य समाप्त हो चुका है। अतः उसने संन्यास लिया और यहाँ से चल दिया।"

"मुझे भी कुछ ऐसी ही आशंका थी। सुन्दरी ने उसको इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है।"

"हाँ, जब मनुष्य स्वयं पौत्र का दर्शन कर चुके तो उसको घर में महिलाओं के मध्य में रहना शोभा नहीं देता।"

"सुन्दरी की प्रेरणा तो ठीक ही प्रतीत हुई है, किन्तु आप स्वयं को बन्धनों से मुक्त क्यों नहीं कर पा रहे हैं?"

"मुझे सुन्दरी की भाँति अभी तक प्रेरणा दी ही नहीं गयी है।"

"उसका कारण यह है कि सुन्दरी अपने भाई के संरक्षण में है। उसका परिवार भी रक्षित है। यदि आपने मुझको मेरे आश्रय स्थान पर पहुँचा दिया होता तो मैं भी आपको उसी प्रकार कहती, जिस प्रकार सुन्दरी ने वृहस्पति को कहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अर्थात् तुम मंगला जाना चाहती हो ?"

"बहुत वर्षों से वहाँ का कोई समाचार नहीं मिला है। तदपि वहाँ पर कोई तो है। यदि आप वहाँ पहुँचा दें तो मेरी भी जीवनयात्रा समाप्त हो।"

"ठीक है। मैं तो सदा यही मानता रहा हूँ कि स्त्री ही पुरुष की प्रेरणास्रोत है। बन्धनमुक्त होने से पूर्व मेरा चित्त इस प्रेरणा की प्रतीक्षा कर रहा था।"

"तो कब चलेंगे ?"

"बस, तैयार हो जाओ। जिस दिन मन ने कहा, उसी दिन चल देंगे। मैं कश्मीर के मार्ग से भारत लौटने का विचार करता हूँ।

"हस्तिनापुर पहुँच, तुम्हें वहाँ के बन्धुओं की देख-रेख में छोड़कर मैं तुरन्त संन्यास ग्रहण कर लूँगा।"

इस घटना के छः मास बाद की बात है कि एक दिन पण्डित सूर्यकुमार के द्वार पर चन्द्रमुखी और पण्डित शिवकुमार उपस्थित हो गये। मंगला गाँव अब पहले की अपेक्षा तीन गुणा बड़ा हो गया था। गाँव की एक पंचायत बन चुकी थी। हस्तिनापुर भी अब बहुत बड़ा नगर बन गया था। इस समय वहाँ पर हस्तिनापुर का ही राजपरिवार, जो स्वयं को पाण्डवों का वंशज मानता था, राज्य कर रहा था। नाममात्र को वह कुमारगुप्त के अधीन माना जाता था।

गाँव की रूपरेखा का स्मरण करता हुआ शिवकुमार अपनी पत्नी को लेकर सूर्यकुमार के द्वार पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि उस स्थान पर एक बहुत बड़ा पक्का भवन बन चुका है। ड्योढ़ी पर चौकीदार बैठा था।

चौकीदार ने जब रथ पर से एक महिला और पुरुष को उतरते देखा तो वह उनके समीप आकर प्रणाम कर बोला, "महाराज ! कहाँ आये हैं ?"

"हमने रथवान को कहा था कि पण्डित सूर्यकुमारजी के निवासस्थान पर ले चलो। यह हमें यहाँ ले आया है।"

"रथवान उचित स्थान पर ही लाया है। आप पण्डितजी से मिलना चाहते हैं ?"

"हाँ, विचार तो यही है।"

"क्या नाम भेज दूँ भीतर ?"

"कहलवा दो कि पण्डित शिवकुमार सपत्नीक पण्डित सूर्यकुमार का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए लालायित हैं।"

चौकीदार ने द्वार पर लगा घड़ियाल खड़का दिया। उसे सुन प्रौढ़ावस्था की एक महिला निकलकर आयी तो चौकीदार ने उसको नाम बता दिया।

वह महिला भीतर पहुँची और उसने नाम लिया तो भीतर से सूर्य दौड़ता हुआ बाहर निकल आया। बाहर माता-पिता को खड़ा देख वह उनके चरणों में मस्तक रख प्रणाम करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमुखी ने पुत्र को गले लगाकर उसको प्यार करते हुए कहा, "सूर्य ! लगता है, तुम तो बहुत बड़े व्यक्ति हो गये हो ?"

"हाँ, माँ ! ईश्वर की कृपा है। इस समय यहाँ पुराने राज-परिवार के घटक मणिपालसिंह का शासन है। मैं उसका पुरोहित हूँ। वह बहुत सभ्य और सज्जन तथा सम्पन्न व्यक्ति है। यह नया भवन उसने ही बनवाकर दिया है।"

"प्रसन्नता की बात है। चलो, भीतर चलकर तुम्हारी सृष्टि के तो दर्शन करूँ।"

"माँ ! वह तो कोई लम्बी-चौड़ी नहीं है। एक ही पुत्र था। वह भी एक पुत्र और विधवा पत्नी को छोड़कर स्वयं स्वर्ग सिधार गया है।"

इस प्रकार पुत्र अपनी माँ को भीतर ले जाता हुआ बता रहा था।

चौकीदार ने रथ से सामान उतरवाने में सहायता की थी और सामान उतारकर भीतर पहुँचा दिया गया था।

पण्डित शिवकुमार भीतर पहुँचे तो चन्द्रमुखी अपनी पुत्रवधू नीलप्रभा को आशीर्वाद दे रही थी और उसके समीप ही उसकी पुत्रवधू सर्वथा श्वेत परिधान में मुख नीचे किये बैठी थी।

सूर्यकुमार ने अपनी पत्नी का परिचय देते हुए कहा, "माँ ! यह नीलप्रभा है। नगर के विख्यात पण्डित महेश्वरजी की सुपुत्री। इस भाग्यवती ने एक ही पुत्र को जन्म दिया था। दस वर्ष पूर्व उसका इस भाग्यविहीन कन्या से विवाह हुआ था। वह भी इसे एक ही पुत्र देकर स्वयं स्वर्ग सिधार गया है।

"इसका पुत्र रमाकान्त इस समय पढ़ने के लिए पाठशाला गया हुआ है।"

"इस समय शासक कौन है ?"

"भीमपाल के पुत्र रामपाल थे। वह मामाजी के मित्र थे। उनके पुत्र मणिपाल हैं। उन्होंने मुझे राजपुरोहित नियुक्त किया है।"

"तुम्हारे मामा कहाँ हैं ?" चन्द्रमुखी ने प्रश्न किया।

"मामाजी कौशाम्बी चले गये हैं। वे वहाँ के आयुक्त के पुरोहित हैं। उनका परिवार भी उनके साथ ही है।

"मामाजी का परिवार लम्बा-चौड़ा है। पाँच पुत्र हैं तथा एक कन्या। सबके विवाह हो चुके हैं और उनके भी सन्तान हैं। पिछले वर्ष वे सब यहाँ आये थे। तब यह घर खचाखच भर गया था।"

"तुम स्वयं क्या-क्या पढ़े हो ?" शिवकुमार ने पूछा।

"जिस समय मैं यहाँ आया था, उस समय अष्टाध्यायी पढ़ रहा था; परन्तु मामाजी ने वह सब तो छुड़ा दिया और फिर मुझे संस्कार कराने और उनमें पढ़े जाने वाले मन्त्र शुद्ध एवं मधुर स्वर में पढ़ने सिखाये। बस, इतना पढ़ जाने पर ही मुझको पुरोहित बना लिया गया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दिन-भर क्या किया करते हो ?"

"पाटलिपुत्र के किसी महापण्डित ने भागवत पुराण लिखा है। उसका रसास्वादन किया करता हूँ।"

"आजीवन क्या उसका ही पाठ करते रहोगे ?"

"पिताजी ! बहुत बड़ा ग्रन्थ है। और फिर मैंने अपने लिये महाभारत की भी एक प्रति तैयार करवा ली है। कभी-कभी उसका भी पाठ कर लिया करता हूँ।"

शिवकुमार समझ गया कि उसका स्वयं का पुत्र भी उसी प्रवाह में बहता चला जा रहा है जिसमें देश के अन्य विद्वान् प्रवाहित हो रहे हैं। उसने कहा, "अपने पौत्र को अपनी माताजी से पढ़ने के लिए कह दो। तुमसे तो तुम्हारी माँ ही अधिक पढ़ी हुई है।"

"वह तो पिताजी ! घर में फैलने वाले मार्तण्ड के प्रकाश में प्रकाशित होती रही है। वह मार्तण्ड इस घर में तो प्रकाशित हुआ नहीं।"

"तुम यह कहना चाहते हो कि यदि तुम अनपढ़ हो तो इसमें दोष तुम्हारे पिता का है ?

"खैर, तुम तो अब क्या पढ़ोगे। हाँ, तुम्हारे पोते की बात विचारणीय है। देखो, तुम्हारी माताजी अब यहीं रहेंगी।"

"और आप ?"

"मैं कुम्भ के लिए हरिद्वार जा रहा हूँ।"

"पिताजी ! कुम्भ पर तो मैं भी जा रहा हूँ।"

"तुम क्या अकेले ही जा रहे हो ?"

"अब आपके साथ जाऊँगा।"

शिवकुमार को हँसी आ गयी।

शिवकुमार ने फिर हरिद्वार के विषय में कुछ नहीं कहा। उसने सूर्य को कहा, "कल हस्तिनापुर जाना और राजा मणिपाल को कहना कि मैं आया हूँ और उससे मिलने की इच्छा करता हूँ।"

"पिताजी ! वह अब राजा नहीं अपितु महाराज है। अब वह पाटलिपुत्र के नरेश से स्वतन्त्र हो गया है। जब से पाटलिपुत्र वालों की त्रिविष्टप में पराजय हुई है तब से अनेक पुराने राजा-महाराजाओं ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया है।

"उन सबने अपनी-अपनी सेना का निर्माण भी आरम्भ कर दिया है।"

"इन लोगों की इतनी आय हो जाती है कि जिससे ये लोग अपनी सेना का प्रबन्ध कर सकें ?"

"मैं राजकार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। इसलिए मैं नहीं जानता कि महाराज की क्या आय है और क्या व्यय होता है। मेरा कार्य तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज की आत्मा की देख-रेख करना है।"

"यह भी ठीक ही है।"

"पिताजी ! इस विषय में महाभारत और भागवत पुराण में बहुत कुछ लिखा हुआ है। उसी के आधार पर मैं महाराज का मार्गदर्शन करने का यत्न करता हूँ।"

"ठीक है, तुम महाराज मणिपालसिंह को सूचना दे देना। यदि उनको अरुचिकर न हुआ तो मैं उनसे मिलना चाहूँगा।"

जब शिवकुमार ने अपने पुत्र को बताया कि उसकी माता के पास अपने जीवन-निर्वाह के लिए है तो इससे उसको सान्त्वना मिली।

सूर्यकुमार ने अपने पिता को अपनी आर्थिक स्थिति के विषय में बताते हुए कहा, "मैं अपना धन और पत्नी के भूषण आदि यहाँ गाँव में नहीं रखता। अब गाँव में चोरियाँ और डाके पड़ने लगे हैं। इस डर के कारण यहाँ कुछ नहीं रखा जाता। रामकृष्ण श्रेष्ठि की दुकान पर ही सबकुछ सुरक्षित रखा है। उन्होंने अपनी दुकान की रक्षा के लिए बीस सुभट्ट नियुक्त किये हुए हैं।"

अगले दिन सूर्यकुमार हस्तिनापुर गया और उसने महाराज मणिपाल को बताया कि त्रिविष्टप से उसके पिता पण्डित शिवकुमार लौटकर आ गये हैं। उसने यह भी बताया कि वे उससे मिलना चाहते हैं।

यह सुनकर महाराज मणिपाल उसी समय सूर्यकुमार के साथ उसके पिता से मिलने के लिए चल दिया।

शिवकुमार भोजन करने के उपरान्त विश्राम कर रहा था कि द्वार पर से सूचना आई, "हस्तिनापुर के महाराज मणिपाल बड़े पण्डितजी के दर्शन करना चाहते हैं।"

पण्डित शिवकुमार अपने विश्रामगृह से निकलकर बाहर आ गया और मणिपाल को अपने साथ लेकर भीतर आ गया। भीतर उसको यथोचित स्थान पर बैठाकर उससे जलपान आदि के विषय में पूछने लगा।

महाराज बोला, "पण्डितजी ! आपकी कृपा है। मैं भोजन करके ही चला था। यहाँ पहुँचने में अधिक समय भी नहीं लगा है। इससे पूर्व तो मैंने आपकी महिमा का ही श्रवण किया था। आपके माध्यम से त्रिविष्टप की मागधियों पर विजय का समाचार सुनकर चित्त प्रसन्न हुआ था। उसके बाद हमने भी मगध से एक प्रकार से सम्बन्धविच्छेद कर लिया है।"

"हाँ, मैंने भी यह सब सुना है। यह उचित ही किया जा रहा है। किन्तु यह तो मगध वालों का विचार जानने से ही विदित होगा कि उन्होंने आपके इस सन्धिविच्छेद को किस दृष्टि से देखा है।"

"मैंने विदिशा वालों से मित्रता कर सन्धि कर ली है। उस सन्धि-पत्र में केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्री-भाव का ही उल्लेख है। कुछ लेने-देने की बात नहीं है। जो संगठन सम्राट-पद का विरोध कर रहा है, मैं उसका सहायक हूँ।"

"विदिशा वालों से आपका मैत्री-सम्बन्ध किस प्रकार सम्भव हो पाया है ?"

"हमारा सम्बन्ध कर प्राप्त करने वाले अथवा कर देने वाले का नहीं है। हमारा परस्पर मित्रता का ही भाव है। हम दोनों समान हैं और एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी हैं। यही हममें परस्पर वचन हुआ है।"

"सिद्धान्ततया तो यह सब ठीक है, किन्तु मौखिक मित्रता स्थायी नहीं भी रह सकती। वह किसी भी साधारण-सी बात पर किसी भी समय टूट सकती है।"

"तो किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिये ?"

"दो विभिन्न राज्यों के परस्पर सांस्कृतिक सम्बन्ध होने चाहिये। वहाँ की प्रजा और यहाँ की प्रजा में शिक्षा और विचार की समानता होने से ही यह सम्भव है।"

"विदिशा में तो वेद की निन्दा होती है। उनकी संस्कृति बौद्ध है। किन्तु हमारे राज्य की प्रजा वेद, पुराण, स्मृति और शास्त्र पर अगाध विश्वास करती है।"

"आपके और विदिशा के सम्बन्धों में यही कड़ी दुर्बलता है। किसी भी समय यह कड़ी टूट सकती है।"

"इसको किस प्रकार सुदृढ़ किया जा सकता है ?"

शिवकुमार ने विषय परिवर्तन कर दिया।

"राज्य में शिक्षा का क्या प्रबन्ध है ?" पण्डित शिवकुमार ने पूछा।

"यह तो पुरोहितजी पर ही निर्भर है। अभी तक इन्होंने कोई सुझाव नहीं दिया है।"

शिवकुमार ने सुझाव देते हुए कहा, "काशी से कुछ विद्वानों को बुलाइये। उनकी समुचित व्यवस्था हस्तिनापुर में करिये। उनसे कहिये कि वे आपकी प्रजा की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करें।

"इसी प्रकार अपने मित्र विदिशा-नरेश से कहिये कि वे भी अपने देश में इस प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध करें। इसका परिणाम यह होगा कि दोनों देशों में सांस्कृतिक समानता का निर्माण होने लगेगा। यदि पचास-साठ वर्ष तक यह कार्य सम्पन्न हो गया तो फिर दोनों देशों की मैत्री अटूट रहेगी।"

"आपका सुझाव सम्माननीय है। अभी तो मैं कुम्भ पर हरिद्वार जा रहा हूँ, वहाँ से लौटने के उपरान्त इस पर कार्य करूँगा।"

"यहाँ से कुछ ब्राह्मण काशी भेजिये और उनके वहाँ रहने और भोजन आदि की व्यवस्था करिये। वे वहाँ शिक्षा ग्रहण करेंगे और लौटने पर आपके देश में शिक्षा केन्द्रों का प्रचलन और संचालन करेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिपाल कहने लगा, "पण्डितजी ! आप भी कुम्भ पर पधारिये। वहाँ मैं विदिशा वालों से आपकी भेंट करा दूँगा।"

"मैं तो वहाँ जाने के विचार से ही इधर आया हूँ।"

"तब तो ठीक है। आपके बड़े सुपुत्र बृहस्पतिजी कहाँ हैं ?"

"उसने संन्यास ले लिया है। कदाचित् कुम्भ के अवसर पर वह भी हरिद्वार में मिले।"

इस प्रकार हस्तिनापुर के महाराज से पण्डित शिवकुमार का मिलना और वार्तालाप पूर्ण हुआ। शिवकुमार इस अवस्था में जैसा भी मार्गदर्शन कर सकता था, उसने किया।

: ६ :

शिवकुमार को जब अपने छोटे पुत्र के अल्पशिक्षित होने का ज्ञान हुआ तो इससे उसको बड़ा दुःख हुआ। इस समय सूर्यकुमार की आयु पचपन वर्ष की हो चुकी थी। अब तो वह पढ़ाये हुए तोते की भाँति वही कुछ दोहरा सकता था जो उसको पढ़ाया गया था। उसको नया कुछ अब सिखाया नहीं जा सकता था।

सूर्यकुमार का पोता रमाकान्त मध्याह्नोत्तर पाठशाला से लौटता था। पहले ही दिन जब वह पाठशाला से लौटा तो पण्डित शिवकुमार ने उसको अपने पास बैठाकर पूछा, "तुम जानते हो, मैं तुम्हारा कौन हूँ ?"

रमाकान्त की आयु इस समय छः वर्ष की थी। शिवकुमार के प्रश्न करने पर वह उसका मुख देखता रहा।

शिवकुमार ने कहा, "मैं तुम्हारा परबाबा हूँ।"

"वह क्या होता है ?"

"पिता क्या होता है, जानते हो ?"

"मेरे पिता तो हैं नहीं।"

"कहाँ गये हैं ?"

"स्वर्गलोक को।"

"उनके पिता को तुम क्या कहते हो ?"

"वे कहाँ हैं, मुझे पता नहीं।"

"पण्डित सूर्यकुमार का नाम सुना है ?"

"हाँ, वे मेरे बाबा हैं।"

"ठीक, पिता के पिता को बाबा कहते हो। इसी प्रकार बाबा के पिता को पर-बाबा कहते हैं।"

"तो आप मेरे बाबा के पिताजी हैं ?"

"हाँ, अब समझे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप पहले कहाँ थे ?"

"मैं विदेश गया हुआ था।"

"वह कहाँ है ?"

"तुमने भारत का नाम सुना है ?"

"जी हाँ। यह एक देश का नाम है, जिसके उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र है।"

"अच्छा ! तुम तो बहुत कुछ जानते हो।"

"हाँ, मैं यह भी जानता हूँ कि शिवालय में पूजन करते हैं। पूजन में दूध में जल डालकर वह शिवजी पर चढ़ाया जाता है।"

"तुम भी करते हो पूजा ?"

"मैं नित्य प्रात:काल माँ के साथ शिवालय जाता हूँ।"

पितामह और प्रपौत्र में वार्तालाप चल रहा था कि उसी समय रमाकान्त की माँ चार व्यक्तियों के लिए अल्पाहार लेकर आ गई। इसमें हलवाई की दुकान से मंगाई गई मिठाई और घर की गाय का दूध था। बड़ों के लिए बड़े गिलासों में और रमाकान्त के लिए छोटे गिलास में दूध लाई थी। अल्पाहार करने वालों में रमाकान्त के अतिरिक्त शिवकुमार, उसकी पत्नी और उसकी पुत्रवधू भी थे।

दूध के चार ही गिलास देखकर शिवकुमार ने पूछा, "बेटी ! अपने लिये नहीं लाई ?"

बहू ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

शिवकुमार ने फिर कहा, "अपने लिये भी ले आओ।"

बहू यों ही बैठी रही। इस स्थिति का समाधान करते हुए नीलप्रभा ने कहा, "पिताजी ! आप पीजिये। यह बाद में रसोईघर में बैठकर पी लेगी।"

"क्यों, ऐसा क्यों ?"

"यहाँ की यही प्रथा है कि विधवा सबके साथ बैठकर भोजन नहीं करती।"

शिवकुमार का माथा ठनका। वह समझ गया कि विगत साठ-सत्तर वर्ष में ही इस देश में इस प्रकार के विकृत रीति-रिवाज बन गये हैं। उसको यह अच्छा नहीं लगा। उसने कहा, "बहू ! जाओ, अपने लिये भी ले आओ। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम मनुष्यों की भाँति खाती हो अथवा कि पशुओं की भाँति खाती हो।"

नीलप्रभा अपने सास-ससुर का पहरावा और सास के आभूषण देखकर यह समझ गई थी कि वे धनी-मानी लोग हैं। इसलिये उसने अपनी बहू से कहा, "जाओ, ले आओ। बाबा का कहना तो मानना ही चाहिये।"

रत्ना रसोईघर की ओर गई तो उसका लड़का रमाकान्त दूध और मिठाई खाने-पीने लगा। शेष सब बहू के आने की प्रतीक्षा करते रहे।

जब रमाकान्त एक ग्रास मिठाई का और एक घूँट दूध की अपने गले से नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतार चुका तो शिवकुमार ने उससे पूछा, "तुमने बताया नहीं कि तुम कहाँ से आये हो ?"

"अल्पाहार कर लूँ। फिर बताता हूँ। खाते हुए बात नहीं की जाती।"

"वाह, मुख का ग्रास तो तुमने पेट में उतार लिया है। दूसरा ग्रास अभी मुख में डाला नहीं। उससे पहले बता दो।"

"जी नहीं। हमारे अध्यापक कहते हैं कि भोजन करते समय बात नहीं करनी चाहिये।"

शिवकुमार हँस पड़ा। उसने फिर कुछ नहीं कहा। वह इतना तो समझ गया था कि लड़का समझदार है। उसकी स्मृति और बुद्धि तो तीक्ष्ण है। किन्तु काल की गति के साथ रीति-रिवाज के बन्धनों में जकड़ा रहा है।

इस समय तक रत्ना भी अपने लिये एक कटोरे में दूध और दो डली मिठाई की ले आयी।

"हाँ, अब ठीक है। हमारे साथ बैठकर तुम भी खाओ।"

नीलप्रभा को यह सब विचित्र लग रहा था। उसने अपने श्वसुर से पूछा, "पिताजी ! आपके काल में विधवायें सबके साथ बैठकर भोजन आदि कर लिया करती थीं ?"

"पहली बात तो यह कि मैंने अपने जीवन में कोई विधवा देखी ही नहीं। हमारे अपने घर में और मेरी नानी के घर में कोई विधवा नहीं थी।

"हाँ, मेरी माँ विधवा थी। किन्तु वह तो मेरे साथ ही बैठकर खाया करती थी। बहू आने तक तो बेचारी का स्वर्गवास हो गया था।

"मुझे तो सधवा और विधवा के खाने-पीने में किसी प्रकार का कोई अन्तर दिखायी नहीं देता। यदि कोई अन्तर है तो वह दूसरी बात का है। उसमें विधवा साथ बैठे अथवा पृथक् बैठे, उसके लिये एक अभाव रहता है।"

नीलप्रभा बोली, "पिताजी ! आप तो पिछली शताब्दी की बात करते हैं। अब तो रीति-रिवाज सब बदल गये हैं।"

शिवकुमार ने इस विषय को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा। उसने इस बात को बन्द करने के लिए रमाकान्त से पूछा, "हाँ, अब बताओ, तुम कहाँ से आये थे ?"

तब तक रमाकान्त अपना अल्पाहार समाप्त कर चुका था।

बाबा का प्रश्न सुनकर उसने कहा, "बाबा ! पाठशाला से आया था।"

रमाकान्त ने बाबा कहा तो तदपि वह अपने कथन पर विस्मय करने लगा था। वह सूर्यकुमार को अब तक पिताजी ही कहा करता था।

"यहाँ से तुम्हारी पाठशाला कितनी दूर है ?" पाठशाला का नाम सुनकर शिवकुमार को अपने पढ़ने के स्थान का स्मरण हो आया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बाबा ! पहले इधर को जाते हैं और फिर उधर को जाते हैं।" उसने हाथ के संकेत से बताया था। फिर बोला, "वहाँ जाकर पण्डितजी हमको पढ़ाया करते हैं।"

"क्या पढ़ाते हैं ?"

"मैं तो ऋजु पाठ पढ़ता हूँ।"

"वाह, तुम तो बड़े विद्वान् हो गये हो।"

"नहीं बाबा ! विद्वान् तो पढ़ाने वाले पण्डितजी हैं।"

"क्या नाम है उनका ?"

"हम तो पण्डितजी ही कहते हैं। मुझे उनका नाम मालूम नहीं है।"

उसकी बातों को सुनकर पण्डित शिवकुमार ने रत्ना से कहा, "बेटी ! तुम्हारा पुत्र प्रतिभावान है। मैं इसे शिक्षा दूँगा और यदि यह दस वर्ष तक मेरे पास रह गया तो अपने बाबा से भी बड़ा विद्वान् हो जायेगा।"

रत्ना अपने पुत्र की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो रही थी। जब उसको कहा गया कि उसका पुत्र अपने बाबा से भी बड़ा विद्वान् हो सकता है तो वह गर्व का अनुभव करने लगी। अभी तक तो वह सुनती थी कि घर में सब उसको बुद्धू ही कहा करते हैं। वह चुपचाप दूध पीती रही।

शिवकुमार भी दूध ले रहा था। उसके साथ ही वह रमाकान्त से बातें भी करता जा रहा था।

"तुम्हारी पाठशाला में कितने लड़के पढ़ते हैं ?"

"बहुत पढ़ते हैं। मुझे गिनना नहीं आता। इसलिये मैंने कभी गिनती नहीं की।"

"जानते हो, मैं क्या पढ़ा हूँ ?"

"जी नहीं। मैं कैसे जान सकता था ! मैं तो आपसे बहुत छोटा हूँ।"

"तो सुन लो और अच्छी तरह याद भी रखना; क्योंकि तुम मेरे परपोते हो, और तुमको भी वह सब पढ़ना है जो मैंने पढ़ा है। और यदि सम्भव हुआ तो तुम उससे भी अधिक पढ़ोगे।"

रमाकान्त अपने परबाबा का मुख देखता रहा। उसे यह सब सुनकर विस्मय हो रहा था।

शिवकुमार ने उसको बताना आरम्भ किया, "देखो, मैंने छः दर्शन ग्रन्थ, ग्यारह उपनिषद्, चार ब्राह्मण, चार वेद और उनकी पचास से भी अधिक शाखाओं का अध्ययन किया है।"

"कितने वर्षों में आपने यह सबकुछ पढ़ा है ?" रमाकान्त को यह सब सुनकर आश्चर्य हो रहा था।

"मैं जब पाँच वर्ष का था तब से ही मैंने पढ़ना आरम्भ कर दिया था। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय मेरी आयु नब्बे वर्ष से भी अधिक है और मैं अब भी पढ़ता ही रहता हूँ।"

"जो आप अब पढ़ते हैं, उसका लाभ आपको कब मिलेगा?"

"वह लाभ तो साथ-साथ ही मिलता रहता है। इसीलिये तो मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुमको अभी बहुत कुछ पढ़ना है।

"कल से तुम पाठशाला जाना बन्द कर दो। तुम मेरे साथ ही रहो। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, तुमको अपने साथ ही रखूँगा। इस प्रकार तुम्हारी पढ़ाई चलती रहेगी।"

रमाकान्त को अपने परबाबा की बात पर सन्देह हो रहा था। उसने कहा, "माँ मुझे नहीं जाने देगी।"

शिवकुमार ने बात को समझा। उसने बालक से कुछ कहने की अपेक्षा उसकी माँ से पूछा, "क्यों रत्ना! तुम इसको मेरा शिष्य बनने दोगी अथवा कि नहीं?"

रत्ना बड़े संकोच से कहने लगी, "इस घर की यही एक निशानी है। कोई अन्य तो अब इस परिवार को चलाने के लिए है नहीं।"

"यह मेरा ही परिवार तो है। यह मेरी परम्परा है। मैं इसको अवरुद्ध नहीं होने दूँगा।"

बात के बीच में हस्तक्षेप करते हुए शिवकुमार की पुत्रवधू ने कहा, "पिता जी! यदि आप यहाँ रहेंगे तो रमा निश्चित ही आपसे पढ़ेगा।"

"मुझसे पढ़ने के लिए तो इसको मेरे पास रहना होगा। जहाँ-जहाँ मैं जाऊँगा, वहाँ-वहाँ इसको मेरे साथ जाना होगा। तभी मुझसे पढ़ सकेगा। अन्यथा पढ़ेगा कैसे? मैं केवल इसके लिए ही तो यहाँ रह नहीं सकता। इसे यदि मेरी पाठशाला में प्रविष्ट होना है तो जहाँ-जहाँ मेरी पाठशाला जायेगी, वहाँ-वहाँ इसको भी जाना होगा।"

"तो आप इसको भी साथ ले जायेंगे? सुना है, आप तो हिमालय पार त्रिविष्टप में गये हुए थे। वहाँ से किस प्रकार आये?"

"कुछ पैदल, कुछ घोड़ों पर और कुछ रथों पर चलकर यह दूरी पार की है। इसी प्रकार यह भी मेरे साथ वैसे ही जायेगा जैसे मैं जाऊँगा।

"रमाकान्त! तुम मुझसे पढ़ना आरम्भ कर दो। तुम मुझ जैसे विद्वान् के प्रपौत्र हो और मैं तुमको भी अपने जैसा ही विद्वान् बनाना चाहता हूँ।"

"बाबा! कब से पढ़ना आरम्भ करूँ?"

"बस, अभी से। देखो, मैं सत्तर वर्ष के उपरान्त इस गाँव में आया हूँ। मैं देखना चाहता हूँ कि इस गाँव में इस अवधि में क्या-क्या परिवर्तन हो चुके हैं।"

"तो चलो बाबा! पहले मैं आपको दिखाता हूँ।"

अल्पाहार आदि समाप्त हुआ तो शिवकुमार अपने प्रपौत्र के साथ गाँव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभ्रमण करने के लिए चल दिया।

शिवकुमार की दृष्टि में गाँव में सब नये ही लोग थे। उसको कोई एक भी पुराना परिचित व्यक्ति दिखायी ही नहीं दिया। यद्यपि गाँव की जनसंख्या बहुत बढ़ गयी थी, यह विशेष बात उसको दिखायी दे रही थी। मकान भी बहुत बन गये थे और बहुत-से मकान ऐसे भी बन गये थे जो पक्के ईंट-चूने से बने थे।

रमाकान्त को तो बहुत-से लोग जानते थे। वे उसको वहाँ के राजा के पुरोहित के पोते के रूप में जानते थे। पुरोहित ही राज्य में गाँव वालों के काम भी करवा दिया करते थे। इस कारण सारे गाँव में उस परिवार की अच्छी जान-पहचान थी।

चलते-चलते एक वृद्ध व्यक्ति दिखायी दिया। शिवकुमार उसको देखकर चलता-चलता रुक गया। उसने अनुभव किया कि वह वृद्ध व्यक्ति उसको पहचानने का यत्न कर रहा है। शिवकुमार ने उसको पहचानने का यत्न किया, किन्तु वह पहचान नहीं पाया। इसलिये शिवकुमार फिर आगे बढ़ गया। उसके आगे जाने पर उस व्यक्ति ने आवाज देते हुए कहा, "गुरुजी ! मैं स्मृतिनन्दन हूँ।"

शिवकुमार ने समझा कि उसका कोई शिष्य हो सकता है। वह फिर खड़ा होकर उसे आते हुए देखता रहा और पहचानने का यत्न करने लगा।

स्मृतिनन्दन उसके समीप आकर उसके चरणस्पर्श करता हुआ खड़ा हुआ और बोला, "मैं पण्डित विभूतिचरण का पुत्र स्मृतिनन्दन हूँ। परन्तु...।"

शिवकुमार को स्मरण हो आया। जब वह अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ाता था तो उस समय विभूतिचरण सबसे ऊँची कक्षा में पढ़ता था।

शिवकुमार ने उसको पहचानते हुए कहा, "अच्छा, तुम स्मृतिनन्दन हो। अब स्मरण आ गया है। तुम्हारे रूप में बहुत अन्तर आ गया है।"

"जी, इस समय मेरी आयु सत्तर वर्ष की है। आपने बाल्यावस्था में देखा था। अब तो दाढ़ी-मूँछ आकर श्वेत भी हो गई हैं।

"परन्तु गुरुजी ! आप पहले से कुछ मोटे अवश्य हो गये हैं, फिर भी आपकी रूप-राशि में किसी प्रकार भी अन्तर नहीं आया है।"

"हाँ, तुम्हारे पिता...।"

"उनका देहान्त हुए दस वर्ष हो चुके हैं। मेरे घर में आठ प्राणी हैं। कभी दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।"

"देखो, आज तो मैं गाँव को ही देखने निकला हूँ। यह भी पहले से बहुत बदल गया है।"

रमा बोला, "मैं बाबाजी को पीपल के पेड़ पर भूत के दर्शन कराने के लिए ले जा रहा हूँ।"

"ठीक है, वह भी इस गाँव का नया जीव है। गुरुजी ! मैं किसी समय आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर आऊँगा और आपको अपने घर आने का निमन्त्रण दे जाऊँगा। रमा के बाबा पण्डित सूर्यकुमारजी भी गाँव वालों की समय-समय पर सहायता करते रहते हैं। उन्होंने ही उस प्रेत को पीपल के पेड़ के साथ बाँध दिया है। अन्यथा सब यही कहते हैं कि वह नवजात शिशुओं को खा जाया करता था।"

शिवकुमार की उत्सुकता बढ़ गयी। उसने रमाकान्त से पूछा, "कहाँ है वह पीपल के पेड़ पर रहने वाला प्रेत ?"

शिवकुमार की उत्सुकता देखकर स्मृतिनन्दन उसको नमस्कार कर पीछे की ओर लौट गया।

रमाकान्त अपने बाबा को बताने लगा, "गाँव के बाहर एक बहुत बड़ा पीपल का वृक्ष है। वह प्रेत उस पर रहता है। दिखायी तो देता नहीं किन्तु बोलता हुआ सुनायी अवश्य देता है। गाँव वाले सब लोग यही कहते हैं कि पिताजी ने उसको उस पेड़ पर बाँध दिया है। कभी-कभी वे उसको डाँट भी दिया करते हैं।

"गाँव के लोग उसको अन्न, दलिया, मिठाई इत्यादि खाने के लिए वहाँ रख देते हैं।"

"वह उनको खा लेता है ?"

"नहीं, पिताजी कहते हैं कि उसका हमारी तरह दाँतों वाला मुख नहीं है। इस कारण वह खा तो सकता नहीं। फिर भी जब उसको यह सब चढ़ाया जाता है तो वह बड़ा प्रसन्न होता है। फिर वह शान्त हो जाता है।

"जब वह रो रहा होता है तो उस समय गाँव वाले उस ओर नहीं जाते। सुनने में आया है कि दस-बारह वर्ष पूर्व एक व्यक्ति उस समय उस ओर गया था जिस समय वह रो रहा था, तो वह वहीं पर मर गया था।"

शिवकुमार विचार करने लगा कि यह भी ब्राह्मणों का ही दोष है।

इस प्रकार विचार करते हुए रमाकान्त अपने बाबा को लेकर पीपल के पेड़ के पास जाकर खड़ा हो गया। शिवकुमार ने अपने बाल्यकाल में इस पीपल के पेड़ को देखा था। अब वह पहले से बहुत बड़ा होने के साथ-साथ बूढ़ा भी हो गया था।

शिवकुमार ने पूछा, "प्रेत क्या होता है, तुम यह जानते हो ?"

"हाँ बाबा ! जब कोई बुरा कर्म करता हुआ मर जाता है तो परमात्मा उसकी आत्मा को प्रेत बना देता है। इससे प्रेत परमात्मा से रुष्ट हो जाता है। फिर वह उसकी सृष्टि को ही कष्ट देने लगता है।"

शिवकुमार ने कहा, "अच्छा, उसे बुलाओ तो।"

रमाकान्त ने पीपल के पेड़ की ओर मुख कर कहा, "प्रेतजी महाराज ! मेरे बाबाजी आये हैं।"

रमाकान्त का वाक्य पूरा होने पर अन्त में आवाज सुनाई दी, 'हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार समझ गया कि यह अन्त का 'हैं' रमाकान्त की आवाज की प्रतिध्वनि है।

रमाकान्त ने फिर कहा, "हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।"

प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी, 'हैं।'

रमाकान्त ने कहा, "बाबा अब मुझे पढ़ायेंगे।"

प्रतिध्वनि हुई, 'गे।'

रमाकान्त जो भी कहता, उसके अन्त में जो शब्द होता उसकी प्रतिध्वनि सुनायी देती थी।

यह देख और सुनकर शिवकुमार ने अपने प्रपौत्र से कहा, "तुम अभी बच्चे हो इसलिये तुम समझ नहीं सकते। इस कारण तुम समझते हो कि प्रेत बोल रहा है। यह प्रेत-व्रेत कुछ नहीं है।"

"लेकिन बाबा ! सब तो यही कहते हैं।"

"तुम कहो तो मैं इस पेड़ को ही जला डालूँ ?"

"कैसे ?"

"आग से।"

"बाबा ! इससे तो गाँव पर भारी संकट आ जायेगा। फिर तो यह प्रेत गाँव में जितने भी पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चे हैं, उनको खा जायेगा।"

"अभी तो तुम कह रहे थे कि उसके दाँत हैं ही नहीं। तो वह बच्चों को किस प्रकार खा जायेगा ?"

रमाकान्त विचार करने लगा कि बात तो ठीक है। उसका बाबा कहता था कि उसके दाँत नहीं हैं, इसलिये वह फल और मिठाई खा नहीं सकता। फिर वह बच्चों को किस प्रकार खा सकता है। तभी उसको स्मरण हो आया कि जिस प्रकार वह मिठाई और फल खाकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार बच्चों को भी खाकर प्रसन्न होता होगा। फिर भी वह कुछ बता नहीं पाया। उसने कहा, "बाबा, नहीं। आप पिताजी से बात करना। उसके बाद इसको जलाना। यदि इसको जलाने से गाँव के कुछ बच्चे मर गये तो गाँव वाले हमारा ही घर फूंक डालेंगे।"

"नहीं, गाँव वाले फूंक नहीं सकेंगे। यह मैं जानता हूँ।"

"फूंकेंगे नहीं तो वैर तो मानने लगेंगे।"

शिवकुमार सोचता था कि इस विषय में इस बालक से विवाद करने से कोई लाभ नहीं होगा। उसने कहा, "अच्छा, अब यहाँ से चलो।"

रमाकान्त वहाँ से अपने बाबा को गाँव के शिव मन्दिर की ओर ले गया। जब शिवकुमार पढ़ता था, उस समय वहाँ पर गाँव की पाठशाला होती थी। अब वहाँ पर सुन्दर शिव मन्दिर बन गया था।

दोनों ने जूते उतारे और वे मन्दिर के भीतर चले गये। वहाँ शिवलिंग देख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर शिवकुमार ने पूछा, "यह क्या है ?"

"यह भगवान् शिव हैं।"

"यह तो एक गोल-गोल बड़ा-सा पत्थर है। शिवजी महाराज तो बहुत ही सुन्दर थे। उनकी तो चौड़ी छाती थी, लम्बी-लम्बी भुजायें थीं, उनके एक हाथ में त्रिशूल होता था और दूसरे हाथ में डमरू होता था...।"

"बाबा, तुमने भगवान् शिव को देखा है ?"

"हाँ, मैंने तो देखा है और मैं जब भी चाहता हूँ, उसको देख लेता हूँ; परन्तु यह तो भगवान् शिव नहीं है।"

"लेकिन गाँव के लोग तो इसको शिवजी कहते हैं और नित्य प्रातःकाल आकर इसके ऊपर दूध में जल मिलाकर चढ़ाते हैं।

"पिताजी यहाँ के पुरोहित हैं। यहाँ शिवजी की पूजा होती है और गाँव के स्त्री-पुरुष यहाँ आकर फल, फूल, मिष्टान्न चढ़ाकर जाते हैं तो पिताजी उनको लेकर घर आ जाते हैं।"

शिवकुमार विचार कर रहा था कि क्या वह इस मूर्खता को दूर कर सकेगा ? वह सोचता था कि क्या इस प्रकार लोगों का काल्पनिक देवी-देवताओं की पूजा करने से उनका किसी प्रकार का हित होगा ?

वहाँ से बाबा और पोता घर की ओर चल दिये। एक प्रहर-भर वे लोग गाँव में भ्रमण करते रहे थे। जब वह घर पहुँचे तो उस समय तक सूर्य भी अपने कृषक यजमान के यहाँ से पूजा आदि कराकर वापस पहुँच गया था। वह वहाँ से दान-दक्षिणा भी लाया था। इसमें रजत के अतिरिक्त वस्त्र आदि भी थे।

बाबा और पोते को इस प्रकार साथ-साथ आते देख सूर्यकुमार ने अपने पिता से पूछा, "पिताजी ! कहाँ गये थे ?"

"तनिक गाँव का परिभ्रमण करने के लिए गया था। रमाकान्त को साथ ले गया था। मैंने आज से इस बुद्धिशील बालक को अपनी पाठशाला में प्रविष्ट कर लिया है।"

"अपनी पाठशाला में ? वह अब कहाँ रही ? वहाँ तो शिव मन्दिर बन गया है ?"

"हाँ, उस स्थान पर तो शिव मन्दिर बन गया है जहाँ मैं पाठशाला चलाया करता था, किन्तु मेरी पाठशाला तो मेरे साथ ही पाटलिपुत्र चली गयी थी, और उसके बाद जहाँ-जहाँ मैं जाता रहा, मेरी पाठशाला मेरे साथ-साथ चलती रही।"

"परन्तु पिताजी ! पाटलिपुत्र से तो आपको रात के समय चोरों की भाँति भागना पड़ा था ?"

"हाँ, तुम ठीक कहते हो। किन्तु जिसके कारण भागा था, वह तो अब इस पूर्ण देश में परिव्यापक हो गयी लगती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह क्या पिताजी ?"

"मैं भागा था मगधराज की अज्ञानता और तज्जन्य मूर्खता के कारण। वह जब समस्त देश में व्याप्त हुई तो मेरे घर में भी आ गयी है। अब तुम ही बताओ कि शिव मन्दिर से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

"मैं राजपुरोहित हूँ। इस कारण अपने देश के सभी मन्दिरों का मैं पुजारी हूँ। अपने गाँव के मन्दिर से तो कुछ विशेष प्राप्ति नहीं होती, परन्तु हमारे राज्य में अन्य बड़े-बड़े मन्दिर भी हैं। राजधानी में अभी हाल में ही एक बहुत बड़ा राधेश्याम का मन्दिर बना है। उसका मुख्य पुजारी महाराज ने मुझे ही बनाया है। वहाँ तीन अन्य पुजारी भी हैं। वहाँ जो चढ़ता है उसका दशांश मुझे मिलता है। शेष के तीन भाग करके वे परस्पर बाँट लिया करते हैं।"

"इस प्रकार इन मन्दिरों से तुम्हें कितनी आय हो जाती है ?"

"लगभग चार-पाँच सहस्र प्रतिवर्ष मिल ही जाता है।"

"उस प्रेत वाले पीपल की चढ़त से कितना मिलता है ?"

सूर्यकुमार हँस पड़ा। फिर बोला, "वहाँ से तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता। वहाँ का चढ़ावा तो गाँव का भंगी ले जाता है।

"मैंने कभी किसी को यह नहीं कहा कि वे लोग पीपल के पेड़ पर कुछ चढ़ायें। मैंने तो केवल यही कहा हुआ है कि मैंने प्रेत को उस पीपल के वृक्ष पर बन्दी बनाकर बाँध दिया है। इससे अब वह किसी को कोई हानि नहीं पहुँचायेगा। इस पर भी लोग अपने-आप वहाँ जाते हैं और चढ़ावा भी चढ़ा आते हैं।

"कभी-कभी रात्रि के समय पेड़ से विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ आने लगती हैं। गाँव वाले समझते हैं कि वहाँ का प्रेत रोने लगता है। उसका यह परिणाम होता है कि दूसरे दिन वे लोग वहाँ पर जाकर फल और मिठाई आदि चढ़ा आते हैं।

"मैंने कभी किसी को वहाँ पर कुछ चढ़ाने के लिए नहीं कहा और न ही मैंने किसी को कहा कि वह यह माने कि उस पेड़ पर प्रेत का निवास है। जिस दिन चढ़ावा चढ़ता है उस दिन गाँव के भंगियों के घर में दावतें होती हैं। इसमें मेरा क्या दोष है ?"

शिवकुमार अपने पुत्र की बातें बड़ी तन्मयता से सुनता रहा था। उसका कथन समाप्त होने पर वह बड़ी गम्भीरता से उस पर विचार कर रहा था। वह सोच रहा था कि वह इस प्रकार के छल-छिद्र वाले ब्राह्मण के घर में रहे अथवा कि न रहे ?

वह विचार कर रहा था कि यदि किसी दिन किसी ने उससे इस विषय में पूछ लिया तो वह सत्य बात बताये बिना रह नहीं सकता। प्रेत का रहस्य विदित हो जाने पर सूर्य की प्रतिष्ठा को आँच आयेगी और इससे उसका पुत्र ही उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध हो जायेगा।

अगले दिन शिवकुमार ने पुरोहितजी का रथ लिया और नगर को चल दिया। रमाकान्त उसके साथ ही था।

दिन-भर वह नगर के विभिन्न वर्ग के लोगों से मिलता रहा था। वह राज-प्रासाद में गया और वहाँ महाराज मणिपाल से भी मिला।

महाराज को पण्डितजी के आने की प्रसन्नता हुई। ज्यों ही प्रतिहार ने यह सूचना दी कि मंगला ग्राम से पण्डित शिवकुमार आये हैं, पण्डितजी को आदर सहित भीतर ले जाया गया और उनको महाराज के विशिष्ट कक्ष में ले जाकर बैठा दिया गया। महाराज ने तुरन्त उपस्थित हो उनका अभिवादन किया।

बैठते हुए महाराज ने कहा, "यह तो मेरा अहोभाग्य है कि आपने यहाँ पधारकर दर्शन दिये हैं। जिस दिन हमने मंगला में आपके दर्शन किये थे मैं उसी दिन से अपने मित्रों और सहयोगियों को आपके विषय में लिख रहा हूँ। पाटलिपुत्र में भी मैंने महाराज कुमारगुप्त के पुरोहितों को लिखा है कि आप त्रिविष्टप से अपने ग्राम में निवास के लिए पधारे हैं और वैशाख मास में आप हरिद्वार के कुम्भ में भी सम्मिलित होने जा रहे हैं।

"मैंने आग्रह किया है कि देश के समस्त विद्वान् ब्राह्मणों का यह सम्मेलन वहाँ आयोजित किया जाना चाहिये।

"यही बात मैंने विदिशा, कौशाम्वी, उज्जयनी, अयोध्या और वैशाली के राजपुरोहितों को भी लिखी है।

"कश्मीर और स्थाणेश्वर वालों को भी मैंने आपके पधारने की तथा कुम्भ पर सम्मिलित होने की सूचना भेजी है।"

यह विवरण सुनकर शिवकुमार को प्रसन्नता हुई। उसने कहा, "यह तो आपने अच्छा ही किया है। मैं स्वयं तो इतना कुछ कर नहीं सकता था। वैसे मेरी यही इच्छा है कि देश के छोटे-बड़े सब राज्यों का सांस्कृतिक दृष्टि से एक संगठन बन जाए। यह संगठन राजनीति से पृथक् हो। इस संगठन में देश की एकता के विषय पर कुछ निर्णयात्मक सिद्धान्त निर्धारित किए जाएँ।"

"उस दिन मैं आपकी बात को नहीं समझा था। मेरे पूज्य पिता महाराज रामपालजी ने उसके विषय में मुझे बताया था कि आप तो देश में एक सहस्त्र से भी अधिक राज्य के पक्ष में हैं। आप यह भी चाहते हैं कि वे सब राज्य राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हों। परन्तु देश पर विदेशियों के आक्रमण के समय वे सब इस प्रकार एकत्रित हो जायें कि जिस प्रकार शरीर के किसी भी भाग पर काँटा चुभने पर पूर्ण शरीर कष्ट अनुभव करता है और फिर उसे निकालने का सामूहिक यत्न करता है।

"उस समय यह वात मुझे बहुत पसन्द आयी थी। परन्तु उस समय तो हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगध साम्राज्य का ही एक अंग थे। मगध की जब त्रिविष्टप में पराजय हुई तो उससे हमें अवसर मिल गया कि हम मगध से अपने राज्य को स्वतन्त्र कर लें। हमने यह घोषणा कर दी और अब हमने हस्तिनापुर में दस सहस्त्र पैदल सैनिक, पाँच सौ रथ, पाँच सौ हाथी रख लिये हैं। यद्यपि इस पर व्यय उससे कुछ अधिक ही हो रहा है जो हमें मगध से सम्बन्धविच्छेद करने पर बचत हुई है किन्तु हम अपना धन अपने देश के युवकों में ही तो बाँट रहे हैं। वे युवक प्रसन्न हैं। इससे पूर्व हमारे सैनिकों को मगध का मुख देखना पड़ता था। उनकी नियुक्ति अधिकांशतया उनके घर से बहुत दूर की जाती थी। इस प्रकार वे अपने परिजनों से बहुत समय के लिए बिछुड़े भी रहते थे। इसका यह भी दुष्परिणाम होता था कि वे अपनी कृषि का कार्य किसी प्रकार भी देख नहीं सकते थे।

"अब तो वे अपने घर पर रहकर ही सेना का कार्य करते हैं और अपने कृषि का कार्य भी देखते हैं।

"वर्ष में केवल पन्द्रह दिन ही सैनिकों के सामूहिक अभ्यास के लिए हमने निर्धारित किये हुए हैं।"

मणिपालसिंह के मुख से यह सब सुनकर पण्डित शिवकुमार ने उसको सुझाव देते हुए कहा, "आप लोग ऐसा करिए कि सेना का एक पृथक् पुरोहित नियुक्त कर दीजिये। वह कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसको देश और राज्य का पूर्ण ज्ञान हो।"

"यहाँ तो इस समय कोई ब्राह्मण मिलना सम्भव नहीं है। आपके सुपुत्र पण्डित सूर्यकुमार के विषय में पता चला है कि उन्होंने अपने गाँव में एक प्रेत को पीपल के पेड़ पर बन्दी बनाकर बाँध दिया है। गाँव के लोग वहाँ फल-फूल और मिठाई इत्यादि चढ़ाया करते हैं।

"मैं कोई ऐसा ब्राह्मण ढूंढ़ रहा हूँ जिसे पूर्ण भारतवर्ष का ज्ञान हो और जो उस ज्ञान को सैनिकों को दे सके।"

"इसके लिए तो कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में पधारे हुए विद्वानों से कहा जा सकता है कि वे उज्जयिनी में कोई एक ऐसी पाठशाला चलायें, जिसमें इस प्रकार की भी शिक्षा दी जा सके।

"इस पर विचार किया जा सकता है। उस पाठशाला में सैनिक, पुरोहित-निर्माण का भी कार्य होना चाहिये।"

"सुझाव तो ठीक है, परन्तु मुझे भय है कि इस विद्यालय में आवश्यकता से अधिक विद्यार्थी प्रविष्ट हो जायेंगे और उन सबके लिए जब पुरोहिताई का स्थान प्राप्त नहीं होगा तो फिर ये अपनी योग्यता का प्रदर्शन राज्यों में परस्पर झगड़ा करने में प्रयोग करेंगे।

"तो भी सम्पूर्ण देश में समन्वय की आवश्यकता है। यह साम्राज्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति के किसी संगठन के माध्यम से नहीं हो सकता। इसके लिए तो जनता और सेनाओं में सांस्कृतिक विचारों का समन्वय होना चाहिए।"

"पण्डितजी! आपकी महिमा बहुत है। इसलिए मेरा निवेदन है कि आप कुम्भ पर पधारिये। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो आप मेरे साथ मेरे गुरुवत् पधारिये। इससे मैं स्वयं को कृतज्ञ अनुभव करूँगा।"

"यह भी विचारणीय है। आप अपना कार्यक्रम निश्चित कर लीजिये, फिर मैं देखता हूँ कि मैं उसके अनुसार चल सकता हूँ अथवा कि नहीं।"

"आप ठीक कहते हैं। आगामी मास के आरम्भ में ही मैं अपना कार्यक्रम निर्धारित कर लूँगा। हमारे पुरोहित तो हमारे साथ जायेंगे ही। आप गुरु के स्थान पर हमारे साथ चल सकें तो अति उत्तम होगा।"

इस प्रकार महाराज मणिपाल से बात करने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार अपने पोते के साथ घर वापस आ गया।

: ७ :

पण्डित शिवकुमार की पत्नी चन्द्रमुखी को जब यह विदित हुआ कि उसके पुत्र की आय में उसकी विद्वत्ता से अधिक उसकी छलनायुक्त चतुराई का भाग है तो उसने उस घर के भोजन की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। महाराज मणिपाल ने एक छोटा-सा खेत भी दिया हुआ था। चन्द्रमुखी ने सबसे पहले उस खेत की ओर ही ध्यान दिया। सूर्यकुमार ने उस खेत पर एक जमादार को नियुक्त किया हुआ था। चन्द्रमुखी ने उससे सम्पर्क स्थापित किया और उसकी उपज को उसने पृथक् रखना आरम्भ कर दिया। उसी खेत के एक भाग में उसने साग-सब्जी की भी उपज का प्रबन्ध करवाया। इस सब प्रबन्ध में उसको एक मास लग गया।

जो कुछ उस खेत में उपज होती थी और जो कुछ चन्द्रमुखी आसपास से क्रय कर लाती थी, रसोई में केवल वही बनता था। घर पर दो गाय थीं। उनके चारा-पानी का प्रबन्ध भी चन्द्रमुखी ने अपने हाथ में ले लिया था। उसने बाजार से मिष्ठान्न लेना बन्द कर दिया और घर पर ही दूध से बनाये मिष्ठान्न खाये जाने लगे।

आरम्भ में तो सूर्य की पत्नी और सूर्य को यह सब सुखकारक ही लगा किन्तु उनको शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गयी कि पण्डितजी और उनकी पत्नी सूर्य की आय को स्पर्श नहीं करते।

यह बात एक दिन स्पष्ट हो ही गयी। सूर्यकुमार अपनी पुरोहिताई के लिए नगर गया हुआ था। वहाँ से वह बहुत सारी मिठाई लाया था।

मध्याह्नोत्तर जब दूध पीने का समय हुआ तो उस समय नीलप्रभा ने दूध के साथ नगर से लायी गयी वह मिठाई सबके सामने रख दी। उसी समय चन्द्रमुखी उठी और रसोईघर में जाकर वहाँ से घर के बने बेसन के मोदक उठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लायी। उसने अन्य मिठाई के साथ ही वे भी लाकर रख दिये।

इस प्रकार सब अल्पाहार करने लगे। नीलप्रभा ने देखा कि उसकी सास सूर्य की लायी हुई मिठाई नहीं खा रही है। उसने अपनी सास से कहा, "माताजी, आप यह नगर से आई हुई मिठाई नहीं खा रही हैं ?"

चन्द्रमुखी की अपेक्षा उसका उत्तर देते हुए शिवकुमार ने पूछा, "इस मिठाई के अर्जन में किसने क्या परिश्रम किया है ?"

"कुछ भी नहीं।" सूर्यकुमार ने इसका उत्तर दिया। वह अपने पिता के प्रश्न का अभिप्राय समझ नहीं पाया था।

सूर्य ने ही बात स्पष्ट करते हुए कहा, "नगर का एक हलवाई है। उसका महाराज से किसी प्रकार का विवाद था। मैंने महाराज से कहकर निर्णय उसके पक्ष में करवा दिया था। बस, तब से जब भी मैं नगर से घर को आ रहा होता हूँ वह एक टोकरी में इस प्रकार मिठाई रखकर दे देता है।"

"यह तो किसी प्रकार का भी परिश्रम नहीं कहलाया जा सकता। तुमने अपनी विद्या अथवा उससे अर्जित ज्ञान के आधार पर तो वह निर्णय उसके पक्ष में करवाया नहीं था। केवल अपने पुरोहित होने के नाते तुमने महाराज से उसकी सिफारिश की और उन्होंने उसको स्वीकार कर लिया।

"इसलिए हमारे लिए तो यह मिठाई उसी प्रकार की है जिस प्रकार कोई छल-कपट करके किसी से मिठाई ले आया हो। इसे डाका भी कहा जा सकता है। यह ब्राह्मण का कर्तव्य नहीं है। यही कारण है, हम दोनों इसको नहीं खा रहे हैं।"

रमाकान्त बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था। उसने कहा, "तो गुरुजी! मैं भी न लूं ?"

"यह तुम विचार कर लो। मैं तो इस मिठाई पर सूर्य का किसी प्रकार का अधिकार नहीं समझता, इसलिए इसको ग्रहण नहीं कर रहा हूँ।"

अब नीलप्रभा ने कहा, "परन्तु माताजी तो हमारी रसोई भी अपने पास से ही वस्तुएँ लाकर बनाने लगी हैं ?"

चन्द्रमुखी बोली, "हाँ, मैं तुम्हारे खेत की उपज, उसके साथ अपने धन से क्रय की हुई वस्तुएँ ही प्रयोग करती हूँ। विना परिश्रम से अर्जित किया धन और अन्न प्रयोग करने से अगले जन्म में वह सब पाई-पाई चुकाना पड़ेगा। सूर्य अपने ज्ञान और तपस्या से जो कुछ अर्जन करके लाता है, उसका मैं प्रयोग कर सकती हूँ, किन्तु छलना से अर्जित वस्तुओं का प्रयोग करना मैं पाप समझती हूँ।"

सूर्य को समझने में विलम्ब नहीं हुआ कि उसके माता-पिता के मन में परिश्रम का जो मापदण्ड है उसमें और उसके स्वयं के मापदण्ड में बड़ा अन्तर है। इसलिए उसने अधिक बात करना उपयुक्त नहीं समझा और अपनी लायी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिठाई खाता रहा।

परन्तु जब सब दूध पी चुके तो नीलप्रभा ने देखा कि रत्ना और उसके लड़के ने भी वह बाजार से लायी गयी मिठाई नहीं खाई थी।

नीलप्रभा को यह बात खटक गयी। उसने अपने पति से कहा, "आपके पिता जी तो हमें अछूत समझते हैं।"

"वे क्या होते हैं ?"

"जैसे भंगी, चमार आदि।"

"नहीं, यह तुलना तो ठीक नहीं है। मैं तो यह समझ पाया हूँ कि यह मेरे परिश्रम को किसी वैश्य का-सा परिश्रम समझते हैं। इसलिए वे इस आय को ब्राह्मण की आय की तुलना में हेय समझकर उसका प्रयोग नहीं करना चाहते।"

"कुछ भी हो, वे आपको अपना पुत्र नहीं मानते।"

"अच्छा, ऐसी बात है ? तब तो मैं उनसे पूछूंगा कि मैं किसका पुत्र हूँ ?"

"मैं समझती हूँ, आप उनके लिये कोई पृथक् मकान बनवा दीजिये। वे उस में रह लेंगे।"

"परन्तु पिताजी तो यहाँ रहने के लिए आये नहीं हैं। यहाँ तो माताजी ही रहने के लिए आई हैं। और उनके आने से मेरा व्यय कम हो गया है। अब खेत पर जो कुछ भी व्यय होता है वह माताजी देती हैं। बाजार से आने वाली वस्तुओं का मूल्य भी माताजी ही देती हैं। अपने लिये वस्त्र भी वे अपने पास से ही खरीदती हैं। मुझे तो सब ओर से लाभ ही लाभ है।"

"परन्तु उनकी दृष्टि में हम हीन हो गये हैं ?"

"वह तो हम हैं ही। मैं उतनी कठोर तपस्या नहीं कर सका जितनी कि मेरा बड़ा भाई वृहस्पति करता था। वह वेद का प्रकाण्ड विद्वान् है और मैं तो विष्णु सहस्र नाम के अर्थ भी नहीं कर सकता।

"देखो देवी ! मैं अपने माता-पिता के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करूँगा। वे मगधराज से रुष्ट हुए तो उनके महामात्य पद को लात मारकर चल दिये। मुझे छोड़ने में तो उनको कुछ भी कठिनाई नहीं होगी।

"इसलिये मैं उनसे कुछ नहीं कहूँगा। वे जब तक चाहें और जिस प्रकार चाहें यहाँ रहें। और यहाँ रहते हुए अपना व्यय स्वयं वहन करते हैं तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है ?"

"तो आप जो इतना अर्जन कर रहे हैं, उसका क्या होगा ?"

"वह माताजी के जाने के उपरान्त भोग कर लेंगे।"

यद्यपि इससे नीलप्रभा को सन्तोष नहीं हुआ, परन्तु वह पति से झगड़ा करना भी ठीक नहीं समझती थी।

इस प्रकार उस घर के दो भाग होते-होते बच गये। शिवकुमार और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी के साथ रमाकान्त और उसकी माता भी उनके पक्ष के हो रहे थे। सूर्य-कुमार और उसकी पत्नी का दूसरा पक्ष था। सूर्यकुमार ने विवेक-बुद्धि से काम लिया और बिगड़ती बात बन गई।

स्त्री का स्वभाव विचित्र होता है। एक दिन नीलप्रभा ने अपने पोते रमाकान्त से पूछा, "रमा ! तुम्हें अपने बाबा से पढ़ते हुए दो मास से अधिक समय हो गया है। क्या पढ़ा है इतने दिनों में तुमने ?"

"माँ ! मैं तो विद्यालय से कहीं अधिक पढ़ गया हूँ। भाषा तो सीख ही रहा हूँ। इसके साथ ही भारत देश की सीमा, उसके पार के तथा इस देश के विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ है। मुझे बाबा ने यह भी बताया है कि हमारे देश में धन-धान्य के अपार भण्डार हैं। यह भी एक कारण है कि विदेशी लोग यहाँ आक्रमण कर उसको लूटने की ताक में रहते हैं।

"जिस प्रकार किसी धनी व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति की रक्षा का प्रबन्ध करना होता है उसी प्रकार इस देश की धन-सम्पदा की रक्षा के लिये वैसा ही प्रबन्ध करने की आवश्यकता है।"

"इस शिक्षा से तुम्हें क्या लाभ होगा ?"

"लाभ क्यों नहीं होगा। यदि देश का धन लुटने से बच जायेगा तो मेरा धन भी बचा रह जायेगा।"

"परन्तु तुम्हारे पिता तो ऐसा नहीं समझते ?"

"तो उनको बाबाजी से समझ लेना चाहिये।"

रमाकान्त ने हस्तिनापुर की घटना का उल्लेख करते हुए अपनी दादी को बताया, "उस दिन बाबा महाराज मणिपाल से मिलने के लिये गये थे। वे मुझको भी साथ ले गये थे। महाराज कहते थे कि मुझे बाबा के साथ लगा रहना चाहिये। यदि मैं बाबा के साथ लगा रहा तो मैं दस वर्ष में प्रकाण्ड विद्वान् बन जाऊँगा। यह भी महाराज ने कहा था। तब बाबा की ही भाँति मुझे भी राजा लोग अपने यहाँ महामात्य पद के लिये आमन्त्रित करने लगेंगे।"

यह सुनकर नीलप्रभा मौन हो गई। यह तो उसके ज्ञान और उसकी आकांक्षा से कहीं ऊपर की बात थी।

एक दिन हस्तिनापुर से महाराज मणिपाल का रथ आया तो शिवकुमार ने अपने साथ रमाकान्त को भी उसमें बिठा लिया और हस्तिनापुर को चल दिया। रमाकान्त को शिवकुमार अपनी छाया की भाँति सदा साथ रखता था। रमाकान्त भी इससे प्रसन्न था। उसे घर से बाहर घूमने-फिरने का अवसर मिल रहा था। बाबा जब भी किसी व्यक्ति से बात करता तो रमाकान्त उस समय उसके साथ ही होता था। इससे उसके ज्ञान में भी वृद्धि हो रही थी।

ज्यों ही पण्डित शिवकुमार अपने पोते के साथ हस्तिनापुर के राजप्रासाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार पर पहुँचे कि उनको तुरन्त आदर के साथ भीतर ले जाया गया। मणिपाल के अतिरिक्त भी एक अन्य व्यक्ति वहाँ पर उपस्थित था।

पण्डित शिवकुमार वहाँ पहुँचा तो अभिवादन के उपरान्त तुरन्त मणिपाल ने उस अन्य व्यक्ति का परिचय कराते हुए बताया, "गुरुजी ! ये पण्डित सोमेश्वर भट्ट हैं। ये केवल आपके दर्शन करने के लिए पाटलिपुत्र से यहाँ तक आये हैं।"

शिवकुमार ने उस नवागन्तुक से पूछा, "कहिये, क्या आज्ञा है ?"

"पण्डितजी ! मैं भला आपको क्या आज्ञा दे सकता हूँ। मुझे तो मगध के महाराज कुमारगुप्त ने आपसे कुछ जानने के लिए भेजा है।"

"चलिये, यों ही सही। बताइये, आप क्या जानना चाहते हैं ?"

"महाराज कुमारगुप्त जानना चाहते हैं कि आप शत्रु पक्ष में हैं अथवा कि मित्र पक्ष में ?"

"मैं भारत का निवासी हूँ और भारतीय समाज का मित्र हूँ। यह तो महाराज कुमारगुप्त को निश्चय करना चाहिये कि मैं उनके पक्ष में हूँ अथवा कि विपक्ष में।"

"तनिक व्याख्या करके बताइये।"

"महाराज कुमारगुप्त स्वयं भारत देश और मानव-समाज के मित्र हैं अथवा शत्रु, यह तो वे ही स्वयं बता सकते हैं; किन्तु मैं अपने बारे में बता सकता हूँ कि मैं भारत के मानव-समाज के पक्ष में हूँ।"

"परन्तु नीतियों में भेद होने से शत्रु हो सकते हैं ?"

"नीतियों के विषय में तो बात हो सकती है।"

"हमें विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है कि विदेशी हूण भारत की धन-सम्पदा को देखकर यहाँ पर आक्रमण करने वाले हैं। महाराज जानना चाहते हैं कि आप उन हूणों के पक्ष में हैं अथवा कि महाराज के, जो कि उनका प्रतिरोध करने के लिये देश में बहुत बड़ी सेना का संगठन करना चाह रहे हैं ?"

"जो भारत की रक्षा के लिए कटिबद्ध होगा, मैं तो उसके ही पक्ष में रहूँगा।"

"तब तो ठीक है। शेष पुनः विचार कर लिया जायेगा। महाराज मणिपाल महोदय कह रहे हैं, आप कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार पधार रहे हैं। महाराज कुमारगुप्त भी वहाँ जा रहे हैं। उस अवसर पर वे आपसे भेंट करेंगे।"

"मुझे उनसे मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी। मैं भारत का शत्रु नहीं हूँ।"

"बस, यही मैं जानना चाहता था। मित्रता का रूप और दिशा पर तो हरि-द्वार में विचार कर लिया जायेगा।"

यह वार्तालाप पूर्ण हुआ तो मणिपाल पण्डितजी को विदा करने के लिए बाहर द्वार तक आया। उसने स्वयं बात स्पष्ट करते हुए कहा, "मैंने आपके यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की सूचना पाटलिपुत्र को भेजी थी। उसी के आधार पर पण्डित सोमेश्वर भट्ट इस विचार-विनिमय के लिए आये हैं।"

"अब आप हरिद्वार चलने के लिये तैयार हो जाइये। मैं अगले सप्ताह अपना रथ आपकी सेवा में भेजूँगा।"

"ठीक है। मैं तैयार रहूँगा।"

चलते-चलते मणिपाल ने फिर कहा, "विदिशा ने मगध के प्रति अपने मन में घोर शत्रुता का भाव भर लिया है। मैं हरिद्वार में इन दोनों को परस्पर मिलाना चाह रहा हूँ। आप इसके लिए यदि यत्न कर देंगे तो उससे देश और जाति का कल्याण होगा।"

"महाराज! मैं यत्न करने में विश्वास करता हूँ। इसलिये यत्न करूँगा। फल तो ईश्वराधीन होता है। यदि दोनों नरेश परमात्मा के अस्तित्व को मान-कर परस्पर मिलने का यत्न करेंगे तो फिर मैत्री भी हो सकती है। क्योंकि जो परमात्मा के भक्त हैं वे परस्पर लड़ नहीं सकते। हाँ, वह भक्ति हृदय से होनी चाहिये, दिखावटी नहीं।"

"विदिशा वालों का मेरे साथ तो सद्भावनापूर्ण व्यवहार ही रहता है।"

"और पाटलिपुत्र वालों का?"

"उनसे बराबरी का मैत्री भाव है।"

यहाँ पर बात समाप्त हो गई। पण्डितजी ने फिर चलते हुए कहा, "ठीक है। मैं हरिद्वार के लिये तैयार रहूँगा। मैं, मेरी पत्नी और यह बालक हम तीन व्यक्ति जायेंगे।"

"आगामी मंगलवार को हमारा रथ पहुँच जायेगा। उसी दिन यहाँ से चलने का मुहूर्त है।"

मुहूर्त की बात सुनकर शिवकुमार केवल मुस्करा भर दिया।

इस प्रकार जब मंगलवार को महाराज मणिपाल ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया तो उनके छः रथ चल रहे थे। एक रथ में पण्डित सूर्यकुमार भी विराजमान था। एक रथ में पण्डित शिवकुमार का परिवार था। शेष चार रथों में महाराज का परिवार, नौकर-चाकर और अन्यान्य सामग्री थी।

हरिद्वार में जाकर रहने के लिए डेरे आदि पहले ही भेजे जा चुके थे। कनखल और हरिद्वार के मध्य एक स्थान पर उनके डेरों के लगाने की पहले ही व्यवस्था कर दी गई थी। कुछ सेवक, पाचक और सैनिक भी पहले से ही वहाँ पहुँच गये थे।

मार्ग में चलते हुए ही मणिपाल का रथ पाटलिपुत्र वालों के रथ के साथ मिल गया था। विदिशा वाले पहले से ही हरिद्वार में विद्यमान थे। स्थाणेश्वर, राजस्थान, मगध तथा कुछ दक्षिण के नरेशों के लिए भी वही स्थान सुरक्षित था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ विदिशा और पाटलिपुत्र वालों के लिए था।

हरिद्वार पहुँचकर पण्डित शिवकुमार ने भिन्न-भिन्न नरेशों से भेंट करना आरम्भ कर दिया। इनमें से कुछ वे नरेश भी थे जिन्होंने उस समय पाटलिपुत्र से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया था जब पाटलिपुत्र त्रिविष्टप से पराजित होकर वहाँ से लौट आया था।

विदिशा वाले तो समुद्रगुप्त के काल से ही शत्रु पक्ष के समझे जाते थे। इस-लिये पण्डित शिवकुमार सबसे पहले विदिशा के नरेश महाराज गजेन्द्रपालसिंह से ही मिलने के लिये गया।

गजेन्द्रपाल ने पण्डित शिवकुमार के साथ बालक रमाकान्त को देखकर विस्मय प्रकट किया। परन्तु शिवकुमार ने उसको समझा दिया। उन्होंने कहा कि रमाकान्त उनका प्रपौत्र ही नहीं अपितु विश्वस्त शिष्य भी है। उन्होंने बताया कि वे उसको व्यवहार का ज्ञान कराने के लिए सदा अपने साथ ही रखते हैं। इतने दिनों के मेरे सम्पर्क में आने से इतनी बात यह भी सीख चुका है कि इसके केवल कर्ण हैं, जिह्वा नहीं है। जिह्वा का प्रयोग यह केवल उस समय करता है जब यह मुझसे पढ़ता है।"

इतना जान लेने पर विदिशा-नरेश रमाकान्त के सम्मुख ही बात करने के लिए उद्यत हो गया।

गजेन्द्रपाल समझता था कि मागधियों द्वारा त्रिविष्टप पर आक्रमण किये जाने से पण्डित शिवकुमार मागधियों का घोर शत्रु होगा। इसलिये उसने उसी दृष्टि से बात करते हुए कहा, "हम तो इस गुप्त परिवार का संसार से चिह्न तक मिटा देना चाहते हैं।"

"ऐसा क्यों ?"

"वर्तमान नरेश के पिता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने हमारे कुल की एक कन्या के पति की हत्या करके उसके साथ स्वयं विवाह कर लिया था। यह विवाह धर्म-शास्त्र के विरुद्ध था। इसलिये वर्तमान मगध-नरेश तो विक्रमादित्य की अवैध सन्तान है। इसके पिता ने हमारे कुल को भी कलंकित किया था। हम उस बात को भूल नहीं पा रहे हैं।"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "श्रीमन् ! ऐसा प्रतीत होता है कि आपको इतिहास का यथार्थ ज्ञान नहीं है। प्रथम बात तो यह है कि वर्तमान नरेश की माता ध्रुवदेवी का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी अन्य के साथ किया गया था। उसने उस विवाह से पूर्व ही अपनी रुचि और अरुचि स्पष्ट कर दी थी। दूसरे, आपके जामाता ने अपनी पत्नी को एक शक-नरेश को दे दिया था। उसे लिखकर देने के उपरान्त ही उसके प्राणों का संकट टला था।

"इसका अभिप्राय यह है कि जो विवाह वधू की इच्छा के विपरीत किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था, वह टूट चुका था।

"तीसरी बात यह है कि रामगुप्त की हत्या वररुचि ने की थी, चन्द्रगुप्त ने नहीं।

"चौथी बात यह है कि शास्त्रज्ञों ने एक विधवा के पुन: विवाह को वैध स्वीकार किया था। ध्रुवदेवी ने स्वेच्छा से चन्द्रगुप्त को वरा था।

"इसलिये मैं समझता हूँ कि यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण होते हुए भी वर्तमान गुप्त नरेश के पिता को बुद्धिमान नरेश ही प्रकट करती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि महाराज चन्द्रगुप्त ने अपने भाई की विधवा को महारानी पद पर प्रतिष्ठित किया और उसके पुत्र को ही राज्याधिकार प्रदान किया। वही अब इस समय मगध-नरेश है।"

गजेन्द्रपाल इस पूर्ण इतिहास को जानता था। उसका द्वेष इस कारण नहीं था। द्वेष का मुख्य कारण सम्राट का पद था। वह बात भी गजेन्द्रपाल के मुख से स्वत: ही निकल गई। उसने अपनी ही बात की पुष्टि करते हुए कहा, "जो कुछ हमने वर्णन किया है, वही वास्तविक इतिहास है। इसलिये हमारी यह मान्यता है कि ऐसे धर्म-भ्रष्ट महाराज को सम्राट पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाना चाहिए।"

"तो किसको प्रतिष्ठित करना चाहिए था? रामगुप्त तो इस योग्य थे नहीं। वह अल्पवयस्क होने के साथ-साथ भीरु, निर्बुद्धि तथा युद्धकला-विहीन भी थे। इसके साथ ही वह अशिक्षित और मूर्ख भी थे। मेरी सूचना यह भी है कि जब वररुचि ने रामगुप्त को युद्ध के लिये ललकारा तो वह पलंग के नीचे छिप गये थे।

"इस कारण ही उसकी हत्या करनी पड़ी थी। उसकी वही गति हुई जो किसी भीरु की होती है।"

"आपको यह कथा किसने बताई है?"

"पण्डित हरिषेणजी ने। वे मुझे कश्मीर में मिले थे और उन्होंने पूर्ण घटना का विवरण सुनाया था।

"ब्राह्मण होते हुए खड्ग उठाने के पाप का प्रायश्चित्त वररुचि ने चालीस दिन तक निराहार रहकर किया था।"

"जो हो, मेरा तो यही कहना है कि सम्राट पद पर गुप्त परिवार का व्यक्ति प्रतिष्ठित नहीं किया जाना चाहिये।"

"वह तो अब सम्राट रहे भी नहीं। मुझे ज्ञात हुआ है कि उनके साम्राज्य के छोटे-बड़े कुल मिलाकर बीस राज्य उससे स्वतन्त्र हो चुके हैं।"

"जी हाँ, उन सम्बन्धविच्छेद करने वालों में हम सबसे पहले हैं।"

"परन्तु आपको यह भी विदित है कि नहीं कि त्रिविष्टप के पश्चिम-उत्तर के हूणों ने काम्भोज पर अधिकार कर लिया है और अब वे अति वेग से भारत पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। यदि उचित समय पर उनका विरोध न किया गया तो एक दिन ऐसा भी आयेगा जब वे विदिशा, कौशाम्बी, हस्तिनापुर और अयोध्या पर भी अधिकार कर लेंगे। गुप्त साम्राज्य तो बाद में आयेगा, उससे पहले तो वे विदिशा को तहस-नहस कर चुके होंगे।"

गजेन्द्रपाल को इसका भी ज्ञान था। किन्तु जिस परिस्थिति का चित्रण पण्डित शिवकुमार ने किया था, उसके निराकरण के विषय में गजेन्द्रपाल के पास कोई उत्तर नहीं था। उसने कहा, "किन्तु अकेले हम ही इसमें क्या कर सकते हैं ?"

"वही तो मैं कह रहा हूँ कि ऐसी परिस्थिति में भारत के सब नरेश मिलकर अपने साँझे शत्रु को खदेड़ने के लिए यत्न कर सकते हैं।"

"तो जो सम्राट है, वह सबको मिलाकर युद्ध कर ले, इसमें हम क्या हैं ?"

"हाँ, यही होना चाहिये। आपको विदित होगा कि जब शक आये थे तो पाटलिपुत्र पहुँचने से पूर्व उन्होंने विदिशा पर आक्रमण किया था। सिन्धु से उनकी गति आरम्भ हुई थी। उन्होंने एक ओर तो पंचनद देश को और फिर सौराष्ट्र तथा उज्जयिनी को विजित किया था। वहाँ से वे विदिशा जाने वाले थे। यदि चन्द्रगुप्त ने शक-नरेश की हत्या न की होती तो क्या होता, यह कह पाना कठिन है।"

गजेन्द्रपाल पण्डित शिवकुमार के इतिहास के इतने विस्तृत ज्ञान और देश की अवस्था का चित्रण देखकर विस्मय करता था। उसने अनुभव किया कि पण्डित जी का विश्लेषण युक्तियुक्त है। उसने पूछा, "तो क्या किया जाए ? हम अकेले तो उन विदेशियों का विरोध कर नहीं सकते ?"

"मेरे मन में इसकी एक योजना है। ब्राह्मण का कार्य तो योजना बनाना ही है। उस पर कार्य तो नरेश ही कर सकते हैं। मैं अपनी योजना आपको बताता हूँ।

"मेरी सम्मति है कि सभी नरेश दो बातों को अपने ध्यान में रखें। एक तो यह कि भारत के भीतर का झगड़ा अर्थात् आप लोगों का पारस्परिक मतभेद किसी भी विदेशी आक्रमण के समय उभरना नहीं चाहिये।

"देश की भीतरी स्थिति के विषय में यदि वार्तालाप से किसी प्रकार का निर्णय न हो सके तो भले ही युद्ध से निर्णय कर सकते हैं। उस अवस्था में, जिनमें परस्पर मतभेद है, वे युद्ध कर स्थिति स्पष्ट कर लें।

"किन्तु जिस समय कोई विदेशी राज्य भारत पर आक्रमण करता हो तो उस समय सबको एक होकर अपनी सेना को संगठित रूप से युद्ध के लिए तैयार कर लेना चाहिये। इसके लिये परिस्थिति के अनुसार समय-समय पर परस्पर विचार-विमर्श होते रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कश्मीर, काम्भोज, गान्धार, सिन्धु और यदि आप लोग स्वीकार करें तो मैं तो इसमें त्रिविष्टप को भी सम्मिलित होने के लिए तैयार कर सकता हूँ।

"उदाहरण के रूप में यदि हूण गान्धार पर आक्रमण करें तो मगध की सेना को चाहिये कि वह गान्धार की सहायता के लिए पहुँच जाए। जब भारत की सेना हूणों से युद्ध कर रही हो तो उस समय त्रिविष्टप पीछे से आकर विदेशियों पर आक्रमण कर दे अथवा उनके घर पर आक्रमण कर दे।

"मैं इस प्रकार का एक संगठन चाहता हूँ।"

"उस संयुक्त सेना का सेनापति कौन होगा?"

"आपकी सभा में बनी समिति जिसके विषय में भी अपना निर्णय कर ले। सेनापति उसको ही बनाया जाना चाहिये जिसमें इसकी योग्यता हो। वह सेना का संचालन करे। सेनापति को युद्ध-भूमि का भली-भाँति ज्ञान होना भी आवश्यक है।"

"देश के भीतरी विचारों के विषय में आप क्या कहते हैं?"

"यदि आप लोग स्वीकार करें तो न्यायिक रूप में समस्त देश के लिए ब्राह्मण विद्वानों का एक आयोग गठित कर दिया जाए। वह आयोग काशी में विराजमान रहकर देश-भर में विचारों का प्रसार करे।"

"सम्भव है, धनवान राज्य उनको खरीद लें?"

"न्यायपीठ पर बैठा व्यक्ति ही यदि इस प्रकार के पापकृत्य में लीन हो जायेगा तो फिर कोई भी क्या कर सकता है। आपको चाहिये कि सत्य-धर्म पर आरूढ़ रहने वाले न्यायिकों का निर्माण करें।"

"यह भीतरी विवाद ही मूल विद्वेष का कारण बनते हैं और ये गुप्त साम्राज्य ने अथवा कहिये कि गुप्त परिवार ने ही उत्पन्न किये हैं।"

"मैं तो यह उचित समझता हूँ कि इतने बड़े देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य बन जाएँ। किन्तु यह उनको ध्यान में रखना होगा कि भारतवर्ष उनका अपना देश है और उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व सबका साँझा उत्तरदायित्व है।"

"इसका चल सकना सम्भव नहीं लगता।"

"नहीं चलेगा तो इसके कुफल को भी आप लोगों को चखना ही होगा। मैं तो यही समझ पा रहा हूँ कि दस वर्ष के भीतर ही हूण भारत पर आक्रमण कर देंगे। यदि उस समय भी आप लोग परस्पर नहीं मिल सके तो देश और उसके विभिन्न राज्यों का भगवान् ही रक्षक है।"

"आप पहले तो देश के भीतरी सम्बन्धों के विषय में सुझाव दीजिये। बाहरी आक्रमण की बात तो बाद में समझी जा सकती है।"

"उसका यही हल हो सकता है कि सर्वप्रथम परस्पर जिन बातों पर विवाद अथवा वैमनस्य है उनकी एक सूची बना ली जाए। उस पर फिर विभिन्न नरेशों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्तालाप किया जाए।"

"आप मागधियों से पहले मिलिये। वे पहले यह समझने का यत्न करें कि वे ही सम्राट क्यों हैं और भविष्य में भी क्यों बने रहें।"

"मुझे सूचना मिली है कि अयोध्या वाले तो उसको सम्राट मानते हैं। और मुझे यह भी बताया गया है कि वैशाली वाले भी उसको अपना अग्रणी मानते हैं।"

"यही तो समस्या है।"

"यह समस्या कहाँ है ? यह तो उन राज्यों की मनोवृत्ति है जो कि मगध को सम्राट स्वीकार करते हैं। जो उनको वह पद देना चाहते हैं, आप उनको किस प्रकार विवश करेंगे कि वे ऐसा न करें ?"

"यदि हमारी प्रजा में मगध के गुप्तचरों ने घुसकर षड्यन्त्र किया तो फिर क्या होगा ?"

शिवकुमार यह सुनकर आश्चर्य करने लगा। उसको गजेन्द्रपाल की मूर्खता पर हँसी आ रही थी। फिर उसने कहा, "तो क्या आप अपने राज्य के आन्तरिक विषयों पर भी मुझसे ही परामर्श करना चाहते हैं ?

"यदि आप अपनी प्रजा को अनुकूल नहीं कर सकते तो फिर आप मुझको क्या कहते हैं ? मैं किसको किस प्रकार समझा सकता हूँ ? मैं तो आपके राज्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।"

गजेन्द्रपाल भी हूणों के आक्रमण की आशंका तो करता था, परन्तु इसमें वह स्वयं भारतीय सेना का सेनापति होना चाहता था। वह विवश हो गया तो उसने अपने मन की बात बताते हुए कहा, "मुझे तो यह भी आशंका है कि आगामी युद्ध में भारत की संयुक्त सेना का सेनापतित्व भी मगध अपने हाथ में रखना चाहेगा ? किन्तु उनका सेनापति कितना अयोग्य है, यह आप त्रिविष्टप में उनकी पराजय से देख ही चुके हैं।"

शिवकुमार ने कहा, "सेनापति बनने के लिये रणभूमि का ज्ञान, सैनिक गुप्तचरों का संगठन और फिर विपक्षी सैनिकों के मनोबल को हीन तथा क्षीण करने की तथा उसके साधन संजोने की योग्यता होनी चाहिये।

"इन सबसे बढ़कर बात यह है कि सेनापति को न केवल अपनी सेना पर नियन्त्रण रखने की अपितु उसको सदा प्रसन्न भी रखने की योग्यता होनी चाहिये।

"अभी तक तो आपने अपने सैनिक स्वरूप को बनाने में सफलता प्राप्त नहीं की है। पिछले सौ वर्षों में विदिशा वालों को मागधियों ने अनेक बार पटकी दी है। अन्तिम बार तो वे आपके देश में ही घुस आये थे।"

"लेकिन तुरन्त ही भाग भी तो गये थे ?" गजेन्द्रपाल ने अपनी लज्जा को छिपाने के लिए कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी नहीं, आप भली-भाँति जानते हैं कि वे भाग नहीं गये थे अपितु अपनी किसी नीति के अधीन उन्होंने वहाँ से अपनी सेना वापस बुला ली थी।"

"मगध का सैन्य बल हमसे कहीं अधिक है। सेना और सम्पत्ति इन दोनों में ही वह हमारे राज्य से अत्यधिक विशाल है।"

"किन्तु आपने अपनी इस न्यूनता की पूर्ति के लिए क्या किया है? पिछले सौ वर्षों में भी आप उसकी पूर्ति नहीं कर सके?

"जहाँ तक विदिशा के सैनिकों का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि वे बड़ी वीरता से लड़े थे। कमी थी तो उनके सेनाध्यक्षों में। इसके कारण आपको पराजय का मुख देखना पड़ा था।"

"हम ऐसा नहीं मानते। हम समझते हैं कि जब-जब भी हमारा उनसे युद्ध हुआ है उनकी विजय उनके सैन्य बल तथा शस्त्रास्त्रों की अधिकता के कारण ही हुई है। जहाँ तक युद्ध करने का प्रश्न है, हमने उनको पराजित ही किया है। यदि ऐसा न होता तो पिछले एक सौ वर्ष के संघर्ष पर भी हम जीवित रह सके हैं, अन्यथा हम कैसे रह पाते?"

इस प्रकार बहुत देर तक उन दोनों में वार्तालाप होता रहा, किन्तु सबकुछ अनिर्णीत-सा ही था। बात को समाप्त करते हुए गजेन्द्रपाल ने कहा, "देखिये, इस कुम्भ पर कौन-कौन नरेश आते हैं और फिर इस धर्म समागम में राजनीति जैसे घृणित विषय पर अपना समय व्यय करना भी चाहते हैं अथवा कि नहीं। लोगों को एकत्रित होने दीजिये, तब विचार कर लिया जायेगा।"

शिवकुमार समझ गया था कि गजेन्द्रपाल इस समय कुछ कह सकने की स्थिति में नहीं है और वह वार्तालाप को इस समय समाप्त करना चाहता है। किन्तु उसको इस बात की प्रसन्नता थी कि गजेन्द्रपाल ने बातचीत के लिए अभी अपने द्वार बन्द नहीं किये थे।

पण्डित शिवकुमार वहाँ से उठकर अपने खेमे में आ गया।

: ८ :

विदिशा वालों के ही पड़ोस में वैशाली वालों का डेरा था। समय पाकर पण्डित शिवकुमार उनसे मिलने चला गया। शिवकुमार ने जब अपना नाम द्वार-रक्षक को बताया तो वह भीतर चला गया और उसके साथ ही वैशाली का गण-पति शिवकुमार का स्वागत करने के लिए बाहर आ गया।

गणपति सुरेश्वर भट्ट शिवकुमार को अपने उस कक्ष में ले गया जहाँ उसने विशिष्ट अतिथियों के मिलने के लिए स्थान बनाया हुआ था। वहाँ बैठाकर कुशल समाचार पूछा, फिर जलपान के लिये पूछा तो पण्डित शिवकुमार ने कहा, "इसके लिये आपका धन्यवाद। मैं जलपान करने के उपरान्त ही डेरे से बाहर निकला हूँ, अतः इस समय ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज्ञा करिये, किस निमित्त दर्शन दिये हैं ?"

"मैं त्रिविष्टप से एक विशेष समाचार लेकर भारत लौटा हूँ, उसी के निमित्त मैं हरिद्वार भी आया हूँ।

"किन्तु मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि अधिकांश नरेश तो यहाँ अपने जन्म-जन्मान्तर के पापों को धोने के लिये ही आये हैं, उनको राजनीति के विषय में वार्तालाप करने का न ध्यान होगा और न अवकाश ही।"

"हस्तिनापुर के अधिपति महाराज मणिपाल ने मुझे आपके भारत आने के उद्देश्य का संकेत दिया था। मैंने उसे रुचिपूर्वक पढ़ा है और मैं समझता हूँ कि मैं उसके अनुकूल ही हूँ। किन्तु यह मैं भी अनुभव कर रहा हूँ, यहाँ उसके लिये न उचित अवसर है और न स्थान ही।"

शिवकुमार ने बताया, "अभी कुछ समय पूर्व मैं विदिशा-नरेश गजेन्द्रपाल के पास भी गया था। लगभग एक घड़ी-भर वहाँ वार्तालाप होता रहा है। उनसे जो विचार-विनिमय हुआ है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे देश की रक्षा के लिये एक संयुक्त सेना के निर्माण के पक्ष में हैं। मैं भी इस विषय में उनसे सह-मत हूँ।

"परन्तु इसमें मुझे एक कठिनाई भी दिखायी दे रही है। वह यह कि उस संयुक्त सेना का सेनापति गजेन्द्रपाल स्वयं बनना चाहते हैं।"

यह सुनकर सुरेश्वर भट्ट के कान खड़े हो गये। उसने तुरन्त अपनी प्रति-क्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "और सेनापति बनकर वे चाहते होंगे कि एक-एक कर भारत के सारे राज्यों को अपने अधीन कर लें?

"मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि जब से गजेन्द्रपाल ने महाराज-पद सँभाला है, तब से वे निरन्तर मगध की सीमा पर झगड़ा करते चले आ रहे हैं। यदि उन्हें अपने इस कार्य में सफलता नहीं मिली है तो उसका कारण यही है कि मगध की सेना उनकी सेना से जन और बल में कहीं अधिक है। साथ ही मगध के मित्रों की सेना का भी उनको भरोसा है।"

शिवकुमार यह सब जानता था। उसने कहा, "आप जो कहते हैं, वह ठीक हो सकता है। मैंने जो कहा, वह गजेन्द्रपाल की मन:स्थिति का वर्णन किया है। मैंने उनकी बात को दो भागों में बाँटकर उस पर विचार किया है। उसका पहला भाग तो यह है कि भारत की एक संयुक्त सेना होनी चाहिये। उस सेना की सब राज्यों में समान कार्य-कुशलता हो।

"उसका जो दूसरा भाग है, वह है उस सेना के रहने के स्थान और उसके अध्यक्ष के विषय में अर्थात् सेना कहाँ रहे और कौन उसका सेनापति हो। यह भी सोचा जा सकता है कि सेनापति एक हो अथवा अनेक भी हो सकते हैं तथा उस सेना का व्यय-भार किस प्रकार वहन किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसके साथ ही मेरी यह भी सम्मति है कि शस्त्र-निर्माण का कार्य भी होना चाहिये और नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों की खोज तथा निर्माण होना चाहिये। यह कार्य सेना के अतिरिक्त किया जाना चाहिए।"

यह सब सुनकर सुरेश्वर भट्ट बोला, "आपकी योजना सराहनीय है। मेरी शुभकामना आपके साथ है। साथ ही मैं आपको सचेत भी कर देना चाहता हूँ कि इस संसार में आज नहीं अपितु आदिकाल से ही देव और असुर दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते रहे हैं। आपका संगठन देवों का संगठन होना चाहिये। यदि उसमें एक भी असुर आ गया तो फिर सबकुछ भ्रष्ट हो जायेगा।

"मैं समझता हूँ कि सबको समान अवसर मिलना चाहिये।"

शिवकुमार ने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "मैं आपके विचार से पूर्ण रूप से सहमत हूँ।"

"ठीक है, तब आप यत्न कीजिये। यद्यपि मेरे पूजा-पाठ का कार्यक्रम ऐसा है कि उसके आधार पर मेरे पास समय की कमी है, तदपि आपका प्रयास उचित दिशा में चला तो मैं उसके लिए समय निकालने में संकोच नहीं करूँगा। आपके सद्प्रयास में मैं आपकी सहायता भी करूँगा और उसका समर्थन भी करूँगा।"

"आपके इस आश्वासन के लिए मैं आपका आभारी हूँ। परन्तु यदि आप बुरा न मानें तो आपसे पूछना चाहूँगा कि पूजा-पाठ से आपका क्या अभिप्राय है? मेरा निवेदन है कि देश का कार्य, जो लोक-कल्याण का ही कार्य है, क्या वही परमात्मा की पूजा और भक्ति नहीं? क्या यह निःश्रेयस का मार्ग नहीं है?"

"मैं आपका अभिप्राय समझ नहीं पाया हूँ।" सुरेश्वर भट्ट पण्डितजी का मुख ताकने लगा था।

"इसमें अधिक समझने के लिए कोई विशेष बात तो है नहीं। आप गीता का अध्ययन करते होंगे। भगवान् कृष्ण ने यही तो कहा है कि निष्काम भाव से किया कर्म सहज ही मोक्ष दिलाने वाला होता है। भारत के तैंतीस कोटि जनों के कल्याण का कार्य यदि मोक्ष नहीं दिलवा सकता तो हरिद्वार के कुम्भ में एकत्रित सौ-दो सौ ब्राह्मणों को भोजन-वस्त्र प्रदान करना तो किसी प्रकार भी निःश्रेयस का कार्य नहीं हो सकता।"

यह सुनकर पुनः सुरेश्वर भट्ट एक-दो क्षण तक शिवकुमार के मुख पर देखता रहा। फिर कुछ विचार करके बोला, "परन्तु उसमें वेद-मन्त्रों का भी उच्चारण होगा। मैंने इस वृहत् यज्ञ की योजना की है। उस यज्ञ की लपटें जब आकाश में उठेंगी और उसके साथ ही वेद-गान होगा तो क्या वे सीधा स्वर्ग तक ले जाने के लिए पर्याप्त नहीं है?"

"श्रीमन्! वह तो मैं अपनी इस सभा में भी करने का विचार कर रहा हूँ। बहुत ही मधुर स्वर में वेद-गान से उसका आरम्भ करने की मेरी योजना है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है। आपकी इस योजना में मैं भी सम्मिलित होना चाहता हूँ। जब योजना बनायें तो मुझसे भी परामर्श कर लीजियेगा।"

"इसके लिए आपका धन्यवाद। यह योजना आज रात्रि को हस्तिनापुर के महाराज मणिपाल के खेमे में बनायी जायेगी। आप उसमें आमन्त्रित हैं। कृपया अवश्य पधारिये।"

"आपका मणिपालजी से क्या सम्बन्ध है?"

"यही, जो आपसे है। मैं तो केवल निमन्त्रण देने वाला हूँ। मेरे विचार को स्वीकार करना आप लोगों के अधीन होगा।"

"रात्रि को किस समय?"

"रात्रि-भोजन के समय। मैं आपको वहीं भोजन का निमन्त्रण देता हूँ। आप सपत्नीक मेरी तथा मेरी पत्नी की ओर से सादर आमन्त्रित हैं। उस अवसर पर मैं आपको यज्ञ के अर्थ और उसकी महिमा भी बताऊँगा।

"यह कार्यक्रम अधिक समय तक चलेगा। सम्भवतया रात्रि के दो प्रहर इसमें लग जाएँ, इस तैयारी से आइयेगा।"

पण्डित शिवकुमार के साथ हुए अब तक के वार्तालाप से सुरेश्वर सर्वथा सन्तुष्ट था, इसलिये उसने रात्रि-भोज का निमन्त्रण भी स्वीकार कर लिया।

पण्डित शिवकुमार लिच्छवि गणपति के खेमे से निकलकर मल्ल गणपति के डेरे पर चला गया।

उधर सुरेश्वर भट्ट भी वहाँ से उठकर अपनी पत्नी के पास जाकर कहने लगा, "हमारा आज रात्रि का भोजन अन्यत्र है।"

उसकी महारानी ने पूछा, "किस-किसका?"

"हम दोनों का ही।"

"परन्तु देव! मैंने तो रात्रि के भोजन पर एक साधु मण्डली को आमन्त्रित किया है।"

"कौन है वह?"

"स्वामी आनन्द प्रकाश वृहस्पति। सुना है कि त्रिविष्टप में तप और साधना से उनको अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। उनकी सिद्धि का एक प्रदर्शन तो मैं अभी-अभी देखकर आ रही हूँ।"

"उस मण्डली में कितने साधु हैं?"

"वे स्वयं और उनके दो शिष्य। इस प्रकार तीन हैं।"

"ठीक है, उनको भी वहीं साथ ले जायेंगे। निमन्त्रण हमें सपरिवार है। हम बता देंगे कि ये भी हमारे नगर तथा परिवार के हैं।"

"वह किसी अन्य दिन के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता?"

"यह कठिन है। उस भोज में कुछ अन्य नरेश भी आमन्त्रित हैं। वे भी सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपरिवार ही आयेंगे। बड़ा ही आनन्द रहेगा जब लिच्छवि गणपति के परिवार में तीन साधु भी सम्मिलित होंगे।"

"यदि आपको विश्वास हो कि उन साधुओं को भी वहाँ अतिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और उनका किसी प्रकार का अपमान नहीं होगा तो मुझे यह स्वीकार है।"

"मैं निमन्त्रणदाता को अभी इसकी सूचना दे देता हूँ। इससे स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।"

"जी हाँ, यह ठीक रहेगा।"

इस प्रकार निश्चय कर लेने पर सुरेश्वर ने अपने लिपिक को बुलाया और उससे लिखवाकर वह सूचना महाराज मणिपाल के खेमे में भिजवा दी।

शिवकुमार को अपने आज प्रथम दिन के अभियान से सन्तोष ही हुआ था। उसने भारत के बारह नरेशों को रात्रि के भोजन का निमन्त्रण दिया था और उन सबने वह स्वीकार कर लिया था। भोज पर सभी नरेश सपरिवार आमन्त्रित थे। आमन्त्रितों को यह भी भली-भाँति विदित था कि भोजनोपरान्त वहाँ पर क्या होने वाला है।

सुरेश्वर भट्ट ने अपने पत्र में लिखा था—उसके साथ उसकी पत्नी के अतिरिक्त तीन अन्य व्यक्ति भी भोज पर आयेंगे। इसका ज्ञान उसको पहले नहीं था। यदि भोजनोपरान्त की गोष्ठी के लिए उनको अनुपयुक्त समझा गया तो भोजन करके उनको वापस भेज दिया जायेगा।

शिवकुमार ने उसके उत्तर में लिख दिया कि भोजनोपरान्त ऐसी कोई गोष्ठी करने का विचार नहीं है कि जिसका विषय गुप्त रखा जाए। हाँ, गुप्त परामर्श के लिए उस अवसर पर एक समिति का निर्माण अवश्य करने का विचार है। आप जितने भी अतिथि ला सकें, निःसंकोच ले आइये।

इस प्रकार हस्तिनापुर महाराज के खेमे में उस रात एक बहुत बड़ा भोज आयोजित किया गया। जितने आमन्त्रित किये गये थे उससे अधिक ही उस अवसर पर उपस्थित थे।

अभ्यागतों को दिये समय से कुछ पूर्व ही पण्डित शिवकुमार अपनी पत्नी चन्द्रमुखी और मणिपाल की पत्नी को लेकर द्वार पर पहुँच गया था। द्वार के एक ओर वह स्वयं खड़ा रहा और दूसरी ओर दोनों महिलायें खड़ी रहीं।

मणिपाल अभ्यागतों का स्वागत कर उनको यथास्थान बैठाने में लगा रहा था।

सुरेश्वर भट्ट जब अपने परिवार के साथ तीन वैरागियों को लेकर उपस्थित हुआ तो उनमें अपने पुत्र वृहस्पति को देखकर शिवकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृहस्पति को देखकर सहसा शिवकुमार के मुख से निकल गया, "तुम ?"

वृहस्पति ने जब द्वार पर अपने पिता को खड़ा देखा तो उसने झुककर उसके चरणस्पर्श किये। शिवकुमार ने उसको उठाते हुए कहा, "भगवन् ! अब यह नहीं चल सकता। अब आप संन्यासी हैं।"

"परन्तु गुरु तो आप ही हैं।"

सुरेश्वर भट्ट और उसकी पत्नी मोहिनी अपने आमन्त्रित संन्यासी को पण्डित शिवकुमार के चरणस्पर्श करते देख और उनको गुरु कहते सुन प्रसन्न हो गये।

साधु तो केवल वे ही तीन थे।

रात्रि को जब भोजन आरम्भ हुआ तो शिवकुमार ने वृहस्पति को अपने समीप बैठा लिया। उसने कहा, "मैंने अपने कार्य का यह श्रीगणेश कर दिया है।"

"मैं तो सोचता था कि आप अभी त्रिविष्टप में ही होंगे।"

"तुम्हारी माता ने सम्बन्धियों से मिलने की इच्छा व्यक्त की तो मुझे उसको लेकर भारत आना पड़ा। अभी तक तो सम्बन्धियों में केवल सूर्य ही मिला है। वह देखो, सामने बैठा है। आज उससे ही इस गोष्ठी का आरम्भ कराने वाला हूँ।"

जब सब अभ्यागतों को भोजन परोसा जा चुका तो पण्डित शिवकुमार ने सूर्य को संकेत किया और उसने सस्वर साम-गान आरम्भ कर दिया। उस गान का अन्त ऋग्वेद के संगठन सूक्त के मन्त्र से हुआ और फिर भोजन करना आरम्भ कर दिया गया।

सूर्यकुमार का साम-गान सुनकर सुरेश्वर भट्ट का चित्त प्रसन्न हो गया। उसे लगा कि उसने हरिद्वार आकर यह दूसरा पुण्य-लाभ किया है। पहला पुण्य-लाभ वह वृहस्पति का मिलना समझता था।

जब भोजन लगभग समाप्त होने को था, उस समय विषय पर चर्चा आरम्भ होने लगी।

शिवकुमार ने साधारण भोजन लिया था और उसने शीघ्र ही समाप्त कर दिया था। उसने उठकर कहना आरम्भ किया :

"आप महानुभावों को इस रात्रि-भोज पर आमन्त्रित करने में मेरा एक स्वार्थ है। मेरी एक योजना है। मैं आप लोगों को प्रेरणा देकर एक कार्य कराना चाहता हूँ। उस प्रेरणा के लिए ही यह मेरा पहला पग है। इसीलिये मैंने श्रीमानों के परिजनों और विशेषतया रानियों और महारानियों को यहाँ आमन्त्रित किया है।

"मैं समझता हूँ कि यदि देश असुरों का दास बन गया तो सबसे अधिक कष्ट और असुविधा हमारे महिला समाज को ही होने वाला है। शकों से हमारे विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुख्य कारण उनके द्वारा हमारे महिला वर्ग का अपमान किया जाना ही था। कारण तो अन्य भी अनेक थे, किन्तु मुख्य कारण यही मानना चाहिये।

"एक बार हम इन असुरों से पराजित हो गये तो फिर इस पुण्यभूमि में किसी भी महिला का सतीत्व रह नहीं पायेगा। यही कारण है कि स्थिति का सम्यक् चित्रण कर सबको समझाने के लिए मैंने भगिनियों को भी विशेषतया आमन्त्रित किया है। यदि इनका आग्रह पर्याप्त नहीं हुआ तो फिर मैं सम्पूर्ण राष्ट्र की महिलाओं द्वारा सब नरेशों के द्वारों पर धरना डलवाने की योजना बना रहा हूँ। इस प्रकार मैं देश की रक्षा के लिए नरेशों को उनके कर्तव्य के लिए जागृत करूँगा और उनसे आग्रह करूँगा कि वे अपने स्त्री-धन की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाएँ।

"सम्भवतया आप लोगों को विदित होगा कि हूण इस समय यवन देश तक पहुँच गये हैं। उनका अगला पग काम्भोज और फिर गान्धार है। यदि ये दोनों उसके हाथ में आ गये तो फिर भारत के द्वार उनके लिए खुल गये समझना चाहिये।

"अत: वे भारत के द्वार पर आक्रमण न कर सकें इसके लिए हमें तुरन्त कटिबद्ध हो जाना चाहिये। इस निमित्त ही मैंने आप जैसे श्रीमानों को एक ब्राह्मण के डेरे में सादा भोजन के लिए कष्ट दिया है।

"मैं चाहता हूँ कि हम सब यहाँ पर सौगन्ध लें कि इस पुण्य कार्य के लिए हम अपनी समस्त शक्ति और बुद्धि लगा देंगे। यह ऐसा पुण्य कार्य होगा कि जो आपकी भावी सात पीढ़ियों तक के लिए स्वर्ग के द्वार खोल देगा।

"महाराज भगीरथ बहुत प्राचीनकाल में इस भागीरथी को धरा पर लाने में सफल हुए थे। कहते हैं कि उनके पूर्वज अभी तक उनके इस सद्प्रयास का सुफल स्वर्ग में भोग रहे हैं और उनके वंशज भी इसका फल भोगते जा रहे हैं।

"मैं समझता हूँ कि इस समय अपने देश को इन पिशाचों से बचाना तो भगवती भागीरथी को इस धरा पर लाने के समान ही श्रेष्ठ और पुण्य का कार्य है। भावी भारत सन्तान शताब्दियों तक आपका पुण्य-गान करेगी। आपके चरणों में अपने श्रद्धा और भक्ति के पुष्प अर्पित करती रहेगी।"

शिवकुमार का कथन अभी पूर्ण ही हुआ था कि वृहस्पति उठकर कहने लगा, "गुरुदेव! इस दिशा में मैंने कुछ कार्य किया है। कृपया मुझे अनुमति दीजिये कि मैं उसका वर्णन कर दूँ।"

वृहस्पति साधु द्वारा शिवकुमार को इस प्रकार 'गुरुदेव' सम्बोधन किया जाना सुनकर सब नरेश विस्मय में उन दोनों को देखने लगे थे। वृहस्पति बोला, "मैंने वैरागियों का संगठन निर्माण कर लिया है। कुम्भ-समारोह समाप्त होते ही वह संगठन समस्त देश में व्याप जायेगा। वह सोई हुई प्रजा को जगायेगा और प्रजा के माध्यम से उनके नरेशों को सावधान करने का यत्न करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं यत्न कर रहा हूँ कि एक-दो वर्ष के भीतर इस देश में एक नया विचार उत्पन्न हो जाय। गुरु गोरक्षनाथजी की कृपा से उनके मत के सब साधु इस कार्य के लिए तैयार हो गये हैं।

"मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि आप एक बार इन असुरों से इस देश को बचाने के लिए तैयार हो गये तो तैंतीस करोड़ देश के देवता सहायता के लिए आपकी पीठ पर खड़े हो जायेंगे।"

भोजन तो बहुत पहले ही समाप्त हो गया था।

सर्वप्रथम विदिशा-नरेश ने उठकर कहा, "मैं आपकी योजना का समर्थन करता हूँ। तदपि कुछ ऐसी बातें हैं जिनको मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।"

उसी समय लिच्छवि-गणपति खड़े होकर कहने लगे, "इस समय अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो हमें सिद्धान्त रूप में एक सूत्र को स्वीकार कर लेना चाहिये। हम इस पवित्र एवं पतित-पावनी भागीरथी के तट पर खड़े होकर गंगाजल को हाथ में ले संकल्प लेते हुए प्रण करते हैं कि इस आने वाली आपदा का हम अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से विरोध करेंगे।

"इस सम्बन्ध में मेरा यह प्रस्ताव है कि आज हम एक समिति का गठन कर दें जोकि इस पुण्य कार्य की योजना को तैयार करे। उसके बाद अर्थात् योजना तैयार हो जाने पर समस्त देश के नरशों की एक महासभा का आयोजन किया जाए। यह आयोजन किसी केन्द्रीय स्थान पर हो सके तो सभी को सुविधा होगी। उस अवसर पर सारी योजना और प्रस्तावों पर विधिपूर्वक विचार-विनिमय किया जाए।"

सुरेश्वर भट्ट की बात समाप्त ही हुई थी कि मगध-नरेश कुमारगुप्त खड़ा होकर कहने लगा, "हम पण्डित शिवकुमारजी से आग्रह करेंगे कि वे ही समिति के सदस्यों के नामों की घोषणा करें। उस समिति द्वारा निर्मित योजना पर विचार करने के लिए छः मास के भीतर एक बृहत् सभा का आयोजन किया जाना चाहिये। तदनन्तर हम समस्त देश के नरेशों को पाटलिपुत्र में अश्वमेध यज्ञ में आमन्त्रित करने का विचार करते हैं। इस यज्ञ में अश्व-पूजन होगा और फिर अश्व-भ्रमण के विषय पर विचार होगा।"

कुछ अन्य नरेशों ने भी इसका समर्थन किया।

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "मैं इस योजना समिति में निम्न महानुभावों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव कर रहा हूँ।

"मगध-सम्राट कुमारगुप्त, विदिशा-नरेश महाराज गजेन्द्रपाल, वैशाली गण-पति सुरेश्वर भट्ट, कश्मीर-नरेश महाराज प्रवरसेन और पाँचाल-नरेश महाराज वीरसिंह।

"इन नरेशों के अतिरिक्त वैरागी आनन्द प्रकाश बृहस्पति को भी इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिये। मैं स्वयं भी इस समिति की सेवा के लिए इच्छुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ।"

विदिशा-नरेश ने जब समिति में अपना नाम सुन लिया तो उसको बड़ी प्रसन्नता हुई और इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए सबसे पहले वही उठकर खड़ा हो गया और उसने कह दिया, "मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।"

किसी ने आपत्ति की कि कश्मीर-नरेश यहाँ उपस्थित नहीं हैं, उनका नाम क्यों रखा गया है? तो शिवकुमार ने उनको आश्वासन दिया कि वह उनसे स्वीकृति ले लेगा और वे निश्चय ही इस समिति को सहयोग देंगे।

इसके बाद शिवकुमार ने यह भी सूचित कर दिया कि आगामी आषाढ़ पूर्णिमा के अवसर पर इस समिति की बैठक पाटलिपुत्र में होगी। इसके लिये मगध-नरेश की ओर से औपचारिक निमन्त्रण भी यथासमय भेज दिया जायेगा।

इस प्रकार सानन्द और सोल्लास यह भोजन-समारोह सम्पन्न हुआ।

सब लोगों के विदा होने पर जब सूर्यकुमार बृहस्पति के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तो बृहस्पति बोला, "सूर्य! तुम तो अब बहुत ही कुशल और योग्य पुरोहित हो गये हो। आज के समारोह का उद्घाटन बहुत ही सुरुचिपूर्ण रीति से किया।

"मैं तो योगिराज से यह निवेदन करने आया हूँ कि अपनी भ्रातृवधू को भी आशीर्वाद देते जाइये।"

"क्यों, उसे किसी बात का अभाव है?"

"वैसे तो वह सर्वथा सन्तुष्ट ही दिखायी देती है। फिर भी बड़ों का आशीर्वाद ग्रहण करने का सौभाग्य मिले तो इससे अधिक उत्तम और क्या हो सकता है।"

"तो ठीक है, कल मध्याह्न का प्रसाद वहीं प्राप्त करूँगा।"

"हम कृतकृत्य अनुभव करेंगे।"

शिवकुमार समीप ही खड़ा दोनों की बात सुन रहा था। उसने भी कह दिया, "लगता है, सूर्य की माता भी अभी अपने पुत्र के दर्शन से तृप्त नहीं हुई है।"

"गुरुदेव! उनके भी दर्शन करूँगा।"

: ६ :

शिवकुमार का अभ्यास था कि हाथ में लिये कार्य को तुरन्त सम्पन्न किया जाए। इसलिये दूसरे दिन ही प्रातःकाल के अल्पाहार के उपरान्त योजना समिति की प्रथम बैठक बुला ली। उस समिति में आनन्द प्रकाश वैरागी भी सदस्य था।

समिति की बैठक होने पर आनन्द प्रकाश वैरागी ने उसके द्वारा अब तक किये गये कार्य का सारा विवरण विस्तार से सुना दिया। उसने बताया, "गुरु गोरक्षनाथ पन्थ के दस सहस्र से भी अधिक वैरागी संगठित होकर यह शुभ कार्य ब्राह्मण वर्ग के हाथ से लेकर अपने हाथ में ले रहे हैं। वह ग्राम-ग्राम और नगर-नगर परिभ्रमण करते हुए जन-मानस को सचेत करने का सुकृत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुम्भ स्नान से निवृत्त होकर मैं उनके केन्द्र पर जाकर उनको दिशा प्रदान कर उन्हें कार्यक्षेत्र में भेजूँगा। वे अपने-अपने देश के नरेशों को प्रोत्साहित करेंगे और जो प्रोत्साहित नहीं होंगे उनको विवश कर दिया जायेगा कि वे अपने कर्तव्य को पहचानकर उसके लिये कृतसंकल्प हों।

"मैं समझता हूँ कि गुरुदेव ने इस कार्य का श्रीगणेश तो कल रात ही कर दिया है। अब मैं अपने दस सहस्र वैरागियों को इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए भेज दूँगा।"

शिवकुमार ने कहा, "मेरी योजना में जनता में प्रचार करना प्रथम पग था। उसका उत्तरदायित्व इन वैरागी महानुभाव ने स्वीकार कर लिया है। हम लोगों को चाहिये कि देश की रक्षा के साथ-साथ अपनी संस्कृति की रक्षा भी इस योजना के साथ जुड़ जानी चाहिये।"

स्वामी आनन्द प्रकाश ने कहा, "मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जन-साधारण अव्यक्त लक्ष्यों को नहीं जानता। इस कारण साँझी संस्कृति के पाँच लक्षण हमने निर्धारित करने का विचार किया है। ये जनता के मनों को आन्दोलित करने में सक्षम होंगे। ये लक्षण होंगे :

१. अपनी सन्तान का नाम देवभाषा और अपने देवी-देवताओं के नाम पर ही रखें।
२. नित्य स्नान करें और तदुपरान्त गायत्री मन्त्र का जप करें। जो गायत्री मन्त्र का उच्चारण नहीं कर सकते, वे नित्य गणपति वन्दना के दो श्लोक ही पढ़ लिया करें।
३. पूर्णिमा के दिन सभी घरों में सत्यनारायण की कथा का विधान हो।
४. सभी लोग अपने कण्ठ में रुद्राक्ष अथवा रुद्राक्ष की माला धारण करें।
५. प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा होना चाहिये और उस पर नित्य जल चढ़ाया जाना चाहिये।"

बृहस्पति अपनी बात समाप्त कर चुका तो उसे सुन शिवकुमार हँस पड़ा। उसने कहा, "यह सत्यनारायण की कथा क्या है?"

"कथा कुछ नहीं है। वह किसी परमात्मा के भक्त की कथा है। किसी अनपढ़ ब्राह्मण ने लिखी है। तदपि इसमें निरन्तर नारायण के नाम को स्मरण रखने का आग्रह किया गया है।"

शिवकुमार हँस पड़ा। उसने फिर कहा, "आपके इन पाँच सूत्रों में राष्ट्र और जाति के मूल ज्ञान का स्रोत कहाँ है? मेरा अभिप्राय है कि भारतीय समाज में वेद को धर्म का मूल माना जाता है। उसका इनमें कहीं उल्लेख ही नहीं है?"

"गुरुदेव! वह तो मैं जानता हूँ, परन्तु जन-साधारण रूढ़ियों में इतना जकड़ा जा चुका है कि उसे विश्वास के वन से निकालकर राजपथ पर लाने के लिए इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार पाँच कर्मों का स मूह विचार किया गया है, इसके विषय में वैरागी तैयार हो गये हैं।"

शिवकुमार अपने संन्यस्त पुत्र की योजना सुनकर चकित रह गया। वह समझ रहा था कि यह योजना तो नितान्त अशुद्ध है, परन्तु इसे वह सामूहिक लक्ष्य के विरुद्ध नहीं समझता था।

उसने फिर पूछा, "तुम मुझसे जो इतने वर्ष तक वेदाध्ययन करते रहे हो उस अध्ययन का वस यही निष्कर्ष निकल पाया है?"

"गुरुदेव! वर्तमान काल की प्रवृत्ति के अनुसार आवश्यकता समझ यह कार्य तो उसका प्रारम्भिक विन्दु है।"

योजना समिति ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। वास्तव में वह बौद्ध विचारों की प्रतिक्रिया मात्र ही थी। तो भी इस समय कम-से-कम काल में भारत जैसे विशाल देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक सहज उपाय समझकर योजना समिति ने इसे स्वीकार कर लिया।

शिवकुमार ने यह सुझाव दिया कि सार्वजनिक समारोहों का आरम्भ सदा वेद-पाठ से हुआ करे और इसके लिये पुरोहितों को वेद-पाठ की विधि सिखाई जाए।

"हाँ, पण्डित सूर्यकुमार इस कार्य के लिए महा-आचार्य का कार्य करें।" वृहस्पति का सुझाव था।

"देश-देशान्तर के पुरोहित प्रारम्भिक मंगल गान में वेद-गान करें।" समिति ने एक यह सुझाव भी उस के साथ जोड़ दिया।

इन प्रारम्भिक वातों के उपरान्त संयुक्त सैनिक व्यवस्था की बात पर विचार होने लगा।

यह अनुमान लगाया गया कि सम्पूर्ण देश में बीस लाख सैनिक, दो लाख हाथी, पाँच लाख रथ तथा बढ़िया शस्त्रास्त्र एवं वाणों से सैनिकों को सुसज्जित किया जाए। कौशाम्बी में कुछ शस्त्रास्त्र निर्माताओं को तैयार कर देश-भर के लौहकारों को इस कार्य पर नियुक्त करने की योजना पर भी विचार किया गया।

योजना समिति की बैठक में यह निश्चय हुआ कि सब देशों के सब नरेश इस संगठन में सम्मिलित होने की स्वीकृति दें। अपने राज्य-प्रबन्ध और शासन में सब स्वतन्त्र रहें। जिनमें परस्पर किसी प्रकार के सम्बन्ध बने हैं, वे स्थिर बने रहें।

संघ के सब नरेश सेना में भरती को बढ़ा दें और संघ को सूचित करें कि अपनी सामर्थ्य से वह कितनी सेना एकत्रित कर सकते हैं तथा संघ से वे क्या सहायता अपेक्षित समझते हैं।

कुछ कुशल कारीगरों को शस्त्रास्त्रों में विकास करने के लिए कहा जाए।

प्रारम्भ में अपनी-अपनी सेना के जो जहाँ पर जैसे सेनापति हैं, वे सब उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार रहें।

संघ के सदस्यों को चाहिये कि परस्पर के विवाद को वे संघ के माध्यम से निपटाने का यत्न करें।

संघ में शीघ्र ही एक निष्पक्ष निर्णायकों की समिति का गठन किया जायेगा।

इस समय इतनी ही बातों को लिपिबद्ध किया गया और वैरागियों की योजना को भी योजना समिति ने अस्वीकार तो किया नहीं, परन्तु उसको एक प्रकार से इसमें सम्मिलित नहीं किया गया।

अन्त में यह निश्चय किया कि एक बहुत विशाल सार्वजनिक सभा कुम्भ से एक दिन पूर्व सायंकाल के समय आयोजित की जाए और उसके द्वारा जनता में प्रचार आरम्भ कर दिया जाए।

उस सभा में वैरागियों के प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया जाए।

यह बैठक प्रातःकाल के अल्पाहार के उपरान्त आरम्भ की गयी थी जो मध्याह्न के भोजन के समय तक चलती रही। इस प्रकार इसमें विभिन्न विषयों पर विचार और निर्णय होते रहे। यह भी निश्चय हुआ कि कुम्भ वाले दिन स्नानोपरान्त सायंकाल योजना समिति की बैठक पुनः बुलायी जाए जिसमें भविष्य में सभा के आयोजन पर विचार किया जाए।

इस प्रकार योजना समिति के सदस्य मध्याह्न भोजन के लिए अपने-अपने निवास की ओर चल दिये।

आनन्द जब उठकर जाने लगा तो सूर्य उसके सम्मुख खड़े होकर हाथ जोड़े बोला, "भैया ! यहीं भोजन कर लो।"

"किसका है यह भोजन-प्रबन्ध ?"

"यहाँ तो महाराज मणिपाल का है।"

"सूर्य ! तुम उनके क्या हो जो उनकी ओर से निमन्त्रण दे रहे हो ?"

"मैं उनका राजपुरोहित हूँ।"

"राजपुरोहित तो स्वयं अतिथि होता है।"

"मुझे अधिकार है कि मैं जिसको उचित समझूँ आमन्त्रित कर सकता हूँ।"

महाराज मणिपाल योजना समिति का सदस्य नहीं था। इस कारण उस समय वह स्वयं वहाँ उपस्थित नहीं था। वैरागी बृहस्पति शिवकुमार का मुख देखने लगा।

यह देख शिवकुमार ने कहा, "सूर्यकुमार ठीक कहता है। उसको आमन्त्रित करने का अधिकार है। यह सारा प्रबन्ध सूर्यकुमार का ही है।"

"यदि यह बात है तो ठीक है।" इतना कहकर आनन्द प्रकाश ने अपना कमण्डल उठाया और सूर्यकुमार के साथ चल दिया।

आनन्द के मुख पर तेज और आभा दीप्तमान होती थी। उसका कारण निरन्तर योगाभ्यास करना ही था। जैसा बाल्यकाल में उसका मुखमण्डल दीप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता था, इस आयु में भी वह उसी प्रकार दीप्त हो रहा था। स्वभाव से भी वह उतना ही चंचल था जितना कि वह बाल्यकाल में था।

आनन्द प्रकाश वृहस्पति जब मणिपाल के भोजनालय में पहुँचा तो उस समय वहाँ महाराज मणिपाल, उनकी पत्नी सरस्वती पहले ही भोजन की प्रतीक्षा में बैठे थे। उनके साथ ही वृहस्पति की माता चन्द्रमुखी और सूर्यकुमार की पत्नी नील-प्रभा भी एक स्थान पर बैठी थीं।

वृहस्पति भीतर प्रविष्ट हुआ तो मणिपाल ने उठकर उसका स्वागत करते हुए कहा, "आइये योगिराज ! इधर मेरे समीप पधारिये।"

रात्रि के भोजन के समय मणिपाल जब एक वैरागी के समीप बैठा था तो उसने उससे वृहस्पति के संन्यास की बात के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली थी।

जब मणिपाल ने वृहस्पति को 'योगिराज' कहके सम्बोधित किया तो सब समझ गये कि मणिपाल ने उसका विस्तृत परिचय प्राप्त कर लिया है।

"तो भैया ! अभी भी समाधि लगाया करते हो ?" सूर्य ने उत्कण्ठा से पूछा।

"हाँ, लगाता हूँ, किन्तु अपने ढंग की। मेरी समाधि कुछ पल से अधिक नहीं होती। परन्तु उसका फल वही होता है जो लोग महीने-भर समाधि लगाकर प्राप्त किया करते हैं।"

"क्या फल होता है ?" मणिपाल ने पूछा।

"मन की इच्छायें सात्त्विक हो जाती हैं और वह इतनी प्रबल हो जाती हैं कि मेरे समीप मनुष्य और पशु तो क्या, जड़ पदार्थ भी मेरी इच्छा के अनुकूल ही कार्य करने लगते हैं।"

"जी हाँ, रात आपके एक साथी आपके वैरागियों की दीक्षा लेने की कथा सुना रहे थे।"

सूर्यकुमार ने महाराज से पूछा, "महाराज ! वे क्या कथा सुना रहे थे ?"

"यही कि परम गुरु गोरक्षनाथजी के पीठासन पर आरूढ़ महन्त ने पहले तो इनको दीक्षा देने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि वे लोग एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें। बाद में वह निश्चय करके बतायेंगे कि उनको दीक्षा दी जा सकती है अथवा कि नहीं।

"किन्तु सहसा न जाने क्या हुआ कि महन्तजी उठे और उन्होंने वहाँ रखी विभूति उठाई तथा इनके तिलक कर दिया और फिर कहने लगे कि क्षमा करें, मैंने तो आपको पहचाना ही नहीं।

"महन्तजी ने न जाने इनमें क्या देखा कि इनको तिलक किया और फिर कह दिया कि अब ये आ गये हैं अतः वे अपनी पीठ इनको सौंपकर स्वयं हिमालय की ओर तपस्या के लिए जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तिलक लगाने के उपरान्त इन्हें आनन्द नाम दिया गया।

"इस प्रकार आपका साथी रात यह कथा बता रहा था। आपके वहाँ से उठ जाने के उपरान्त उसने महन्तजी से पूछा, 'महाराज! आपने इस साधु को विशेष सुविधा क्यों प्रदान की? हममें से तो किसी को भी आपने एक वर्ष से पूर्व दीक्षा नहीं दी थी। यहाँ तक कि मुझे तो आपने दो वर्ष के बाद दीक्षा दी थी?'

"महन्तजी ने कहा, 'निर्मल! जानते हो, उन दो वर्षों में तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करता रहा था?'

"निर्मल का कहना था, 'मैं तो पूछ रहा हूँ कि जो कुछ आपने उन दो वर्षों में सिखाया था वह सब क्या इस नवागन्तुक को सिखाने की आवश्यकता नहीं थी?'

"महन्तजी ने कहा था कि वह नया साधु, जिसे मैंने आनन्द का नाम दिया है, मुझसे अधिक जानता है। योग के विषय में भी और फिर जो कुछ योग से उपलब्धि होती है, उसके विषय में भी वह मुझसे बहुत आगे है। जो कुछ मैंने संन्यास लेने के उपरान्त सीखा है, यह व्यक्ति गृहस्थ में प्रविष्ट होने से पूर्व ही वह सब सीख चुका है।

"आनन्दजी महाराज! आपका साथी बता रहा था कि जब तक आप गोरखपुर के आश्रम में रहे तब तक महन्तजी सबसे अधिक आपका ही मान करते रहे।"

महाराज मणिपाल फिर कहने लगा, "मैंने उनसे पूछा, फिर यह वैरागियों का प्रचार-कार्य किस प्रकार आरम्भ हुआ?"

"महन्त आनन्दजी का साथी कहने लगा, 'एक दिन आश्रम में जितने भी वैरागी ठहरे हुए थे, महन्तजी ने उनको बुलाया और उनको भवन में एकत्रित कर कहा, 'स्वामी आनन्दजी आपको कुछ कहना चाहते हैं।'

"हम सब महन्तजी का मुख देखने लगे। पहले तो ऐसा कभी हुआ ही नहीं था। महन्तजी स्वयं ही सदा उपदेश दिया करते थे। उनके कथन के उपरान्त इन्होंने अपना उपदेश आरम्भ कर दिया। उस दिन इन्होंने लोक-कल्याण की बात कही। इन्होंने कहा कि हम सबको चाहिये कि हम लोक-कल्याण की चिन्ता करें। इन्होंने इस रीति से उपदेश दिया कि हम सबको स्वतः ही यह प्रेरणा होने लगी कि हमें गृहस्थों का पथ-प्रदर्शन करना चाहिये।

"उस समय इन्होंने विस्तार से यह बताया कि हम वैरागी लोग क्या-क्या कर सकते हैं और वह सब हमें किस प्रकार करना चाहिये।

"आनन्द स्वामीजी दो घड़ी तक अपना उपदेश देते रहे और फिर अन्त में इन्होंने हमसे पूछा कि कौन-कौन इस कार्य के लिए उद्यत हैं?

"उस समय वहाँ पर एक सहस्र से भी अधिक वैरागी विद्यमान थे। सबने एक स्वर से इनकी योजना में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसके बाद दो दिन तक ये हमें अपना यह पंचसूत्री कार्यक्रम समझाते रहे।

"जब सब तैयार हो गये तो इन्होंने कहा कि इस समय हरिद्वार में कुम्भ होने वाला है। उसके उपरान्त ही हमारा कार्य आरम्भ हो जायेगा। हरिद्वार से ही हम लोग अपने-अपने निर्धारित स्थानों को चल देंगे।

"उसके बाद इन्होंने गोरखपुर के बाहर के वैरागी आश्रमों का भ्रमण किया। उसका ही यह परिणाम है कि आज हरिद्वार में बारह-तेरह सहस्र वैरागी एकत्रित हो गया है। उनमें से दस सहस्र से भी अधिक वैरागी सारे देश में भ्रमण कर जन-जागृति का कार्य करने के लिए उद्यत हैं। हम सबको बता दिया गया है कि किस को किस ओर जाना है। सबकी दिशायें और स्थान निर्धारित कर दिये गये हैं।

"आगामी वर्ष हम गोरखपुर में अपने मुख्य आश्रम पर पहुँचेंगे। उस समय हम सब अपने-अपने कार्य का विवरण देंगे। तदनन्तर आगामी वर्ष के कार्य का निर्धारण किया जायेगा।

"आनन्दजी का कहना है, बारह वर्ष के उपरान्त आगामी कुम्भ पर हम इस कार्यक्रम के प्रभाव पर विचार कर फिर आगामी बारह वर्ष का कार्यक्रम बनायेंगे।

"यह सब मैं रात सुन चुका हूँ।" मणिपाल ने अपना कथन समाप्त करते हुए कहा।

शिवकुमार भोजन करता हुआ मणिपाल के विवरण को ध्यान से सुन रहा था। उसने कहा, "आनन्द स्वामी के कार्यक्रम का हमारे राजनीतिक कार्यक्रम से विशेष सम्बन्ध नहीं है और जहाँ तक सांस्कृतिक उत्थान का प्रश्न है, इस कार्य का उसके लिए कुछ भी महत्त्व नहीं है।"

आनन्द ने कहा, "गुरुदेव! इसका महत्त्व तो है। हमारे इस कार्य से देश में एकात्मता का सूत्रपात होगा। यद्यपि यह एकात्मता बाहरी चिह्नों की ही होगी। तदपि इसका प्रभाव आन्तरिक विचारों पर भी अवश्य पड़ेगा। अतः बाहर की एकात्मता भीतर की ओर उन्मुख होगी, इसमें मुझे तो सन्देह नहीं है।"

"मेरे विचार से यह प्रक्रिया अस्वाभाविक है। भौतिक उपलब्धियों के लिए तो किसी सीमा तक यह सहायक हो सकती है। परन्तु बाहर का व्यवहार भीतर की मान्यताओं को स्पर्श भी कर पायेगा, मुझे इसमें सन्देह है।"

"गुरुजी! बाहर की बातों का प्रभाव भीतर मन और बुद्धि पर तो होता ही है। मन और बुद्धि ही जीवात्मा का पथ-प्रदर्शन करते हैं।"

"यह ठीक है। परन्तु बाहरी व्यवहार की यात्रा बाहर से भीतर तक इन्द्रियों के द्वारा होती है। इन्द्रियों के बाहरी व्यवहार से पूर्व यदि बुद्धि और पूर्व के व्यवहार का मार्गदर्शन न हो तो प्रथम तो इनका प्रभाव मन पर होता ही नहीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कुछ होता भी है तो वह प्रायः मन की कामनाओं से विकृत हो जाता है।

"देखो, मैं एक उदाहरण देता हूँ। अपने पंच कर्मों में तुमने रुद्राक्ष की माला धारण करने की बात कही है। रुद्राक्ष की माला धारण करने का प्रथम प्रभाव होगा कि यह एक असुन्दर पहरावा है। इस कारण लोग इसे अपने पंच कर्मों में से निकाल देंगे या फिर उस पर सोने-चाँदी का आवरण चढ़ाकर इसे सुन्दर करने का यत्न करेंगे।

"कुछ ऐसे भी निकल आयेंगे जो रुद्राक्ष को अभौतिक वस्तु सिद्ध करने का यत्न करेंगे। वे इसके साथ किसी प्रकार की अलौकिक कथा जोड़ देंगे अथवा इसके धारण करने के अभौतिक प्रभाव बताने लगेंगे। इसका परिणाम अज्ञानता का प्रसार होगा।

"पहले भी इस प्रकार की बात हो चुकी है। किसी ने वेद में यज्ञ शब्द का अर्थ पहले वेदी, कुण्ड, समिधा, अग्नि, सुगन्धित द्रव्य की हवि से किया तो फिर कुछेक महापण्डितों ने आहुति देने के साथ वेद-मन्त्र पढ़ने आरम्भ कर दिये। उस समय यह कहा गया कि इससे वेद-मन्त्र पढ़ने और उनके अर्थ भी स्पष्ट होते जायेंगे।

"परन्तु कुछ ही काल के उपरान्त वेद-मन्त्रों के अर्थ तो विस्मृत होने लगे और केवल हवि और आहुति ही रह गये।

"तदनन्तर हवन करने के पदार्थों में परिवर्तन होने लगा। वह इस दृष्टि से कि हवन में शेष यज्ञ कर्ताओं में हवि के नाम से वितरित किया जाता था। यदि यज्ञ में हवनीय पदार्थ स्वादिष्ट हो तो हवि भी स्वादिष्ट ही होगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में जिस पदार्थ के खाने-पीने की इच्छा हुई वही आहवनीय हो गयी। इससे पशु यज्ञों की सृष्टि हुई। मांसाहारियों को पशु की बलि का शेष मांस हवि के रूप में प्राप्त होने लगा। इस पशु-बलि का प्रभाव अश्वमेध यज्ञ पर भी होने लगा और उसके बाद तो नर-बलि तक भी होने लगी।

"यज्ञकर्ताओं ने पशु-बलि और नर-बलि के लिए युक्तियाँ देनी आरम्भ कर दीं। वह यह कि बलि दिया जीव सीधा स्वर्ग सिधारता है। न केवल इतना अपितु पशु अथवा नर-बलि द्वारा दी गयी यज्ञ की हवि धन-वैभव से ओतप्रोत कर देती है।

"इस प्रकार के यज्ञों में कितने पशु, अश्व अथवा नर स्वर्ग सिधारे, इस बात को तो कोई बता नहीं सकता। परन्तु इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि भारत में यज्ञ शब्द के आवरण में ढोंग, आडम्बर और अनेक पाप कर्म भी होने लगे। वाममार्गियों में इन्हीं यज्ञों के अनुरूप मद्य, मांस और स्त्री-सम्भोग आरम्भ हो गया।

"मुझे तुम्हारे इस पंच कर्म वाले आन्दोलन में किसी प्रकार का कल्याण नहीं दिखायी दे रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह इतिहास और लौकिक अज्ञान के ही परिणामस्वरूप था। इसमें कार्य और परिणाम का किसी ज्ञान-विज्ञान के साथ सम्बन्ध नहीं था। वास्तव में तो यह मानसिक दुर्बलता का एक प्रकार से अभिव्यक्तिकरण ही समझा जाना चाहिये।

यद्यपि आनन्द वृहस्पति को इस इतिहास का ज्ञान तो था, तदपि उसका विचार था कि वह अपने पंच कर्मों की दिशा इस ओर जाने से रोकने में समर्थ हो सकेगा। उसे अपनी वाक्शक्ति और तर्क-कुशलता पर अधिक विश्वास था।

वृहस्पति ने अपने पिता एवं गुरु की शंका सुनकर कहा, "गुरुजी! मेरी योजना के मार्ग में जो त्रुटियाँ तथा बाधायें हैं, आपने उनके विषय में मुझे सचेत किया है। आपका कथन ठीक ही है। अपने आश्रम के महन्तजी ने इस ओर संकेत किया था। मैंने जो बात उनको कही थी, वही मैं आपको बता रहा हूँ। इन बाधाओं का ज्ञान होते हुए हम उनसे बचकर निकल जायेंगे। और फिर यदि जीवन रहा तो आगामी कुम्भ पर होने वाली पूर्ण योजना के अवसर पर जो दोष होंगे, उनको दूर किया जा सकेगा।

"इनमें जो बात श्रेष्ठ प्रतीत होती है वह है पूर्ण जाति को सहज ही एकात्म कर लेना।"

शिवकुमार यह सुनकर चुप रहा। यह उसके ज्ञान का ही एक अंग था कि मनुष्य अनुभव से लाभ उठाता है। किन्तु देखा यह गया था कि अनुभव परिपक्व होने तक मनुष्य की आयु समाप्त हो जाती है और जो पुनः उस मार्ग का अनुसरण करते हैं वे भी अपना अनुभव प्राप्त करने में लग जाया करते हैं।

इस प्रकार यह बात यहीं समाप्त हो गई। तब तक भोजन भी समाप्त हो चुका था।

वृहस्पति जब हाथ धोने के लिए उठने लगा तो उसकी माता चन्द्रमुखी ने कहा, "वृहस्पति! मैं रामेश्वर के परिवार से मिलने के लिए कौशाम्बी जा रही हूँ। मेरा विचार कुछ काल तक वहाँ रहने का भी है। यह मैं तुम्हें इसलिये बता रही हूँ कि यदि कभी उस ओर आओ तो मुझे भी दर्शन देना। तुम्हारी बातें सुन-कर चित्त को सुख और शान्ति प्राप्त होती है।"

"माताजी! मेरा विचार एक-दो मास में ही उस ओर जाने का है। तब मैं आपके दर्शनों के लिए भी आऊँगा।"

सूर्य ने पूछा, "हस्तिनापुर कब तक आने का विचार है?"

"क्यों, वहाँ आना भी आवश्यक है?"

"क्यों, हस्तिनापुर में मनुष्य नहीं रहते, जिनको आपके पंच कर्मों का अनुसरण करना चाहिये?"

"हमने निश्चय किया है कि हमारी योजना का केन्द्रीय कार्यालय हस्तिनापुर में होगा। गुरुजी तो वहाँ होंगे ही, इसलिए हम समझते हैं कि किसी अन्य की वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने की आवश्यकता नहीं है।"

"वहाँ आपके पूर्व जीवन के भाई और उसकी बहू तथा उसका परिवार भी तो रहता है। उनको दर्शन देकर कृतार्थ नहीं करेंगे?"

"अच्छा, यह बात है?"

"हाँ महाराज! मैं तो नित्य अपनी कथा, उपदेश आदि में आपके कार्यों की चर्चा करता रहता हूँ।"

"क्या-क्या कह दिया है तुमने उन लोगों को मेरे विषय में?"

"आपके पूर्व जीवन और उससे भी पूर्वजन्म की सब कथायें मैं उनको सुना चुका हूँ। वे कथायें तो वहाँ अब देवी-देवताओं की कथाओं की भाँति सुनी-सुनाई जाती हैं।"

"अच्छा, वे सब बातें तुम्हें स्मरण रहीं?"

"हाँ, क्यों नहीं। एक वृद्ध पण्डितजी थे। उनकी धर्मपत्नी आपके किसी पूर्व-जन्म में आपकी प्रेमिका रही थीं...।"

यह सुन सब हँसने लगे। महाराज मणिपाल और महारानी सरस्वती भी उस समय तक वहीं पर थे। वे भी यह वार्तालाप बड़े ध्यान से सुन रहे थे। महारानी सरस्वती तो महात्मा आनन्द के तेजोमय मुख को देख-देखकर मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी ही रह गयी थीं।

वृहस्पति ने अपने भाई से कहा, "हाँ, उस आत्मा ने मेरे ही घर पर कन्या के रूप में जन्म लिया था। उसका विवाह हो गया है और अब तो उसकी दो सन्तान भी हैं।"

महारानी को यह सब सुनकर बिस्मय हो रहा था। उसने पूछा, "महाराज! आपने उस आत्मा को किन लक्षणों से पहचाना था?"

"आत्मा तो आत्मा को पहचानता है। साथ ही प्राणी अपने तथा अपने प्रियजनों के शरीर को देखने में इतना लीन होता है कि उसके शरीर के भीतर स्थित आत्मा के दर्शन नहीं कर पाते। दूसरे के आत्मा की बात तो दूर, अपने ही आत्मा को हम प्राय: पहचानते ही नहीं।

"जो व्यक्ति शरीर के भीतर आत्मा को देखने का यत्न करता है वह आत्मा आत्मा में अन्तर और उसके पहचान के चिह्न जान जाता है। वह आत्मा की देखने योग्य क्रियाओं से हो सकता है।"

इस प्रकार आनन्द वृहस्पति की बातें सुनकर महारानी सरस्वती बड़ी प्रभावित हुई। उसने दृष्टि भरकर वैरागी को एक बार पुन: देखा और फिर अपने खेमे को चली गयी।

शिवकुमार आदि ने हाथ धोये और फिर वह वृहस्पति को लेकर अपने डेरे में चला गया। वहाँ भूमि पर दरी बिछी थी और उस पर कुश के आसन बिछे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पर शिवकुमार स्वयं बैठ गया और दूसरे पर उसने बृहस्पति को बैठाया। उसके बाद शिवकुमार ने बृहस्पति को उसके ल्हासा से चले आने के बाद का विवरण सुना दिया।

उसके बाद आनन्द ने अपना वृत्तान्त बताते हुए कहा, "गुरुजी ! मैंने वहाँ से हिमालय पार किया और फिर सिक्किम पहुँचा। वहाँ से मैं दुर्गमलिंग भूमि पर जा पहुँचा। कुछ दिन वहाँ रहकर पाटलिपुत्र गया और वहाँ से चलकर गोरक्षधाम पहुँच गया।

"मेरी यह जो वर्तमान योजना है इसका बीजारोपण तो गोरक्षधाम में आश्रम में रहते हुए ही हुआ था। वहीं मैंने सम्यक् संन्यास की दीक्षा ली और फिर वहीं से योजनाबद्ध कार्य आरम्भ कर दिया।

"इस समय तक लगभग दस सहस्र वैरागी इस योजना में सम्मिलित हो पाये हैं। ये वैरागी दो-दो की मण्डली में चलकर पूर्ण देश में फैल जायेंगे। एक वर्ष-भर इस प्रकार परिभ्रमण कर फिर एक निश्चित तिथि पर ये लोग गोरक्षधाम पहुँचेंगे।

"सब वैरागियों को यहाँ कुम्भ पर मैंने आमन्त्रित किया था। सब पहुँच गये हैं। यहीं से मैं इनको इनकी दिशा में भेज दूँगा।"

शिवकुमार ने पूछा, "ये लोग आगामी वर्ष कब तक गोरक्षधाम में एकत्रित होंगे ?"

"इनको कहा गया है कि वैशाख की प्रथम तिथि को ये लोग यहाँ से प्रस्थान करेंगे। प्रत्येक को उसका मार्ग बता दिया गया है। अगले वर्ष चैत्र प्रतिपदा से ये सब गोरक्षधाम में एकत्रित होना आरम्भ कर देंगे।

"प्रथम वैशाख को वहाँ पर इनका सम्मेलन होगा।"

पिता-पुत्र में वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी बीच महाराज मणिपाल वहाँ आ गये। पण्डित शिवकुमार ने उनको बैठाया और फिर प्रश्नमयी मुद्रा में उनकी ओर देखा।

महाराज मणिपाल ने बैठते हुए स्वयं ही कहा, "मैं एक निवेदन करने आया हूँ।"

"किससे ?" पण्डित शिवकुमार ने पूछा।

"वैरागी महाराज से।"

बृहस्पति ने कहा, "आज्ञा कीजिये।"

"आप यदि हमारे साथ ही यहाँ से हस्तिनापुर चलें तो उत्तम होगा।"

"मेरा तो विदिशा और उज्जयिनी की ओर जाने का कार्यक्रम बना हुआ है।"

"मैं भी विदिशा जाने का विचार कर रहा हूँ। महाराज गजेन्द्रपाल ने मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपत्नीक आमन्त्रित किया हुआ है।"

आनन्द वृहस्पति विचार करने लगा कि उसका विचार तो हरिद्वार से चलकर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भ्रमण करते हुए विदिशा जाने का था। अब यदि वह इनके साथ रथ में जायेगा तो एक मास की यात्रा पाँच-छः दिन में ही पूर्ण हो जायेगी। वह कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था। उसने अपने पिता से पूछा, "गुरु जी! आप इसमें क्या सम्मति देते हैं?"

"यह तो तुम्हारे अपने ही विचार करने की बात है। फिर महाराज से मैं पूछना चाहता हूँ कि वे आनन्द वृहस्पति को किस उद्देश्य से आमन्त्रित कर रहे हैं?"

"प्रयोजन तो कोई विशेष नहीं है। हमारी महारानीजी का आग्रह है कि वैरागीजी को यहाँ से रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर ले जाया जाए। इस प्रकार जाने से जितने दिन की उनकी वचत होगी उतने दिन तक हमें हस्तिनापुर में इनकी सेवा का सुअवसर प्राप्त हो जायेगा।

"वहाँ नित्य सायंकाल इनके प्रवचन की व्यवस्था हो जायेगी। इस प्रकार हस्तिनापुर के शिष्ट परिवारों के जनों को कुछ तो दिशा-दर्शन होगा।"

आनन्द बोला, "यह कार्य तो मेरी अपेक्षा गुरुजी महाराज और अधिक अच्छी तरह कर देंगे।"

"हमारी महारानीजी को आपकी वाणी में अधिक रस प्राप्त हुआ है।"

वृहस्पति पुनः अपने पिता का मुख देखने लगा। शिवकुमार का विचार तो हरिद्वार से ही रामेश्वर के पास कौशाम्बी जाने का था। दोनों पति-पत्नी ने यह कार्यक्रम बनाया हुआ था।

पण्डित शिवकुमार ने जब वृहस्पति को अपनी ओर प्रश्नमयी मुद्रा में देखा तो कहा, "आनन्द! मैं और तुम्हारी माता तो यहाँ से सीधे कौशाम्बी जाने का विचार कर रहे हैं। मैं तुम्हारी माताजी को वहाँ छोड़कर काशीजी चला जाऊँगा। वहाँ किसी संन्यासी से दीक्षा लेकर संन्यास ले लूँगा।

"तुम्हारी माताजी जब तक चाहेंगी अपने भाई के पास रह लेंगी और उसके बाद वे सूर्यकुमार के पास आ जायेंगे। किन्तु इसमें अभी समय लगेगा।"

"मैं सोच रहा हूँ, मैं अभी महारानीजी के साथ हस्तिनापुर जाऊँगा। वहाँ एक पखवारा रहकर मैं विदिशा चला जाऊँगा।"

मणिपाल ने कहा, "हम लोग भी विदिशा जाने वाले हैं। आप हमारे साथ ही विदिशा चलियेगा।"

इस प्रकार वार्तालाप समाप्त हुआ और महाराज अपने खेमे में गए तो आनन्द भी वहाँ से अपने डेरे पर चला गया।

चन्द्रमुखी उनका वार्तालाप सुन रही थी। उनके जाने पर वह बोली, "यह कार्यक्रम कुछ ठीक नहीं बना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों, क्या दोष है इसमें ?"

चन्द्रमुखी अपने मन की बात बताती हुई कहने लगी, "आज भोजन के समय जब-जब भी मेरी दृष्टि महारानी पर जाती थी तब-तब मैंने उनको बृहस्पति की ओर मुग्ध दृष्टि से देखते पाया था। मुझे सन्देह हो रहा है कि वह उस पर आसक्त हो गई है। सम्भव है वह हरिद्वार से हस्तिनापुर के मार्ग में ही अवसर मिला तो अन्यथा हस्तिनापुर में जाकर उससे सम्बन्ध स्थापित करना चाहेगी। यह मुझे अशुभ लक्षण दिखायी दिया है।

"महाराज मणिपाल के कोई सन्तान नहीं है। इससे भी मुझे इसके पूर्वजों की स्मृति आने लगी है। उन महिलाओं के चरित्र भी कुछ ऐसे ही थे।"

शिवकुमार एक बार तो यह सुनकर कुछ चिन्ता का-सा अनुभव करने लगा था, किन्तु क्षण-भर में ही उसने आँख मूँद और फिर खोलकर कहा, "मुझे बृहस्पति पर विश्वास है। पाँच वर्ष तक यह मृदुला के साथ रहता हुआ भी इस दिशा में विचार नहीं कर सका था। अब भी उससे मैं यही आशा करता हूँ। वह ऐसा कोई व्यवहार नहीं करेगा जो उसके और हमारे लिये घातक हो।"

यद्यपि इससे चन्द्रमुखी पूर्णतया आश्वस्त नहीं हुई थी, फिर भी बृहस्पति के विषय में अपने पति की धारणा सुनकर वह चुप रही।

: १० :

कुम्भ पर्व से एक दिन पूर्व मगध-नरेश कुमारगुप्त पण्डित शिवकुमार से मिलने के लिए आया। उसने कहा, "हमें विदित हुआ है कि पर्व-स्नान के अवसर पर कल नागा साधुओं और वैरागियों में डटकर युद्ध होने वाला है।"

"इसका कारण ?"

"उनमें विवाद है कि दोनों गुट सूर्योदय से पूर्व पहले स्नान करना चाहते हैं। कोई भी आगे-पीछे करने के लिए उद्यत नहीं है। मेरे गुप्तचरों ने सूचना दी है, दोनों ही शिविरों में भाले, बरछे, छुरियाँ, तलवार आदि सजाये जा रहे हैं।"

"तो आप क्या चाहते हैं ?"

"उस दिन जो वैरागी आपको गुरुजी कह रहा था, वह इसमें सहायक हो सकता है।"

"ठीक है, मैं उससे मिलकर आपको सूचना दूँगा।"

"हमारे यहाँ आने का यही प्रयोजन था।"

मगध-नरेश गया तो शिवकुमार भी उठकर वैरागी मठ की ओर चला गया। आनन्द के समीप पहुँचने में विलम्ब अथवा कठिनाई नहीं हुई। ज्यों ही पण्डित शिवकुमार के आने की सूचना भीतर गई कि आनन्द स्वयं दौड़ता हुआ आकर अपने पिता के चरणस्पर्श करता हुआ बोला, "गुरुजी! किस प्रयोजन से कष्ट किया है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कहीं एकान्त में बैठकर बात करेंगे।"

"भीतर चलिये, मैं महन्तजी से भी आपका परिचय करा देता हूँ। वे कल ही यहाँ पधारे हैं।"

आनन्द पिता का मार्गदर्शन करता हुआ मठ के मुख्य भवन की ओर ले चला। भवन के एक आगार में महन्त सांवलदास वैरागी विराजमान था। वह महन्त बृहस्पति का बहुत सम्मान करता था। जब महन्त ने एक अन्य ओजस्वी व्यक्ति के साथ बृहस्पति को आता देखा तो उठकर स्वागत करने के लिए द्वार पर आ गया।

उसने पण्डित शिवकुमार को 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद दिया और फिर उन दोनों को भीतर अपने स्थान पर ले गया। वहाँ पहुँचकर महन्त ने पूछा, "आनन्द! श्रीमान् का परिचय ?"

"भगवन् ! ये इस शरीर के जनक हैं। इस शरीर में जो जीवात्मा है, उसको ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु हैं। इनकी ही कृपा से मुझे ऋग्वेद का ज्ञान हो पाया है और वर्तमान स्थिति प्राप्त करने में भी इनका प्रयत्न सहायक हुआ है। इनका स्वयं का भी अभ्यास चरम स्थिति का है।"

महन्तजी ने समीप रखी घण्टी बजाई तो एक महन्त दौड़ता हुआ सामने आकर खड़ा हो गया।

महन्तजी ने कहा, "ऊष्ण दुग्ध और मोदक लाओ।"

सेवक के जाने से पूर्व ही शिवकुमार ने हाथ जोड़कर कहा, "नहीं भगवन् ! मैं भोजन कर चुका हूँ। इस समय तो मैं उद्देश्य विशेष से आया हूँ। यदि आप सुन लें तो कृपा होगी।"

"हाँ, आज्ञा कीजिये।"

"मुझे विदित हुआ है कि पर्व-स्नान के समय आपके मठ के वैरागियों और नागा साधुओं में पहले स्नान करने के विषय पर परस्पर झगड़ा होने की सम्भावना है ?"

"हाँ, परन्तु इसमें कारण है।"

"क्या ?"

"हमारी संख्या बहुत अधिक है। हमने सूचना भेजी थी कि दूसरे मठों वाले सत्य हृदय से स्नान का समय निर्धारित कर लें तो हम दिन के द्वितीय प्रहर में स्नान कर लेंगे; परन्तु दूसरे मठों से समाचार आया है कि वे परस्पर कोई समझौता नहीं कर सकें। मुझे जब यह सूचना मिली तो मैंने उनको धमकी-भरा सन्देश भिजवा दिया है कि यदि आप लोग परस्पर कोई प्रबन्ध नहीं कर पाये तो फिर दिन के एक प्रहर तक हमारे दस-बारह सहस्र वैरागी पहले स्नान करेंगे। उस समय वे किसी अन्य को स्नान नहीं करने देंगे। जो हठ करेगा उसको सीधे स्वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मार्ग पर भेज दिया जायेगा।"

शिवकुमार ने पूछा, "महाराज ! जो लाखों गृहस्थी स्नान करने के लिए आये हैं, उनका क्या होगा ?"

"यह तो वे मूर्ख साधु बतायेंगे जो परस्पर किसी प्रकार का समझौता नहीं कर पा रहे हैं।"

Central Library
167886
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

"मेरा एक सुझाव है।"

"बताइये।"

"वैरागी स्वयमेव घोषणा कर दें कि वे तृतीय प्रहर स्नान करेंगे, सूर्योदय पूर्व से आरम्भ कर द्वितीय प्रहर तक गृहस्थियों को स्नान करने की सुविधा दी जाती है। तदुपरान्त द्वितीय प्रहर के अन्त तक साधुगण स्नान करेंगे। तदनन्तर वैरागी स्नान करेंगे और फिर वे वैरागी, जो उस समय तक गृहस्थों की रक्षा के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे, स्नान करेंगे।

"आज सायंकाल चतुर्थ प्रहर में एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया जा रहा है ! उसमें साधुओं का प्रबन्ध वैरागी करेंगे। उस सभा से मैं देश की संस्कृति की योजना का आरम्भ करना चाहता हूँ। वैरागी आनन्द बृहस्पति भी उसमें अपना भाषण देंगे। उनका भाषण पहले संस्कृत में होगा, फिर प्राकृत में और फिर पाली भाषा में।"

"आप तो हमसे बहुत त्याग की आकांक्षा कर रहे हैं।"

"जी हाँ। उसका कारण यह है कि आगामी बारह वर्ष तक आपके वैरागी भारत के जन-मानस में मानवता का प्रचार करने के लिए जाने वाले हैं। आज का किया हुआ यह त्याग सम्पूर्ण देश में आपके तथा आपके वैरागियों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करेगा।"

यह बात महन्तजी की समझ में भली प्रकार आ गयी। उसने आनन्द की ओर देखा। आनन्द ने कहा, "हम तो ऐसा कर देंगे, किन्तु अन्य मठ वाले परस्पर लड़ पड़ेंगे।"

"ठीक है, उनको परस्पर लड़ने दें। उस अवसर पर आपके वैरागी उन लड़ने वालों में न होकर गृहस्थों की रक्षा के लिए तैयार होंगे।"

"यह कैसे होगा ?"

"आप मेरे साथ नागा और गिरियों के मठों में चलिये। हम उनसे बात करके देखते हैं।"

महन्त ने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा, "हाँ, जाकर देखो। यदि किसी प्रकार का समझौता हो सकता है तो अच्छा ही है।"

निश्चय होने पर शिवकुमार बृहस्पति को लेकर पहले अघोरियों के मठ में गया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि नागा और अघोरी परस्पर बात कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु वे किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पा रहे थे। जब यह पहुँचे तो वे सब इनका मुख देखने लगे।

शिवकुमार ने बैठते हुए कहा, "मैं जनता का प्रतिनिधि हूँ और आप लोगों से यह कहने के लिए आया हूँ कि स्नान करने का सर्वप्रथम अधिकार गृहस्थों का है।"

"ऐसा क्यों ?" नागाओं ने पूछा।

"इसलिये कि गृहस्थ ही पूर्ण साधु समाज का पालक है।"

"वे हम पर कोई एहसान करते हैं ? पालना करके तो वे अपने लिये स्वर्ग का द्वार खोलते हैं।"

"भगवन् ! इस समय यहाँ पर दस लाख गृहस्थ स्नान करने के लिए आये हुए हैं। वे चाहते हैं, उनको स्नान करने का अवसर पहले मिले।"

"यह नहीं हो सकता।" नागा साधु ने कहा।

शिवकुमार ने अपनी योजना गिरियों के महन्त को बतायी। उसने कहा, "सामान्य गृहस्थ जो यहाँ कुम्भ पर्व पर स्नान करने के लिए आये हुए हैं, वह प्रथम प्रहर में गंगाजी में स्नान करना चाहते हैं। उस समय सूर्योदय से पूर्व दो प्रहर तक वैरागी साधु स्वयं स्नान किए बिना गृहस्थियों को स्नान का अवसर देंगे और दिलायेंगे।"

"परन्तु यहाँ के आयुक्त ने तो यह स्वीकृति प्रदान की है कि सूर्योदय से प्रथम प्रहर के अन्त तक साधु स्नान करेंगे और गृहस्थी दूसरे प्रहर स्नान करेंगे ?"

"इस स्वीकृति के उपरान्त हम परस्पर निश्चय कर रहे हैं कि पहले कौन स्नान करेंगे।"

"तो क्या निर्णय हुआ है ?"

"हम अभी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं।"

इस अवसर पर नागाओं के प्रतिनिधि ने कहा, "पिछले कुम्भ के अवसर पर हमने अपने एक सौ से भी अधिक साधुओं की बलि देकर यह अधिकार प्राप्त किया था। वैरागियों से उस अवसर पर डटकर युद्ध हुआ था और वे भाग गये थे। हम अपने उस अधिकार को खोना नहीं चाहते।"

"परन्तु अब तो वैरागियों की संख्या बहुत अधिक है। वे तो आप सबकी हत्या कर देंगे।

"आपके नागा साधुओं की संख्या कितनी है ?"

"पाँच सौ के लगभग है। सब लड़ने-मरने को तैयार हैं।"

"तो सुन लीजिये। यदि आप यह कहते हैं कि दिन के दूसरे प्रहर तक प्रतीक्षा नहीं करेंगे तो वैरागी साधु आपका मार्ग रोक लेंगे। वे यह मार्गावरोध अपने लिए नहीं करेंगे अपितु गृहस्थों के लिए करेंगे। वैरागी स्वयं तो दिन के चतुर्थ प्रहर में स्नान करना आरम्भ करेंगे और सूर्यास्त तक उनका स्नान चलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा।"

"देखो, तुम कौन हो, यह तो हम जानते नहीं; परन्तु स्नान तो सबसे पहले हम ही करेंगे। यदि किसी ने इसमें भी बाधा डाली तो रक्त की नदियां बहने लगेंगी।"

"यह नहीं चल सकता।" शिवकुमार ने कहा।

"यह आयुक्त की आज्ञा है।" नागा ने कहा।

"वह मूर्ख है। उसकी बात नहीं चल सकती।"

"तो किसकी चलेगी?"

"महाराजाधिराज कुमारगुप्त की। वे जैसी आज्ञा देंगे, वही होगा।"

"दे लें वे भी आज्ञा। कितने सैनिक लाये हैं अपने साथ?"

"यह तो हमारा रहस्य है। यह हम नहीं बतायेंगे। परन्तु आप सुन लीजिए, महाराजाधिराज की यह आज्ञा है कि प्रथम दो प्रहर तक गृहस्थ स्नान करेंगे। तृतीय प्रहर के आरम्भ से साधु-सन्त स्नान करना आरम्भ करेंगे। तृतीय प्रहर के उपरान्त वैरागी साधु स्नान करेंगे।"

अघोरी ने आनन्द से पूछा, "क्यों वैरागी! तुम इस मिट्टी के माधो की बात मान गये हो?"

आनन्द ने गम्भीर भाव से कहा, "यह तो हमारे महन्तजी का ही आदेश है। वे समझते हैं कि प्रथम स्नान करने का अधिकार गृहस्थों का ही है। महन्त जी चाहते हैं कि साधु-सन्त दूसरे प्रहर स्नान करें। हम वैरागी तो जनता के स्वर्गारोहण में सहायता मात्र करने वाले हैं। इसीलिए हम सबसे बाद में स्नान करेंगे।"

"परन्तु आपके महन्तजी की बात कौन मानेगा?"

"महाराजाधिराज तो मान गये हैं। हमारे पन्थ के सब वैरागी मान गये हैं। गृहस्थ इस सुविधा का उपयोग करेंगे, इसलिए वे भी मान गये हैं।"

शिवकुमार ने कहा, "महाराज! सायंकाल जन-समारोह में और सायंकाल की जन-सभा में यही घोषणा की जाने वाली है।

"शेष रही बात उन लोगों की जो नहीं मानेंगे। उनसे यह बात बलपूर्वक मनवा ली जायेगी।"

अघोरी कहने लगा, "इस आज्ञा को कोई नहीं मानेगा। गृहस्थी भी नहीं मानेंगे।"

"जो नहीं मानेगा, वह राजदण्ड का भागी बनेगा।"

नागा महाराज कहने लगे, "हम राजदण्ड को नहीं मानते।"

शिवकुमार उठ गया। उस समय गिरियों के प्रतिनिधि ने घोषणा करते हुए कहा, "हम दिन के तृतीय प्रहर स्नान करेंगे। हमारे महन्तजी का यह निर्णय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि उस समय जो भी हमारे साथ स्नान करना चाहेगा वह भी कर सकेगा।"

दिन के दूसरे प्रहर तक एक सौ से अधिक वैरागी ढोल बजा-बजाकर सम्पूर्ण क्षेत्र में इस प्रकार की घोषणा करते रहे।

उसी रात को तृतीय प्रहर बीतते-बीतते सभी साधुओं के मठों को चार सहस्र वैरागियों ने चारों ओर से घेर लिया। सभी वैरागी साधु शस्त्रास्त्र से सुसज्जित थे।

प्रातः-स्नान का समय होने पर केवल नागा साधुओं ने झगड़ा किया और उसके परिणामस्वरूप उनके मठ के सम्मुख युद्ध हुआ और उस युद्ध में दोनों ही पक्ष के पचास-साठ साधु हताहत हुए। इसके बाद सर्वत्र शान्ति रही।

रात का एक प्रहर रहते ही स्नानार्थी गृहस्थ पंक्तिबद्ध होकर स्नान के लिए स्नान-स्थल पर जाते और वहाँ स्नान कर गंगा माता को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित कर दूसरे मार्ग से वापस अपने-अपने स्थान को चले जाते थे। किसी को विदित ही नहीं हुआ कि वहाँ कहीं किसी प्रकार का कोई संघर्ष अथवा मार-पीट भी हुई है।

नागा साधु इससे स्वयं को पराजित और अपमानित अनुभव करने लगे। वे निर्धारित समय पर भी स्नान करने के लिए नहीं गये और उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया।

किन्तु इसके विपरीत गृहस्थों के मन में वैरागियों के प्रति बड़ी श्रद्धा-भावना जागृत हो गयी। वैरागियों ने इस प्रकार शान्ति-व्यवस्था बनाये रखी कि सारा स्नान का कार्य सहज ही सम्पन्न हो गया था।

शेष कार्यक्रम भी शान्तिपूर्वक और निर्धारित विधि के अनुसार ही सम्पन्न होता रहा। इस प्रकार यह पर्व-स्नान सम्पूर्ण हुआ।

पण्डित शिवकुमार अपनी पत्नी को साथ लेकर कौशाम्बी के लिए प्रस्थान कर गया। महाराज मणिपाल अपने पुरोहित के परिवार के साथ हस्तिनापुर को चल दिये।

महाराज मणिपाल ने आनन्द वृहस्पति और उसके दो साथियों के लिए एक पृथक् रथ की व्यवस्था कर दी थी। वह रथ भी उनके साथ हस्तिनापुर को चल दिया।

चार दिन की रथ-यात्रा के उपरान्त महाराज मणिपाल सदल-बल हस्तिनापुर पहुँच गये। सूर्यकुमार तो वहाँ पहुँचकर अपने ग्राम मंगला चला गया और आनन्द वैरागी तथा उसके साथियों के लिए राजप्रासाद में निवास की सुव्यवस्था कर दी गयी।

हस्तिनापुर पहुँचने के दूसरे दिन ही आनन्द वैरागी के प्रवचन की व्यवस्था हो गयी और उस समय उसका प्रवचन सुनने के लिए न केवल राजभवन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवासी अपितु हस्तिनापुर की जनता सर्वाधिक संख्या में वहाँ एकत्रित हो गयी थी।

इस प्रवचन का आयोजन राजप्रासाद के सभा भवन में किया गया था। वह स्थान छोटा पड़ गया था। इसीलिए राजप्रासाद के बाहर दूर-दूर तक बैठने की व्यवस्था करनी पड़ी। किन्तु जो लोग भवन से बाहर थे उनको प्रवचन सुनायी नहीं दिया। इसीलिए प्रवचन के उपरान्त वैरागीजी सभा भवन से बाहर आ गये। बाहर खड़ी भीड़ को दर्शन देने के साथ-साथ दो शब्द भी उनको आशीर्वाद के भी कहे। इस अवसर पर भी उन्होंने केवल अपने पंच-सूत्रीय कार्यक्रम को ही दोहराया।

प्रवचन के अवसर पर सूर्यकुमार भी उपस्थित था। प्रवचन समाप्त हुआ तो उसने आनन्द वैरागी से कहा, "मैंने महाराज से आधे दिन के लिए रथ माँग लिया है। आप उसमें बैठकर मंगला पधारिये। मध्याह्न के समय तक रथ आपको हस्तिनापुर वापस ले आयेगा।"

महारानी ने वैरागी मण्डली को अल्पाहार कराया और फिर वे मंगला के लिए प्रस्थान कर गये। मंगला पहुँचने में केवल एक घड़ी समय लगा। उनके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही सारा गाँव सूर्य भवन के बाहर अपने गाँव की महान् विभूति के दर्शन करने के लिए एकत्रित हो गया था।

चालीस वर्ष बाद ही वृहस्पति अपने गाँव में आया था। चालीस वर्ष पूर्व तो वृहस्पति केवल दस वर्ष का बालक मात्र था। आज उसकी आयु पचास वर्ष की थी। इस प्रकार न वह किसी ग्रामवासी को पहचानता था और न कोई ग्रामवासी ही उसको पहचानता था। तदपि अपनत्व की भावना तो मन में होती ही है।

उनके वहाँ पहुँचने पर आनन्द वैरागी का गाँव वालों ने स्वागत-सत्कार किया और वैरागीजी ने आशीर्वादस्वरूप उनको प्रवचन दिया।

इस प्रकार द्वार पर स्वागत-समारोह पूर्ण हो जाने पर सूर्य वृहस्पति को भवन के भीतर ले गया। वहाँ उसने अपने पूर्ण परिवार का परिचय कराया। सूर्य की पत्नी नीलप्रभा तो अपने पौत्र के साथ हरिद्वार गयी थी, किन्तु उसकी विधवा पुत्रवधू घर पर ही थी। उसको उसने मंगला पहुँचने पर ही देखा।

परिचय हो जाने के उपरान्त वृहस्पति ने सूर्य की पुत्रवधू से पूछा, "रत्ना बेटी! दिन-भर क्या करती रहती हो?"

"अपने सास-ससुर की सेवा में दिन बीतता है।"

"यह तो कोई विशेष बात नहीं। यह तो नित्य-कर्म है। इनके अतिरिक्त कुछ नैमित्तिक कर्म भी तो करने चाहिए। और कुछ नहीं तो तुम तो रामायण का ही पाठ कर लिया करो।"

सूर्य ने कहा, "महाराज! घर पर रामायण की कोई प्रति नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह कौन-सी बड़ी बात है ! राजकीय पुस्तकालय में जो प्रति है, किसी लिपिक से उसकी प्रति करवा लो।"

सूर्य ने अपनी पुत्रवधू से पूछा, "रत्ना बेटी ! यदि तुम पढ़ो तो एक प्रति तैयार करवा दूं ?"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। आनन्द ने कहा, "मैं महाराज से कहकर एक प्रति तैयार करवा दूंगा।"

इस प्रकार पारस्परिक वार्तालाप और स्वागत-सत्कार के उपरान्त वृहस्पति हस्तिनापुर लौट आया।

चन्द्रमुखी ने अपने पति के सम्मुख वृहस्पति के हस्तिनापुर जाने के सम्बन्ध में जो आशंका व्यक्त की थी, वह ठीक ही थी। उसी दिन मध्याह्न के भोजनोपरान्त महारानी सरस्वती ने वैरागी के हाथ में एक पत्र दे दिया। वृहस्पति ने उस पत्र को वहीं उसी समय पढ़ भी लिया।

पत्र का आशय यही था कि महारानी सरस्वती निस्सन्तान है और वह वैरागी जी से इसकी भिक्षा माँगती है।

वृहस्पति पत्र पढ़ ही रहा था कि उसी समय महाराज मणिपाल वहाँ पर पहुँच गये।

इस प्रकार सहसा महाराज को आया देख सरस्वती के मुख का रंग विवर्ण होने लगा। सौभाग्य से उस समय महाराज अपनी महारानी की ओर नहीं देख रहे थे। उसने वैरागी को पत्र पढ़ते देख पूछ लिया, "किसका पत्र है ?"

"किसी श्रद्धालु भक्त का। वह मुझसे मिलना चाहता है।"

इस उत्तर से सरस्वती के उड़ते प्राण वापस लौट आये। उसको प्रसन्नता हुई कि वैरागीजी ने न तो उसका नाम लिया और न पत्र में लिखी बात का ही उल्लेख किया। इससे वह प्रसन्न थी।

"तो भगवन् ! कब मिलेंगे इससे ?"

"मेरी इससे मिलने की इच्छा नहीं है।"

"ऐसा कौन दुर्भाग्यशाली है वह, जिस पर यह कुदृष्टि हो रही है ?"

"महाराज ! मैं किसी पर भी कुदृष्टि करने का अधिकारी नहीं हूँ। इसलिए इस भक्त पर भी मेरी कुदृष्टि नहीं है। मैं समझता हूँ कि इसका मनोरथ उससे मिले विना ही सम्पन्न हो जायेगा।"

सरस्वती भी यह वार्तालाप सुन रही थी। वह समझ नहीं पायी कि बिना मिले ही किस प्रकार उसका मनोरथ सिद्ध हो जायेगा। किन्तु महाराज के सम्मुख वह वैरागी से कुछ पूछ भी नहीं सकती थी। महाराज ने विषय बदलते हुए अपनी पत्नी को सम्बोधित कर कहा, "महारानीजी ! आप वैरागीजी से क्या याचना करने आयी हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती स्थिर हो चुकी थी। उसके पत्र की बात गुप्त ही रह गयी थी। महारानी बोली, "अन्तःपुर की महिलायें चाहती हैं कि स्वामीजी यदि एक-दो दिन महिलाओं के लिए पृथक् से प्रवचन की कृपा करें तो वे कृतकृत्य हो जायेंगी। कल की भीड़ में तो वे कुचली जाने वाली थीं।"

"क्यों, ऐसी कौन-सी अन्तःपुरवासिनी है जो महाराज का प्रवचन नहीं सुन पायी?"

"कल इतनी अधिक भीड़ थी कि अधिकांश महिलायें तो केवल दर्शन-मात्र ही कर पायीं, प्रवचन उनको सुनाई ही नहीं दिया।"

महाराज ने पूछा, "स्वामीजी से निवेदन किया है?"

इसका उत्तर वृहस्पति ने दिया, उसने कहा, "मैं यह चाह रहा हूँ कि एक-दो प्रवचन नगर के भीतर सत्यनारायण के मन्दिर में करवा दिये जायें तो सुविधा होगी। उनमें से एक केवल महिलाओं के लिए ही निर्धारित कर दिया जाए।"

महाराज ने भी इसके औचित्य को समझा।

महारानी इससे आशान्वित हो उठी। इसका उसने यही अभिप्राय ग्रहण किया कि स्वामीजी ने उसकी याचना को स्वीकार कर लिया है। इस कारण वह आवश्यकता से कुछ अधिक ही प्राप्त करने की आशा करने लगी थी।

इसकी कल्पना कर तो वह प्रफुल्लित ही हो उठी और उसी प्रफुल्लता में वह अपने आगार को चल दी।

यह वार्तालाप भोजनकक्ष में ही हुआ था। भोजन के समय तो महाराज भी वहाँ पर विद्यमान थे। भोजनोपरान्त वे हाथ धोने और कुल्ला करने गये तो महारानी ने अवसर पाकर वह पत्र स्वामीजी को पकड़ा दिया था।

भोजनोपरान्त महाराज मणिपाल विदिशा का कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए वैरागीजी के साथ उनके आगार में चल दिये।

सरस्वती अपने आगार में पहुँच कल्पना करने लगी, किस प्रकार चोरी-चोरी उसकी आकांक्षा की पूर्ति हो सकती है।

उस दिन सायंकाल जब प्रवचन पूर्ण हुआ तो श्रोताओं में से एक व्यक्ति खड़ा होकर कहने लगा, "हमारा निवेदन है कि वैरागीजी महाराज को एक दिन रथ पर बैठाकर समीप के सभी गाँवों में परिभ्रमण करा दिया जाए और उस अवसर पर वैरागीजी महाराज अपना संक्षिप्त प्रवचन भी करते जाएँ तो इससे अधिकाधिक लोगों तक इनका सन्देश पहुँच जायेगा।"

वृहस्पति अपने प्रवचन में अपने पंच-सूत्रीय कार्यक्रम का ही उल्लेख करता था। कुछ तो उसके प्रवचन का ढंग और कुछ कार्यक्रम की सार्थकता के कारण वह श्रोताओं के मन में बैठ जाता था।

उस श्रोता की बात पर विचार किया गया और यह निश्चय कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया कि समीप के पाँच-छः गाँवों में स्वामीजी का प्रवचन करा दिया जाए। इसके अतिरिक्त महारानी सरस्वती के सुझावानुसार हस्तिनापुर के मध्य में स्थित रघुनाथजी के मन्दिर में भी एक समय महिलाओं के सम्मुख प्रवचन की योजना बना दी गई।

इस प्रकार उस रात बहुत देर तक वार्तालाप चलता रहा। यह वार्तालाप भोजन से पूर्व आरम्भ हुआ था और भोजनोपरान्त भी बहुत देर तक चलता रहा था।

महाराज मणिपाल को आशंका थी कि स्वामीजी के पंच-सूत्रीय कार्यक्रम का हरिद्वार में बनी राजनीतिक समिति से किस प्रकार का समन्वय सम्भव होगा।

महाराज का समाधान करते हुए आनन्द स्वामी ने कहा, "मेरी योजना का तो केवल एक ही उद्देश्य है। मेरा उद्देश्य है कि भारत के जन-जन को मैं समझा दूँ कि हिमालय से समुद्रपर्यन्त सब भारतवासियों को यह विश्वास हो जाए कि वे सब एक ही परिवार के घटक हैं।"

अगले दिन प्रातःकाल के अपने अभ्यास से आनन्द वृहस्पतिजी महाराज अपने प्रातःकालीन अभ्यास से निवृत्त हुए ही थे कि सेविका के साथ सरस्वती स्वयं एक गिलास दूध और मिष्ठान्न लेकर उपस्थित हो गई। नित्य ही इस प्रकार उस समय उनको दूध और मिष्ठान्न मिलता था, किन्तु महारानी स्वयं नहीं लाती थी। आज महारानी स्वयं लेकर उपस्थित हुई थी।

स्वामीजी ने महारानी को आशीर्वाद दिया और सेविका के हाथ से दुग्ध-पात्र तथा मिष्ठान्न लेकर उन्होंने अल्पाहार करना आरम्भ कर दिया। सेविका अल्पाहार देकर चली गई। महारानी ने उसको कह दिया था कि वह कुछ कालोपरान्त आकर खाली पात्र ले जाए।

सेविका गई तो सरस्वती वैरागीजी के चरणों में बैठकर पूछने लगी—"मेरे पत्र का उत्तर क्या है?"

"आपको उत्तर मिला नहीं?"

"उस समय तो आपने यही कहा था कि आप याचना करने वाले से मिलना नहीं चाहते। उसका अभिप्राय मैंने तो यही समझा था कि आप महाराज को पत्र में लिखी बात के विषय में बताना नहीं चाहते, इसलिये आपने ऐसा कह दिया है।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं थी। वह मेरे मन की वास्तविक प्रतिक्रिया ही थी। आपसे मैं मिलना नहीं चाहता था तदपि आपकी याचिका स्वीकार कर ली गई थी। इसका मैंने उस समय संकेत भी दे दिया था।"

"आपका अभिप्राय मैं समझ नहीं पाई, क्योंकि बिना मिले तो याचना की पूर्ति होना सम्भव नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं अपने ज्ञानानुसार कह सकता हूँ कि आपकी इच्छा की पूर्ति अवश्य होगी। आज से नौ मास के बाद आपके घर में सूर्य के समान एक राजकुमार का जन्म होगा।"

सरस्वती समझी नहीं और आजकल तो महाराज भी उसकी संगति में रहते नहीं थे। न केवल इतना अपितु बहुत दिनों से इन दोनों में परस्पर संगति नहीं बैठ रही थी। पहले तो कुम्भ मेले में रहे और वहाँ से लौटे तो स्वामीजी साथ आये थे अतः उनसे वार्तालाप करते हुए काफी रात बीत जाया करती थी और प्रातःकाल उठना भी जल्दी ही होता था।

इस वातावरण में सरस्वती समझ नहीं पा रही थी कि उसकी इच्छा की पूर्ति किस प्रकार हो सकेगी। यह तो था कि वह इन दिनों सोते-जागते, उठते-बैठते निरन्तर वैरागीजी को अपने मन में बसाये रहती थी। किन्तु उससे तो उसकी तृप्ति होती नहीं थी। विपरीत इसके उसकी लालसा और बढ़ जाया करती थी। इस प्रकार वह पुनः वैरागीजी के स्वप्न में लीन हो जाया करती थी।

विगत रात्रि को उसको स्वप्न में ही स्वामीजी की संगति प्राप्त हो गई थी। उसके बाद तो उसकी मनोदशा विचित्र हो गई। उस संगति ने अग्नि में घी का काम कर दिया था।

इस प्रकार के विचारों में लीन वह स्वामीजी के सम्मुख बैठी थी। सरस्वती को गम्भीर विचारों में मग्न देखकर स्वामीजी ने कहा, "महारानीजी ! आप चिन्ता मत करिये। मुझे आपका भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको राजमाता का पद अवश्य ही प्राप्त होगा।"

"परन्तु भगवन् ! मैं तो कुछ और भी चाहती थी।"

"वह कुछ क्या है, इस विषय में तो आपने पत्र में लिखा नहीं था। जो आपने लिखा था, उसके विषय में ही मैंने निवेदन किया है।"

"मैंने सुना था कि आप गृहस्थ पालन कर चुके हैं ?"

"कर तो चुका हूँ, परन्तु आपने किससे सुना था ?"

"राजपुरोहितजी की पत्नी नीलप्रभा से। इस कारण मैं समझी थी, जिस की मैंने याचना की थी उससे पूर्व कुछ कर्म होगा तभी तो उसकी पूर्ति हो सकेगी। वह जब नहीं हुआ तो फिर मनोकामना किस प्रकार पूर्ण हो जायेगी ?"

"आपको परिणाम से अभिप्राय है। कर्म हो अथवा न हो। मैंने उस कर्म के बिना ही आपकी मनोकामना पूर्ण करने का प्रबन्ध कर दिया है।"

"परन्तु भगवन् ! उसका रसास्वादन तो किया नहीं गया, फिर परिणाम का भरोसा किस प्रकार हो सकता है ?"

"रसास्वादन किया क्यों नहीं ? आप उसे स्वप्न समझती रही हैं। आपने स्वप्न समझा है तो वह भी ठीक ही है। क्या आप इस पूर्ण जीवन को भी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न के समान ही नहीं मानतीं ? जीवन लम्बा स्वप्न है और आपने जो स्वप्न देखा है वह उसका लघु रूप है। परन्तु यह परिणाम उस रसास्वादन का परिणाम नहीं है, यह तो ईश्वरीय कृपा का परिणाम है।"

आनन्द अल्पाहार कर रहा था और महारानी उसके सम्मुख भूमि पर बैठी थी। स्वामी ने जब उसको इस प्रकार की बात कही तो वह उस पर विचार करने लगी थी। वह उनकी बात का अभिप्राय समझने का यत्न कर रही थी।

स्वामीजी का अल्पाहार समाप्त हुआ तो उन्होंने अपने थैले में से एक पुस्तक निकाली और उसको पढ़ना आरम्भ कर दिया। महारानी समझ गई कि अब अधिक बात करने का कोई लाभ नहीं है। वह उठकर अपने आगार को चली गई।

उसके जाने के उपरान्त सेविका आई और अल्पाहार के बर्तन उठाकर ले गई।

आनन्द शिवपुराण का अध्ययन कर रहा था। हस्तिनापुर के पुस्तकालय से उसने उस ग्रन्थ को मँगवाया था और आज पढ़ना आरम्भ किया था।

आनन्द को अध्ययन करते हुए आधी घड़ी भी नहीं हुई होगी कि मणिपाल ने आकर प्रणाम किया और पूछने लगा, "भगवन् ! किसी वस्तु अथवा सेवा की आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजिये।"

"बस, सब आनन्द है। अब आप यह बताइये कि विदिशा जाने का कब का कार्यक्रम बन रहा है ?"

"हरिद्वार में महाराज गजेन्द्र ने कहा था कि विदिशा पहुँचने पर वे वहाँ की स्थिति से मुझे अवगत करायेंगे।"

"कैसी स्थिति ?"

"वहाँ दो योजनाएँ चल रही हैं। एक तो बृहत् ब्राह्मण सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। यह योजना तो हमारे हरिद्वार जाने से पूर्व ही बन गई थी। दूसरा आयोजन उन सब राज्यों का एक सम्मेलन है जिन्होंने मगध से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था।"

"इन सम्मेलनों का निर्णय कब तक हो जायेगा ?"

"इस सम्बन्ध में कुछ कह पाना कठिन है।"

"मैं अधिक समय तक यों ही अनिश्चित रहना कुछ विचित्र-सा समझ रहा हूँ।"

"तो फिर मेरा निवेदन है कि एक सप्ताह तक प्रतीक्षा कर लेते हैं। यदि तब तक कोई निश्चयात्मक बात नहीं हुई तो फिर आप जिस ओर भी जाना चाहें, मैं उसकी व्यवस्था कर दूँगा। आपको रथ मिल जायेगा।"

आनन्द को इससे सन्तोष हो गया। जो विशेष बात हुई, वह यह कि उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद फिर कभी महारानी सरस्वती आनन्द से एकान्त में मिलने के लिये नहीं आई। आनन्द के प्रवचन तथा प्रजा से मिलने के कार्यक्रम योजनानुसार शान्ति-पूर्वक चलते रहे।

एक सप्ताह के उपरान्त स्वामीजी का हस्तिनापुर से जाने का निश्चय हो गया। जिस दिन स्वामीजी को वहाँ से जाना था उससे एक दिन पहली सायं-काल के समय प्रवचन के उपरान्त महाराज मणिपाल अपने पुरोहित सूर्यकुमार को लेकर स्वामीजी के पास आया। उस समय आनन्द प्रवचन के उपरान्त अपने कक्ष में विश्राम कर रहा था।

दोनों भीतर पहुँचे और स्वामीजी के चरणस्पर्श करके सामने बैठ गये।

उनको आया देख आनन्द उठकर बैठ गया। जब से आनन्द हस्तिनापुर आया था, सूर्यकुमार उस दिन के बाद आज ही मिलने आया था। आज एक सप्ताह बाद उसको आया देख स्वामीजी ने एक प्रकार से विस्मय ही व्यक्त किया।

सूर्य स्वामीजी का आशय समझ गया था। उसने कहा, "अभी-अभी विदिशा से सूचना आई है कि विदिशा में होने वाले ब्राह्मण सम्मेलन के अवसर पर विदिशा-महाराज वहाँ प्रचाररत सभी वैरागियों को विदिशा से बाहर चले जाने के लिये कह रहे हैं।"

"ऐसा क्यों ?"

"उनको भय है कि वैष्णव सम्प्रदाय वाले ब्राह्मणों के इस सम्मेलन में वैरागी बाधा उपस्थित करेंगे।"

"तो क्या वैष्णवों और शैवों में झगड़ा चल रहा है?"

"झगड़ा तो नहीं, किन्तु गिरि सम्प्रदाय के साधु और गृहस्थ आपके वैरागी सम्प्रदाय के विपरीत आन्दोलन कर रहे हैं।"

"परन्तु हमारे आन्दोलन में तो शिव-उपासना का संकेत भी नहीं है ?"

"संकेत तो है। आपने निर्देश दिया है कि सब लोग रुद्राक्ष धारण करें। रुद्राक्ष तो शिव के उपासकों का चिह्न है।"

"ॐ का जाप किस सम्प्रदाय का चिह्न है ?"

"ॐ तो साम्प्रदायिक शब्द नहीं है; परन्तु रुद्राक्ष और तुलसी तो सम्प्रदाय विशेष के चिह्न माने जाते हैं। इसी का वे लोग विरोध कर रहे हैं।"

"किन्तु यह तो अब रुक नहीं सकता। हमारे वैरागी तो अब अपने कार्य-क्षेत्र में अपना कार्य आरम्भ कर चुके हैं। आगामी मास तक तो वे सारे देश में फैल जायेंगे।"

"बस, इसीलिये गिरि सम्प्रदाय के लोग आपसे मिलना नहीं चाहते। वे इस में कोई लाभ नहीं देख रहे हैं। आगामी पूर्णिमा के दिन उन्होंने वहाँ सम्मेलन आयोजित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूर्ण ब्राह्मण समाज वैरागियों से रुष्ट हो गया है।"

"किसलिये ?"

"इसलिये कि आपने समाज के पूज्य संन्यासियों की अपेक्षा साधारण गृहस्थों को प्रश्रय दिया है, इससे हमारी संस्कृति का अपमान हुआ है।"

आनन्द समझ गया कि यह हरिद्वार में स्नान की घटना का उल्लेख कर रहा है। उसने उसके आरोपों का उत्तर देना उपयुक्त नहीं समझा।

कुछ विचार कर आनन्द ने कहा—"यदि महाराज मुझे अपना शीघ्रगामी रथ प्रदान करने की कृपा करें तो मैं कल यहाँ से चलकर शिवपुरी में पल्ल राजा के विदिशा जाने से पूर्व ही पहुँच जाऊँगा और उनसे भेंट हो जायेगी।"

मणिपाल ने प्रश्न किया, "आप उनको क्या कहेंगे ?"

"वही, जो सप्ताह-भर यहाँ रहकर आपको कहा है।"

"मैं भी तो द्विविधा में फँस गया हूँ। समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ ?"

"महाराज! मेरा जो मत था वह मैंने आपको बता दिया है। आपका जो विचार हो आप उसके अनुसार करिये। किसी के कहे अनुसार व्यवहार करना उचित नहीं।"

"मेरा विचार तो यही है कि मैं इस राजसी सम्मेलन में उपस्थित होकर उन को पूर्ण देश के संगठन में सम्मिलित होने के लिए कहूँ।

"मैं अपने पुरोहितजी को साथ लेकर जा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि ब्राह्मण सम्मेलन में गिरियों के प्रस्ताव को अमान्य कर दिया जाए।"

"ठीक है, आप जो उचित समझते हैं वह करिये। यत्न करना मनुष्य का अधिकार है। उसका फल तो ईश्वराधीन ही है।"

"तो आप कल यहाँ से किस समय जाना चाहते हैं जिससे कि तदनुसार व्यवस्था की जा सके ?"

"मैं सूर्योदय से पूर्व ही यहाँ से चल देना चाहता हूँ।"

"ठीक है, उससे पूर्व ही एक रथ और उसका सारथी आपकी सेवा के लिए तत्पर रहेगा।"

इस प्रकार बात समाप्त हो गई। कार्यक्रमानुसार दूसरे दिन प्रातःकाल अपने दो साथियों को लेकर आनन्द शिवपुरी के लिये चल दिया।

: ११ :

आनन्द बृहस्पत्ति ने यद्यपि महारानी सरस्वती को आश्वस्त कर दिया था कि यथासमय नौ मास उपरान्त उसके पुत्र उत्पन्न होगा। तदपि महारानी को इसका विश्वास नहीं हो रहा था। उसके बाद एक बात यह हुई कि उस रात्रि के बाद उसको आनन्द स्वामी के स्वप्न दीखने बन्द हो गये थे।

जिस दिन प्रातःकाल आनन्द ने महारानी सरस्वती को आश्वासन दिया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि आज से नौ मास बाद उसकी कोख से कमल समान राजकुमार जन्म लेगा, उस दिन वह खिन्न-सी ही रही थी, क्योंकि उसकी आकांक्षा की वैरागीजी ने पूर्ति नहीं की थी। उसी खिन्नता में उस रात वह सोने के लिये भी गई थी। किन्तु रानी को आश्चर्य हुआ कि उस रात वह गहन निद्रा में सोई और उस रात उसको कोई स्वप्न भी नहीं आया।

प्रातःकाल जब वह सोकर उठी तो उसको कुछ ऐसी अनुभूति-सी हुई जैसे मानो वह पति के सहवास से तृप्त होकर उठी हो। उससे पहले दिन भी उसको कुछ इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। परन्तु अपने मन की खिन्नावस्था के कारण उसको उसका ज्ञान नहीं रहा था।

उस दिन प्रातःकाल रात्रि की गहन तथा स्वप्नरहित निद्रा से उठी तो उसका चित्त शान्त और विषयों से रहित था। अपनी ऐसी अवस्था देखकर जहाँ उसको सन्तोष हो रहा था, वहाँ उसको विस्मय भी हो रहा था। आज उसको वैरागीजी पर किसी प्रकार का रोष भी नहीं था। तदपि सरस्वती वैरागीजी से मिलने नहीं गई। यहाँ तक कि उसके बाद जब तक वैरागी वहाँ रहे वह उनसे मिलने के लिये गई ही नहीं।

वैरागीजी जिस दिन विदा होने वाले थे उस दिन प्रातःकाल महाराज मणिपाल महारानी के शयनागार में गया। उसने कहा, "वैरागीजी आज विदा हो रहे हैं।"

"ठीक है।" महारानी का संक्षिप्त उत्तर था।

"उनके दर्शन नहीं करोगी ?"

"इच्छा नहीं हो रही।"

"उन्हें यहाँ आने का निमन्त्रण तो तुमने ही दिया था ?"

"ठीक है। अब आप उनको मेरा प्रणाम कह दीजियेगा। मैं अभी दो-ढाई घड़ी और सोना चाहती हूँ।"

महाराज इसका अभिप्राय नहीं समझ सके। उन्होंने अधिक आग्रह भी नहीं किया और स्वयं उनको विदा करने के लिये द्वार पर चले गये।

महाराज जब महारानी के शयनागार से निकलकर महल के द्वार की ओर जा रहे थे तो महारानी के इस विचित्र व्यवहार पर विचार करने को विवश-से हो गये। उनको विस्मय हो रहा था। तदपि उस समय इतना अवसर नहीं था कि विस्तार से विचार किया जा सके।

परन्तु जब वैरागी विदा हो गये तो वे अपने प्रासाद में लौट आये। विदाई के समय सूर्य भी वहीं था। वह भी महारानी के न आने से विस्मय कर रहा था। इससे पूर्व उसने अनुभव किया था कि महारानी तो वैरागीजी के चारों ओर तितली की भाँति मण्डराती रहती थीं। आज विदा करते समय वह प्रणाम करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं आई थीं।

महाराज मणिपाल को जब यह अनुभव हुआ कि सूर्य न जाने क्या सोचे अतः उसका समाधान करते हुए उसने कहा, "महारानी ने वैरागीजी की विदाई के लिये एक सहस्र स्वर्ण भेज दिया था।"

"आपने तो बहुत कुछ दे दिया है।"

"पुरोहितजी! आप इसे बहुत समझते हैं! उन जैसे विद्वान् और प्रतिभावान पुरुष के लिये तो यह कुछ भी नहीं है।"

"महाराज! मैंने तो केवल इस दृष्टि से कहा है कि पूर्ण समाज इस आन्दोलन का विरोध करने वाला है।"

"किन्तु मैं तो विरोध करने वालों में नहीं हूँ।"

"निजी रूप में तो मैं भी इनके विरोध में नहीं हूँ। ये मेरे बड़े भाई होने से वैसे भी मेरे पूज्य हैं। तदपि समाज के प्रवाह की बात का ही मैंने उल्लेख किया है।"

"विदिशा के गिरि ब्राह्मण जो विचार कर रहे हैं, मैं उसको सर्वथा गलत मानता हूँ।"

"इसका विचार तो विदिशा में चलकर ही किया जा सकता है। मैं भी अब समझ रहा हूँ कि वैरागियों का वह व्यवहार उचित नहीं था। मैं भी गृहस्थी हूँ। मैं समझता हूँ कि साधु-सन्त जाति के शीर्ष स्थान पर हैं। इन्होंने एक प्रकार उनका अपमान किया है।"

"अपने-अपने सोचने का ढंग है।" महाराज ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

सूर्य ने विषय परिवर्तन कर पूछ लिया, "महाराज! विदिशा के लिये कब प्रस्थान करने का विचार है?"

"मैं कुछ और ही सोचने लगा हूँ।"

"क्या?"

"मैं विदिशा जाना स्थगित करना चाहता हूँ।"

"क्यों महाराज!"

"मुझे ऐसा लग रहा है कि विदिशा वाले इस निमित्त से मागधियों के विरुद्ध षड्यन्त्र की योजना बना रहे हैं। मैं इस झगड़े में तटस्थ रहना चाहता हूँ।

"यह तो ठीक है कि मैंने मगध वालों को कर देना बन्द कर दिया है, परन्तु वह तो मैंने अपनी स्वतन्त्रता प्रकट करने के लिये किया है। तदपि मैं मागधियों का विरोधी नहीं हूँ।"

स्वयं को आदर्श पुरोहित सिद्ध करने के लिए सूर्यकुमार ने कहा, "आपका यह व्यवहार उचित ही है।"

सूर्य का जीवन चाटुकारिता का जीवन था, इस कारण वह महाराज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन के विपरीत कुछ भी कहने में अपना अहित समझता था। तदपि उसका मन कहता था कि वह उस ब्राह्मण सम्मेलन में अवश्य सम्मिलित होगा। उसने इस विषय में एक प्रकार से संकल्प कर लिया था कि वह ब्राह्मण सम्मेलन में न केवल सम्मिलित होगा अपितु उनके विचार-विनिमय में स्वयं भी भाग लेगा।

सूर्यकुमार ने महाराज का मन टटोलने के लिए कहा, "महाराज! मुझे विदिशा में सम्पन्न होने वाले ब्राह्मण सम्मेलन में उपस्थित होने का निमन्त्रण मिला हुआ है।"

"ठीक है, आप सम्मिलित होना चाहें तो हो सकते हैं। हम आपको उतने दिन का अवकाश दे देंगे।"

सूर्यकुमार यह नहीं समझता था कि महाराज को अपने पुरोहित को भी अवकाश देने का अधिकार है। वह समझता था कि वह महाराज का वेतनभोगी सेवक नहीं है।

तो भी उसने इस विषय पर इस समय अधिक बात करना उपयुक्त नहीं समझा और अपने विदिशा जाने के विषय में कहने लगा, "मैं आगामी शुक्ला सप्तमी को यहाँ से जाना चाहता हूँ।"

मणिपाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और विषय बदलकर कहा, "स्वामी आनन्दजी महाराज ने कहा था कि मैं वाल्मीकीय रामायण की एक प्रति बनवाकर आपकी पुत्रवधू के लिये भिजवा दूँ।

"पुस्तकाध्यक्ष को जब मैंने इस कार्य के लिये कहा तो उन्होंने कहा कि उनके पुस्तकालय में तीन-चार प्रतियाँ विद्यमान हैं। अतः मैंने एक प्रति आपकी पुत्रवधू के लिये निकलवाकर रख ली है।"

"महाराज! दे दीजिये। मैं ले जाऊँगा।"

महाराज ने सेवक को बुलाया। उससे कहा, "हमारी बैठक में एक चौकी पर लाल कपड़े में एक पुस्तक बँधी हुई रखी है। उसे उठाकर ले आओ।"

सेवक पुस्तक ले आया। महाराज ने उसे सूर्य को देते हुए कहा, "यह ले जाइये।"

सूर्यकुमार ने पुस्तक पकड़ी और उसको लेकर अपने ग्राम के लिये चला गया।

प्रातःकाल अल्पाहार के समय महाराज ने महारानी से पूछा, "देवि! स्वामीजी से किसलिये रुष्ट हो गयीं?"

"मुझे तो वह कोई ठग लगा है।"

"क्या ठगी की है उन्होंने आपके साथ?"

"वह योगी नहीं, कोई ढोंगी है।"

"ओह! किन्तु आपने किस प्रकार यह जान लिया?

"हरिद्वार से चलते समय उसने मुझे एक बात का संकेत किया था। वह कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि नरेश की पत्नी होने से मैं लोकमाता के स्थान पर हूँ।"

"हाँ, मैं भी कुछ ऐसा ही समझ पाया था। और वह स्वयं को लोक का एक प्राणी मानते हैं।"

"परन्तु मुझे तो वह लोभी और स्त्रियों का प्रशंसक ही दिखाई दिया है।"

"तो क्या उसने श्रीमतीजी से कुछ माँगा है ?"

"यही तो मैं कह रही हूँ।"

"ओह !"

"पिछले छः दिन से मैं उसके सामने गई ही नहीं।"

मणिपाल के सम्मुख यह एक प्रकार से रहस्योद्घाटन-सा था। उसको इस पर विस्मय हो रहा था। वह अपनी पत्नी का मुख देखने लगा। सरस्वती ने बात करते हुए कहा, "मैं तो पाँच-छः दिन पूर्व से ही इच्छा कर रही थी कि वह यहाँ से विदा हो जाए तो अच्छा है।"

"खैर, अब तो वह चला ही गया है। अब तुमको उसका किसी प्रकार भय नहीं करना चाहिये। भविष्य में कभी उसको यहाँ आने का निमन्त्रण नहीं दिया जायेगा। और यदि कभी हस्तिनापुर आ ही गया तो रघुनाथजी के मन्दिर में ही उसको टिका देंगे। अब उसके लिये राजप्रासाद के द्वार बन्द हैं।"

मणिपाल सरलचित्त व्यक्ति था। सरस्वती ने जो त्रिया चरित्र खेला, उसमें वह ठगा गया। परन्तु ईश्वरीय विधान के सम्मुख तो किसी की चलती नहीं।

सूर्यकुमार निश्चित समय पर विदिशा गया। उसने ब्राह्मण सम्मेलन में भाग लिया। उस ब्राह्मण सम्मेलन में वैरागियों के पंच कर्म के विरुद्ध व्यवस्था दी गयी।

विदिशा से लौटने पर सूर्यकुमार महाराज मणिपाल से मिलने के लिये जा पहुँचा। वहाँ उसने ब्राह्मण सम्मेलन का पूर्ण विवरण विस्तार से सुना दिया। उसने बताया कि पहले तो काशी और कन्नौज के ब्राह्मणों में सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिये ही बड़ा विवाद हुआ। अन्त में जब समस्या का किसी प्रकार समाधान नहीं हो पाया तो यह निश्चय किया गया कि इस सम्मेलन का अध्यक्ष विदिशा महाराज को बनाया जाए।

उसके बाद ब्राह्मण सम्मेलन आरम्भ हुआ। उसमें दो दिन तक तो रुद्राक्ष की माला और तुलसी की पूजा पर ही विवाद और कटाक्ष होता रहा। दो दिन के उपरान्त यह निर्णय कर लिया गया कि वैरागियों की इन दो बातों को अमान्य कर दिया जाए।

तदनन्तर कुम्भ के अवसर पर साधु-सन्तों को स्नान से रोककर उन पर गृहस्थों को वरीयता देने के प्रश्न पर विचार-विमर्श होता रहा। इस पर अधिकांश पण्डित इस पक्ष में थे कि इससे अधिक लाभ की सम्भावना थी किन्तु काशी के कुछ विद्वान् चाहते थे कि साधु-सन्तों की वरीयता बनी रहनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर बहुत विवाद हुआ किन्तु कोई निर्णायक बात नहीं हो पायी। तब यह निश्चय किया गया कि बारह वर्ष उपरान्त जब पुनः कुम्भ का पर्व आयेगा उस अवसर पर विचार कर लिया जायेगा।

दो दिन इस विषय पर भी व्यतीत हो गये।

पाँचवें दिन काशी-नरेश की विधवा के सती होने पर उसकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई और तदनन्तर सम्मेलन समाप्त हो गया।

सूर्य के मुख से ब्राह्मण सम्मेलन का विवरण सुनकर मणिपाल ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "विदिशा-नरेश गजेन्द्रपाल ने यह उचित नहीं किया। मैं समझता हूँ कि विदिशा-नरेश ने मगध के विरुद्ध षड्यन्त्र को सुदृढ़ करने के लिए यह सब प्रपंच रचा है। ऐसा लगता है कि ब्राह्मण समुदाय इस प्रपंच में फँस गया है। उसकी इच्छा कदापि इस प्रकार के निर्णयों के पक्ष में नहीं हो सकती।"

"तो फिर ?"

"मैं शीघ्र ही मल्ल-नरेश से मिलने के लिए जा रहा हूँ। वहाँ से पाटलिपुत्र जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि मगध-नरेश से पुनः सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लूं।

"मैंने अपना नाम उन नरेशों की सूची में से निकाल दिया है जो महाराज पाटलिपुत्र का विरोध कर उनसे सम्बन्धविच्छेद किये हुए हैं।"

महाराज की राजनीति के विषय पर सूर्यकुमार ने कभी अपनी सम्मति नहीं दी। इसलिये इस बार भी वह चुप रहा। उसने अपनी किसी प्रकार की भी प्रतिक्रिया महाराज के कथन पर व्यक्त नहीं की।

वास्तव में मणिपाल मल्ल-नरेश से यह पता करना चाहता था कि आनन्द वैरागी ने उसको क्या सम्मति दी है। वह यह भी जानना चाहता था कि विदिशा में होने वाले राजनीतिक सम्मेलन में उसने भाग लिया था अथवा कि नहीं। यदि उसने वहाँ भाग लिया है तो वहाँ क्या निश्चय किये गये हैं।

हस्तिनापुर ने जब पाटलिपुत्र से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया था तो सूर्यकुमार को उससे प्रसन्नता हुई थी। किन्तु इस समय जब उसके महाराज ने पाटलिपुत्र से पुनः सम्बन्ध स्थापित करने की बात कही तो उसको आघात तो लगा किन्तु उसने अपनी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करना उचित नहीं समझा।

आनन्द को हस्तिनापुर से गये तीन मास हो गये। अब तक महारानी के गर्भवती होने की बात विख्यात हो गई थी। एक दिन महारानी और महाराज भोजन कर रहे थे कि महारानी बीच में ही उठी और बाहर जाकर सारा किया हुआ भोजन उलटकर आ गयी।

महारानी के जाने पर महाराज को आश्चर्य हो रहा था। वे समझ नहीं पा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे कि वह क्यों रूठी है। महाराज ने दासी की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा तो उसने कहा, "महाराज! महारानीजी निर्माण-कार्य में लगी हुई हैं।"

"क्या निर्माण कर रही हैं?"

"यह तो अभी कहना कठिन है कि क्या निर्माण कर रही हैं। सम्भवतया कोई ज्योतिषी कुछ बता सकें। तदपि भगवान् की ओर से कृपादृष्टि हो रही है।"

कुम्भ के पर्व पर जब महाराज और महारानी हरिद्वार के लिये गये थे तो तब से ही पति-पत्नी में किसी प्रकार का सहवास नहीं हुआ था।

महाराज को एक प्रकार यह विश्वास-सा हो गया था कि महारानी सरस्वती निपट बाँझ है। इससे उनका दिल बुझ-सा गया और उन्होंने रात्रि के समय उसके शयनागार में जाना बन्द कर दिया था। इस बात को आज साढ़े तीन मास हो गये थे।

इस अवधि में महाराज के शयनागार में एक अन्य युवती आने लगी थी। उसके तो एक मास के भीतर ही गर्भस्थिति हो गयी थी। यह जानकर महाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई थी और उन्होंने निश्चय किया था कि यदि उस युवती के पुत्र हुआ तो उसको वे दत्तक के रूप में ग्रहण कर लेंगे।

अब जब महाराज ने दासी के मुख से कुछ इस प्रकार की बात सुनी तो उसके सम्मुख एक विकट समस्या उत्पन्न हो गयी। वह सोच रहा था कि यदि उसकी पत्नी वन्ध्या नहीं है तो दो वर्ष तक निरन्तर उसके साथ सहवास से गर्भ क्यों नहीं हुआ? और अब क्योंकि जो युवती उसके शयनागार में आती थी उसके एक मास के भीतर ही गर्भस्थिति हो गयी थी इसलिये वह स्वयं को भी नपुंसक नहीं मान सकता था।

इस समय उसके मन में विचार आया कि सम्भवतया उस युवती का किसी अन्य पुरुष से भी सम्बन्ध हो।

उसकी उलझन का दूसरा रूप था कि महारानी सहसा गर्भवती किस प्रकार हो गयीं और उनके गर्भ में किसका बालक है?

मणिपाल स्मरण करने लगा कि वह कब से महारानी के शयनागार में नहीं गया। तब उसको स्मरण आया कि उस नयी युवती से उसका सम्पर्क हरिद्वार जाने से पूर्व ही हो गया था। वह युवती राजप्रासाद के प्रमुख वीरेन्द्र की कन्या थी। एक दिन वह महारानी सरस्वती से मिलने आयी तो उस पर महाराज की दृष्टि पड़ गयी।

प्रथम दर्शन में ही मणिपाल उस पर आसक्त हो गया। वह इस अवसर की प्रतीक्षा में रहा कि कब वह युवती महारानी के आगार से निकलकर वापस जाती है। वह युवती आधा घड़ी तक महारानी के पास रही और फिर अपने निवास को जाने लगी। महाराज ने उसे वापस जाते हुए अपनी बैठक में बुलाकर पूछा, 'क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम था महारानीजी से ?'

'मैं महारानीजी से कोई सेवा-कार्य पाने की लालसा से गयी थी।'

'फिर मिला कोई कार्य ?'

'वे बोलीं कि उनके पास सेवक-सेविकाओं की कमी नहीं है। आपसे परामर्श करके बतायेंगी कि कोई कार्य निकल सकता है अथवा नहीं। तदपि आशा कम ही है।'

'किसकी कन्या हो ?'

'राजप्रासाद के प्रमुख ठाकुर वीरेन्द्रसिंहजी की।'

'सेवा-कार्य की आवश्यकता क्यों पड़ गयी है ?'

'मेरी माताजी का कहना है कि व्यर्थ बैठे रहने से पापी मन चंचल हो जाता है। किसी काम में लगे रहने से चंचलता नहीं आती।'

'कुछ शिक्षा पायी है ?'

'मेरी माँ ही मेरी शिक्षिका हैं। अष्टाध्यायी पढ़ चुकी हूँ। अब रामायण का अध्ययन कर रही हूँ।'

'किससे पढ़ती हो ?'

'माँ से ही पढ़ती हूँ। उन्होंने बहुत-से ग्रन्थ पढ़े हैं। अब भी पुस्तकालय से ग्रन्थ ला-लाकर अध्ययन करती रहती हैं।'

'महारानी के विषय में तो हम नहीं कह सकते; हाँ, यदि हमारी सेवा में रहना चाहो तो हम तुम्हारी नियुक्ति अभी से कर सकते हैं।'

'आपकी अति कृपा है। आज्ञा कीजिये, क्या करना होगा ?'

'हमारे शयनागार को ढंग से सजाना होगा।'

'आपका और महारानी का एक ही शयनागार नहीं है ?'

'नहीं। दोनों के शयनागार पृथक्-पृथक् हैं। हम नियमित रूप से उनके शयनागार में नहीं जाते।'

'मुझे वहाँ क्या काम करना होगा और किस समय करना होगा ?'

'सायंकाल के भोजनोपरान्त वहाँ पहुँचकर हमारी प्रतीक्षा करनी और फिर हमारी सुख-सुविधा का ध्यान करना।'

'कितने समय तक वहाँ रहना होगा ?'

'जब भी वहाँ का सेवा-कार्य हो जाए, उस समय हमसे पूछकर अपने निवास को लौट जाना।'

युवती समझ गयी कि महाराज उसको द्वितीय पत्नी के रूप में प्रयोग करना चाहता है। वह सोच में पड़ गयी। फिर उसने साहस करके पूछा, 'इस कार्य का वेतन क्या होगा ?'

'यह तो हम तुम्हारी सेवा को देखकर ही बता सकेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कब से यह कार्य करना होगा ?'

'हमने तो कहा है कि आज से ही आरम्भ कर दो।'

'ठीक है, मैं अपनी माताजी से इसकी स्वीकृति ले लेती हूँ।'

'यदि उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो ?'

'मैं आपको उसकी सूचना दे जाऊँगी।'

महाराज मणिपाल समझता था कि यदि लड़की ने अपनी माँ से इस विषय में पूछा तो निश्चय ही वह इसको स्वीकार नहीं करेगी। अतः वह इस बात को भूलने का यत्न करने लगा।

दिन बीत गया। रात्रि को भोजनोपरान्त जब महाराज अपने शयनागार में गये तो उनको आश्चर्य हुआ कि पद्मावती उनके शयनागार में विद्यमान है और उसने महाराज की शय्या को ठीक-ठाक किया हुआ है। उन्होंने पूछा, 'माँ ने स्वीकृति दे दी है ?'

'हाँ महाराज ! माँ का कहना था कि आप बड़े दयालु हैं, इसलिये मुझे यही उचित है कि मैं आपकी सेवा हृदय से करूँ।'

मणिपाल समझ गया कि उसकी माँ यह अवश्य जानती होगी कि उसकी युवा कन्या से किस प्रकार की सेवा की अपेक्षा की जा सकती है।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम रात्रि में ही दोनों का समागम हो गया। पद्मा रात्रि-भर महाराज की भुजाओं में पड़ी रही और प्रातःकाल उठकर जब वह अपने निवास को जाने लगी तो महाराज ने उसे एक रेशमी थैली पकड़ाते हुए कहा, 'अपनी माताजी को बता देना कि तुमने मेरी जो सेवा की है, ये रजत उस सेवा के प्रतिकार में तुम्हें दिये जा रहे हैं।'

इस प्रकार पद्मा नित्य आती रही तो सप्ताह में एक-दो बार उसकी सेवा ली जाती रही।

लगभग पन्द्रह दिन इस व्यवस्था को हुए थे कि तभी महाराज और महारानी हरिद्वार चले गये। वहाँ से लौटने पर जब पद्मा महाराज की सेवा में आयी तो उसने महाराज को कहा, 'मैं इस मास रजस्वला नहीं हुई।'

'माँ को इसकी सूचना दी है ?'

'जी हाँ। उन्होंने ही कहा था कि मैं आपको भी इसकी सूचना दे दूँ।'

'ठीक है। अपनी माताजी को बता देना कि तुम्हारे गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ तो हम उसको गोद ले लेंगे और फिर उसका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा राजपरिवार के अनुकूल होगी।'

'और मेरी सेवा ?'

'वह तो जीवन-भर के लिए लग गयी है। तुम हमारी प्रिय रानी होगी। परन्तु यह पुत्र को जन्म देने के उपरान्त ही होगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हरिद्वार से लौटे तीन मास हुए थे कि महारानी सरस्वती के भी गर्भवती होने का समाचार मिल गया।

मणिपाल के लिए यह गम्भीर समस्या हो गयी थी।

अब मणिपाल दोनों महिलाओं के प्रसव की प्रतीक्षा करने लगा। पद्मा का प्रसव सरस्वती से एक मास पूर्व हुआ। महाराज गणना करने लगा। उसके अनुसार उसने पाया कि पद्मा को महाराज की सेवा में आये दो सौ नब्बे दिन हो गये थे।

जब से महाराज ने पद्मा की सेवा स्वीकार की तब से वह महारानी के शयनागार में गया ही नहीं था। अतः गणना करने पर उसने पाया कि महारानी के गर्भ में जो बीजारोपण हुआ है, वह पद्मा के गर्भ के बाद हुआ है। इससे महाराज को आश्चर्य होने लगा था।

पद्मावती ने पुत्र को जन्म दिया था। उसके पुत्र के जन्म के ठीक पन्द्रह दिन बाद महारानी सरस्वती ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। सरस्वती का पुत्र अधिक सुन्दर और तेजस्वी था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका निर्माण समझ-बूझ से किया गया है। पद्मावती का पुत्र गहरे रंग का होने पर भी रूप-रेखा में मणिपाल से मिलता था।

मणिपाल अपनी महारानी सरस्वती के प्रसूतिगृह से बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगा। वह जानना चाहता था कि महारानी को गर्भ किस पुरुष से है।

पद्मावती का बच्चा एक मास का हो चुका था। राजप्रासाद में सब जानते थे कि पद्मा का पुत्र महाराज से ही है। सरस्वती को भी इस बात का ज्ञान था। पद्मा के पुत्र में महाराज की आकृति की समानता देख सब लोगों को यही अपेक्षा थी कि अब पद्मावती राजप्रासाद में रख ली जायेगी। अभी तक तो वह अपनी माता के पास ही रहती थी।

आखिर एक दिन सरस्वती से महाराज की बात हो ही गयी। महाराज ने पूछा, "महारानी! बच्चे का जन्म माघ शुक्ल पंचमी को हुआ है। अर्थात् इसका बीजारोपण वैशाख शुक्ल पंचमी को हुआ होगा? अब आप ही बताइये, यह किसका गर्भ है?"

"आनन्द वैरागी का।"

"उस समय तो तुमने कहा था कि तुमने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था?"

इस समय दोनों अकेले में महाराज की बैठकघर में बैठकर ये बातें कर रहे थे।

सरस्वती बोली, "जब वैरागीजी ने मुझसे सहवास की इच्छा व्यक्त की तो मैंने उसे अस्वीकार कर दिया। उस समय उन्होंने कहा कि गर्भ तो उनकी इच्छा मात्र से ही स्थित हो जायेगा। शेष तो उनके शरीर का सम्बन्ध है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो बिना शारीरिक सम्बन्ध के भी गर्भस्थिति हो सकती है ?"

"वैरागी का यही कहना था।"

"सरस्वती ! तुम्हारा पुत्र बड़ा ही सुन्दर और ओजस्वी है। इससे मुझे तुम्हारा कथन स्वीकार है कि यह वैरागी महाराज की ही सन्तान है। वैरागी से यद्यपि उसका रूप मिलता नहीं है किन्तु उसके सुन्दर और तेजस्वी होने से यह सिद्ध होता है कि यह किसी योगी की सन्तान है।

"आनन्द वैरागी का भाई सूर्यकुमार एक दिन बता रहा था कि उसका भाई पिछले दो जन्मों की घटनायें बता दिया करता है। वह स्वयं को पिछले जन्म में योगी बताता है। जब वह अपने पिता के साथ पाटलिपुत्र में रहता था तो वहाँ के महाराज को उनके किसी पुरोहित की बातें बताता था। वह पुरोहित उस समय तक स्वर्ग सिधार चुका था। वह कहता था कि अपने पूर्वजन्म में वह स्वयं पुरोहित था।

"इन बातों से यह तो विश्वास होता है कि पुत्र का निर्माण उसने किया है; परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम जैसी सामान्य रूप-रेखा की स्त्री से उसने सहवास की इच्छा व्यक्त की हो। उसके साथ ही इस समय उसकी आयु भी पर्याप्त हो गयी है।"

सरस्वती कहने लगी, "महाराज ! मैंने जो कहा है वह सत्य है कि पुत्र केवल उनकी इच्छा मात्र से हुआ है। कभी आप उनसे मिलें तो स्वयं पूछ लीजियेगा।"

"हाँ, मैं कुछ दिन में ही पाटलिपुत्र जा रहा हूँ। वहाँ हमारे संघ की योजना समिति की बैठक होने वाली है। उसमें वैरागीजी भी पधारने वाले हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे कथन में कितना सत्य है।"

"यह तो ठीक है, परन्तु आप पद्मावती के पुत्र का क्या करने वाले हैं ?"

"वह बयालीस दिन का हो जाए। उसके उपरान्त उसकी माता सहित उसको राजप्रासाद में लाकर रखने का विचार है।"

"पद्मावती तो पिछले दस-ग्यारह मास से ही राजप्रासाद में रह रही है। मैं तो उसी दिन जान गयी थी जिस दिन आपने प्रथम रात्रि में उसको अपनी सेवा के लिए नियुक्त किया था। इसीलिये उस दिन के बाद मैंने कभी आपको रात्रि के समय अपने शयनागार में आमन्त्रित नहीं किया।

"परन्तु प्रश्न तो अब यह है कि मैं अब पत्नी के रूप में आपकी सेवा कर सकूँगी अथवा कि नहीं ?"

"पद्मा तुम्हारी अपेक्षा अधिक विदुषी है। अब यह तुम दोनों परस्पर मिलकर निर्णय कर लो कि कौन किस प्रकार रहना चाहता है।"

उस दिन महाराज किसी राजकार्य से प्रासाद से बाहर गये हुए थे। पद्मा अपने बच्चे को लेकर महारानी की बैठक के द्वार पर आकर बोली, "महारानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ! मैं भीतर आ सकती हूँ ?"

"यहाँ तक क्या तुम मुझसे पूछकर ही आयी थीं ?"

"यहाँ तक आने के लिए तो महाराज ने स्वीकृति दी हुई है। मैंने उनसे पूछा था कि क्या मैं आपसे मिल सकती हूँ। तब उन्होंने कहा था कि आपसे पूछ लूँ। यदि आप स्वीकृति दें तो मिल लूँ। इसीलिये मैं आपसे पूछ रही हूँ।"

सरस्वती समझ गयी कि युवती चतुर है। उसने कहा, "अब तो तुम मुझसे भी उच्च पद प्राप्त कर चुकी हो। मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुमको आने से रोक सकूँ। आ जाओ।"

पद्मा मुस्कराती हुई अन्दर आथी और महारानी के सम्मुख भूमि पर बैठकर अपने पुत्र को महारानी के चरणों में रखकर बोली, "मैं अपने से अधिक आपका ही अधिकार मानती हूँ। इसी कारण आपसे अपने और अपने बच्चे के संरक्षण की याचना करने को आयी हूँ।"

"तुम्हें क्या मुझसे भय लगता है ?"

"आपसे भय तो नहीं है, परन्तु निर्भय होने से सदा के लिए संरक्षण की स्थिति चाहती हूँ। उसी की याचना कर रही हूँ।"

"तुम्हें किससे भय है ?"

"प्रासाद के निवासियों से। यहाँ अनेक ऐसे जन हैं जो मुझको देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं।"

"तुम इतने से ही भयभीत हो गयीं ?"

"यदि उनको राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हो गया तो इससे भय बढ़ जायेगा। राजनीति आपके पक्ष में है।"

"पद्मा ! मुझे पहले दिन ही आभास हो गया था कि तुम राजप्रासाद में सैंध लगाकर भीतर घुस आयी हो। परन्तु मैंने उस समय भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। मैं अब भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं कर रही हूँ। अब तो तुम मेरे बराबर के कक्ष में आकर रहने लगी हो।

"परन्तु मुझे कुछ और ही दिखायी दे रहा है। तुमसे मेरा बच्चा अधिक सुन्दर और गुणवान है। उसकी चिन्ता तुमको नहीं, तुम्हारे बच्चे को हो सकती है।"

"उस भय का निवारण करने का मैं यत्न करूँगी।"

"वह किस प्रकार ?"

"उसे अपना बच्चा मानकर।"

"हाँ, यत्न करो। यदि तुम्हें सफलता मिलती है तो मुझे इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती।"

सरस्वती दोनों बच्चों में प्रतिस्पर्द्धा की सम्भावना की आशंका करने लगी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

मणिपाल कौशाम्बी होता हुआ पाटलिपुत्र पहुँच गया। वहाँ जाकर उसको विदित हुआ कि हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर भारत के नरेशों के दो विभिन्न गुटों में जो सद्भावना निर्माण हुई थी वह प्रायः विलुप्त हो चुकी है। विदिशा-नरेश गजेन्द्रपाल और कश्मीर-नरेश प्रवरसेन पाटलिपुत्र में उपस्थित नहीं थे।

वैशाली और पांचाल के नरेश वहाँ पहुँच गये थे। पण्डित शिवकुमार और आनन्द वैरागी भी वहाँ पहुँच गये थे। इन दोनों को तो जनता का प्रतिनिधि माना जाता था।

मणिपाल इस योजना समिति का सदस्य नहीं था। वह तो मगध-नरेश कुमारगुप्त से अपने सम्बन्धों को सुखद करने के उद्देश्य से आया था। जब वह वहाँ की राजसी धर्मशाला में ठहरा तो उस समय उसको विदित हुआ कि विदिशा-नरेश और कश्मीर-नरेश इस समिति की बैठक में उपस्थिति नहीं हुए हैं। मणिपाल इसका कारण जानता था। तदपि वह जानना चाहता था कि न आने का उन्होंने कोई बहाना भी बनाया है अथवा नहीं।

यह विचार मन में आने पर वह राजप्रासाद में जा पहुँचा। द्वार पर उसने अपना नाम बताया और जब भीतर सूचना भेजी गयी तो उसको तुरन्त भीतर बुला लिया गया।

राजप्रासाद में समिति की बैठक हो रही थी। मणिपाल समिति का सदस्य नहीं था। समिति में उसको भीतर बुलाने और न बुलाने पर जब विचार होने लगा तो शिवकुमार ने कहा, "मणिपाल हमारे मित्र हैं, अतः बुलाने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये। और जो योजना हम यहाँ पर बना रहे हैं वह भी किसी प्रकार गुप्त नहीं है। इसे हम गुप्त रख भी नहीं सकते। यदि विदिशा-नरेश ने हमारा बहिष्कार किया है तो उसके स्थान पर हमें हस्तिनापुर-नरेश को नियुक्त कर देना चाहिये।"

शिवकुमार का यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया और तदनुसार उसको योजना समिति की बैठक में ही सम्मिलित कर लिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिपाल ने देखा कि वहाँ योजना समिति की बैठक चल रही है। जब उसे भीतर बुलाया गया तो उसने कहा, "मैं तो महाराजाधिराज से मिलने आया हूँ।"

उसका समाधान करते हुए शिवकुमार ने कहा, "योजना समिति के दो सदस्य अनुपस्थित हैं। वे हैं विदिशा-नरेश और कश्मीर-नरेश। कश्मीर-नरेश तो दूर का अन्तर होने के कारण उपस्थित नहीं हो सके। हाँ, विदिशा-नरेश की कार्य-विधि पर हमको सन्देह होने लगा है। अभी हम उसके स्थानापन्न के विषय में विचार कर रहे थे। उसी समय हमें आपके आने का समाचार मिला। तब मैंने सम्मति दी है कि आपको इस समिति में सम्मिलित कर लिया जाए।

"मैंने योजना समिति के सम्मुख प्रस्ताव रखा है कि आपको समिति का सदस्य बना लिया जाए।"

कुमारगुप्त ने शिवकुमार के प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। और इस प्रकार तत्क्षण मणिपाल को योजना समिति का सदस्य बना लिया गया।

मणिपाल ने बैठते हुए कहा, "मुझे विश्वस्त सूत्रों से विदित हुआ है कि विदिशा में हमारी योजना को सैंध लगाने का यत्न किया जा रहा है।"

कुमारगुप्त ने कहा, "हमें वहाँ के सब समाचार समय-समय पर मिलते रहे हैं। वहाँ के सम्मेलन का एक परिणाम तो यहाँ पर उपस्थित हो गया है। वह यह कि देश-भर के ब्राह्मण यह प्रचार कर रहे हैं कि सम्राट पद का त्याग कर देना चाहिये। उसका कारण उन्होंने यह बताया है कि हम वैरागी हो गये हैं और वैरागी वैष्णव धर्म के विरोधी हैं।

"विदिशा के ब्राह्मण सम्मेलन का यह रूप प्रकट हुआ है कि हमारे लिये एक नयी समस्या उत्पन्न कर दी जाए। वह यह कि पुष्यमित्र के उत्तराधिकारियों को पुनः मगध पर अधिकार करने में सहायता दी जाए।

"मगध का समस्त ब्राह्मण समाज हमें असुर कहकर कुख्यात कर रहा है। इतना ही नहीं, ब्राह्मण समुदाय घोर विद्रोह करने पर उद्यत हो गया है।"

मणिपाल बोला, "तब तो आप मुझसे भी अधिक इस विषय में जानते हैं।"

"अधिक जानते हैं अथवा कम, यह तो हम नहीं कह सकते। हाँ, विदिशा का समाचार है कि महाराज गजेन्द्रपालसिंह देश-भर के ब्राह्मणों को हमारे विरुद्ध खड़ा करने का यत्न कर रहे हैं।"

"तो आप इसके निराकरण के लिए क्या कर रहे हैं ?"

"पुष्यमित्र के उत्तराधिकारियों ने अंग की ओर से मगध पर आक्रमण की योजना बनायी है। उनके ब्राह्मण होने के नाते समस्त देश के ब्राह्मण उनकी सहायता के लिए तत्पर हो गये हैं। हमें विदित हुआ है कि पाटलिपुत्र से ही एक करोड़ रजत एकत्रित कर अंग देश भेजे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मगध पर आक्रमण करने के लिए वहाँ एक सेना का निर्माण किया जा रहा है और पुष्यमित्र के परिवार की सहायता के लिए समस्त भारत के ब्राह्मणों को हमारे विरुद्ध करने का यत्न किया जा रहा है।

"हमारी सेना में जो भी ब्राह्मण जाति के सैनिक हैं, वे अवकाश लेकर अंग देश जाकर पुष्यमित्र की सेना में भर्ती होने लगे हैं।"

शिवकुमार ने कहा, "यह बात राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय हो गयी है। राष्ट्र में एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो जन्म से अछूत है। वह एक अन्य पृथक् वर्ग बन जायेगा। और जन्म से पढ़ने-लिखने के अधिकार वाले पुरोहित कहे जाते हैं। उनका भी एक पृथक् वर्ग बन गया है। शेष रह जायेंगे क्षत्रिय और वैश्य।

"इस प्रकार राष्ट्र खण्डित हो जायेगा। विचार और खान-पान आदि से भी समाज में वर्ग बन गये हैं। मांसाहारी जो प्रायः क्षत्रिय और शूद्र वर्ग के होते हैं और निरामिषभोजी जो प्रायः ब्राह्मण और वैश्य समुदाय के होते हैं।

"अब वर्णों के आधार पर राजनीति चलने लगी है। जन्म से ब्राह्मण पुष्यमित्र परिवार के लोग कर्म से क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण हो रहे हैं। अन्य ब्राह्मण जाति के होने पर भी और क्षत्रिय स्वभाव के न होते हुए भी क्षत्रिय बनने का अभिनय कर रहे हैं। जन्म के सम्बन्ध को सब स्वभाव से वरीयता प्रदान कर रहे हैं।"

वैरागी आनन्द यह सब चुपचाप सुनता रहा था। इसके बाद उसने कहा, "महाराज! इसी विचार से तो मैंने प्रातः-स्नान करना, तुलसी को जल देना, रुद्राक्ष की माला धारण करना और 'ॐ' का जाप करना राष्ट्र की एकता के लिए तो प्रचलित करने का यत्न किया था। प्रजा ने, विशेषतया वैश्य और शूद्र समाज ने तो इसको बहुत पसन्द किया है, परन्तु देश के ब्राह्मण समाज ने इसे लात मारकर इसके प्रचार को अवरुद्ध करने का यत्न किया है।"

शिवकुमार ने कहा, "मेरी सम्मति तो यही है कि सैनिकों की भरती जाति आदि का विचार छोड़ करके करनी चाहिये। इसका आधार राजनीति बना देनी चाहिये। प्रशिक्षण काल में सैनिक के स्वभाव का अनुमान लगाकर उसको उस प्रकार की सेवा पर नियुक्त किया जाए।"

मणिपाल बोला, "मुझे यह सुझाव व्यावहारिक नहीं लगता क्योंकि पाँच मास के प्रशिक्षण काल में किसी के स्वभाव का ज्ञान हो पाना सम्भव नहीं है। इसका एक परिणाम यह भी होगा कि सेना में सेवा प्राप्त करने के लिए सब क्षत्रिय स्वभाव का बने रहने का नाटक करेंगे और जब उन सैनिकों को युद्ध के मोर्चे पर भेजा जायेगा तो जो क्षत्रिय नहीं होंगे उस अवसर पर युद्ध के भय से उनका जातिगत स्वभाव उभरकर सामने आ जायेगा और उसके परिणामस्वरूप युद्ध में हानि होगी। युद्धेतर काल में उनका शूद्र स्वभाव उभर आयेगा और ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव के लोग उच्चाधिकारी बन गये तो वे अधीनस्थ सैनिकों पर अत्याचार करेंगे।

"स्वभाव जीवात्मा के पूर्वजन्म के कर्मफलों का परिणाम होता है। इस जन्म के वातावरण और शिक्षण से तो ऊपर-ऊपर का आवरण ही निर्माण होता है जो किंचित्-सी भी खरोंच से उतर जायेगा।"

शिवकुमार बोला, "पुष्यमित्रों का विद्रोह तो सैनिक अभियान से ही शान्त किया जाना चाहिये। वैरागियों के प्रचार को इस कारण प्रोत्साहन देना चाहिये कि जिससे जनता का मनोबल बढ़े और वे सैनिक अभियान का युद्ध के बाहर रहते हुए राज्य और सेना की सहायता कर सकें। जब तक प्रजा का सक्रिय सहयोग न हो, कोई भी सैनिक अभियान सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

"उन लोगों का सहयोग जो सैनिक सामग्री का निर्माण करते हैं अथवा युद्ध के उपकरण अथवा साज-सज्जा का उत्पादन करते हैं, नितान्त आवश्यक है। शस्त्रास्त्रों के निर्माताओं और खाद्य सामग्री के उत्पादकों का स्वेच्छा से दिया जाने वाला सहयोग तो सदा प्रशंसनीय और अनुकरणीय रहता आया है। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती किन्तु उसके लिए वातावरण निर्माण करने की परम आवश्यकता होती है।"

सुरेश्वर भट्ट बोला, "इस योजना समिति का अब क्या कार्य हो सकता है?"

शिवकुमार ने कहा, "इसकी सार्थकता अब समाप्त हो गयी है। अब तो यह स्थिति है कि युद्ध मगधराज लड़ रहे हैं। सब देशों के नरेश इनको सहयोग प्रदान करें। हाँ, यह समिति भविष्य में महाराजाधिराज की परामर्शदात्री समिति के रूप में कार्य कर सकती है। युद्ध की तैयारी और इसका संचालन यद्यपि महाराज ही करेंगे किन्तु समिति का परामर्श उसमें अत्यन्त आवश्यक है।

"मेरा तो यह भी विचार है कि हूणों की तैयारी से पूर्व ही हम अपनी तैयारी करके उन पर पहले स्वयं क्यों न आक्रमण कर दें, जिससे कि उनको प्रारम्भ में ही निस्तेज किया जा सके। किन्तु इस ब्राह्मण समाज ने इस समय एक नयी ही समस्या उत्पन्न कर दी है। इसका समाधान किये बिना विदेशियों से लोहा लेना कठिन है।

"इस विद्रोह को शान्त करने में समय लगेगा। उसका कारण यह है कि विदिशा और अंग-नरेश ब्राह्मण आन्दोलन के सहायक हो गये हैं।"

महाराज मणिपाल ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "इसी बात ने तो मुझे प्रेरित किया है कि मैं मगधराज से सहयोग करने के लिए उद्यत हुआ हूँ। विदिशा वालों का व्यवहार मैंने आद्योपान्त स्वार्थपरक समझा। तदपि मेरा यह सुझाव है कि स्थानीय सेनायें तो होनी ही चाहिये। उसका परिणाम यह होगा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक सन्तुष्ट और चरित्रवान बने रहेंगे। युवकों को अपने घरों से बाहर रखकर जहाँ उनको उनकी कृषि से दूर रखने से उन्हें हानि होगी, वहाँ उनको शिविरों में रखने से आवश्यक व्यय-भार बढ़ जायेगा।"

इस प्रकार विचार-विमर्श होता रहा और अन्त में योजना समिति, जो अब परामर्शदात्री समिति बन गयी थी, उसने इस प्रकार की एक घोषणा की तैयारी कर दी कि जिसके आधार पर हरिद्वार में जिन-जिन राजा-महाराजाओं से परामर्श किया गया था उनका आह्वान किया जाए कि राष्ट्र के इस महान् यज्ञ में वे अपना योगदान करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ।

समिति की बैठक समाप्त हुई तो पण्डित शिवकुमार और आनन्द वैरागी, जो महाराज के अतिथिगृह में ठहरे हुए थे, उठकर उधर जाने लगे। उस समय मणिपाल ने कुमारगुप्त से कहा, "महाराज ! मैं तो यहाँ केवल आपसे मिलने के लिए आया था। यदि मुझे विदित होता कि यहाँ समिति की बैठक हो रही है तो मैं किसी अन्य समय आ जाता।"

कुमारगुप्त बोला, "यह तो हमारा परम सौभाग्य है। मैं आपको कल मध्याह्न के भोजन पर आमन्त्रित करता हूँ। उसी समय आपसी बातचीत भी हो जायेगी।"

महाराजाधिराज से अवकाश पाकर मणिपाल ने पण्डित शिवकुमार से पूछा, "पण्डितजी ! आप कहाँ ठहरे हैं ?"

"मैं और आनन्द वैरागी महाराज के अतिथिगृह में ठहरे हुए हैं।"

"मैं आप दोनों से मिलना चाहता हूं। इसके लिए मैं इस समय आपको अपने स्थान पर आमन्त्रित करता हूँ। मेरा रथ यहीं बाहर खड़ा है। आप लोगों को असुविधा नहीं होगी। उसमें बैठकर हम चलते हैं।"

"तो चलिये। क्यों आनन्द ! ठीक है ?" शिवकुमार ने पूछा।

आनन्द बोला, "जी हाँ, चलिये। मैं वैसे भी आपसे मिलना चाह रहा था। विदिशा वालों के लिए मैंने एक योजना पर विचार किया है, उस सम्बन्ध में आपसे परामर्श करना था।"

तीनों ने महाराज कुमारगुप्त से अवकाश लिया और मणिपाल जहाँ टिका हुआ था, उस ओर चले गये।

निकष पर पहुँचते ही महाराज मणिपाल की ओर से अतिथियों के लिए जलपान की व्यवस्था हो गयी।

जब तक जलपान की व्यवस्था होती रही उस अवधि में मणिपाल ने वार्तालाप आरम्भ करते हुए कहा, "पण्डितजी ! आप तो संन्यास लेने वाले थे, किन्तु मैं देख रहा हूँ कि आप राजप्रासाद में टिके हुए हैं ?"

"हाँ, मेरा विचार तो यही था; किन्तु महाराज ने साग्रह निवेदन किया तो मैं विवश हो इनका आग्रह टाल नहीं सका। मैं अब इनका पुरोहित और परामर्शदाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गया हूँ।

"महाराज चाहते हैं कि जब तक इस युद्ध का निर्णय नहीं हो जाता है इनके साथ ही रहूँ। तब तक के लिए मेरा संन्यास ग्रहण करना स्थगित हो गया है। मैंने भी यही उचित समझा है, क्योंकि भगवे वस्त्र धारण करने के उपरान्त युद्ध का आह्वान करना न सम्भव है और न उचित ही। वर्तमान समय की जो माँग है उसके अनुसार यही प्रबन्ध उत्तम है।"

"पण्डित सूर्यकुमार की माताजी कहाँ हैं ?"

"उसके भाई कौशाम्बी में राजपुरोहित हैं। उसका पुत्र वहीं कपड़े का व्यापार करता है। सूर्य की माताजी वहीं रह गयी हैं।"

"सूर्य की माताजी को अपने पुत्र के पुरोहित के कार्य से अपने भाई के पुत्र के व्यापार का कार्य अधिक उपयुक्त और धर्मयुक्त लगा तो उसने सूर्य के पास जाकर रहने का विचार स्थगित कर दिया है। अब वह वहीं रहेगी। सूर्य के पास जाने का उसका विचार नहीं है।"

"परन्तु पण्डितजी ! आपने इस अवस्था में भी राज-सेवा स्वीकार कर ली है ? यह तो बड़ा विचित्र-सा लग रहा है। इस पर तो मैं आपके विचार जानने के लिए उत्सुक हो रहा हूँ।"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "इसमें विस्मयजनक कुछ भी नहीं है। मैं राज्य अथवा राजा का वेतनभोगी सेवक नहीं हूँ। महाराजाधिराज की तो केवल पुरोहिताई ही करता हूँ। इसका अभिप्राय यह है कि मेरे योग-क्षेम का वहन वे करते हैं, किन्तु मैं रहता स्वेच्छा से ही हूँ।

"जिस घड़ी इस देश पर से हूणों का संकट टला कि बस, उसी घड़ी मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा। संन्यास लेने के उपरान्त फिर मैं हिमालय में किसी एकान्त स्थान पर अभ्यास करने के लिए चला जाऊँगा।"

मणिपाल को विदित था कि पण्डित शिवकुमार ने समुद्रगुप्त के काल में भी इसी प्रकार की शर्त पर राजपुरोहित बनना स्वीकार किया था। और इस बार जब उसने पुनः राजपुरोहित बनने में पण्डित शिवकुमार का उद्देश्य जान लिया तो उसका समाधान हो गया।

शिवकुमार ने आगे बात करते हुए कहा, "मैं समझता हूँ कि भारत के मानवोचित देश अथवा वासस्थान बनाये रखना महान् यज्ञ का कार्य है। यह कल्याणकारी यज्ञ है। इसमें मेरा अपना कोई भी स्वार्थ नहीं है। यही कारण है कि यह कार्य मेरे जीवनोद्देश्य में किसी प्रकार का बाधक नहीं है। इसके विपरीत यह कुछ सहायक ही सिद्ध होगा।"

मणिपाल ने अपनी बात आरम्भ करते हुए कहा, "मैंने जब यह देखा कि भारत को एक महासंघ बनाने की योजना असफल होने लगी है और देश में दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुट बनने वाले हैं, तो उस समय मैंने निश्चय किया कि मुझे महाराजाधिराज के गुट में ही रहना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार मैं महाराज से मिलने के लिए पाटलिपुत्र आ गया। मैं अपनी स्वतन्त्र सेना रखते हुए और महाराज को कर न देते हुए भी उनका पक्ष स्वीकार करूँ अथवा कि नहीं, इसी का निर्णय करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।"

इस पर शिवकुमार ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा, "मैं समझता हूँ कि इस समय तो महाराज कुमारगुप्त को आपकी शर्त मान जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। यह विपत्ति का समय है और पराधीन होने का अभिप्राय है कि यहाँ का महाराजाधिराज पद भी जायेगा। इस कारण इस समय तो वह जिस किसी भी प्रकार अपना पक्ष सबल करने का यत्न करेंगे।

"किन्तु प्रश्न तो उसके बाद का है। तदपि मैं समझता हूँ कि अब आपको उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पहले यह हूणों का संकट टल जाए, फिर देख लिया जायेगा। उस समय देश और राष्ट्र की क्या स्थिति होगी, यह तब देख लिया जायेगा।"

"पण्डितजी! यह तो मैं भली-भाँति जानता हूँ कि इस समय हूणों के विरुद्ध तैयार किये जाने वाले मोर्चे में मेरा सम्मिलित होना मेरे कल्याण के लिए है। हूणों को पराजित करने के बाद राष्ट्र की जो स्थिति होगी, उस विषय में उस समय विचार कर लिया जायेगा।"

शिवकुमार ने फिर कहा, "महाराज! मनुष्य स्वतन्त्र जीव है। ईश्वर ने उसका निर्माण ही कुछ इस प्रकार किया है कि उसके भविष्य के व्यवहार के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस कारण अपनी योजनायें वर्तमान को देखकर ही बनाई जानी चाहिये। आज से दस-बारह वर्ष बाद भारतीय समाज किस प्रकार का होगा, इस विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

"एक महान् पाप हो रहा है। देश के विद्वद्वर्ग ने विद्वत्ता का मार्ग बड़ा ही संकुचित कर दिया है। इसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि और अन्य योग्यताओं के साथ न रहकर जन्म से कर दिया गया है। उसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि सामान्य जनता भेड़-बकरी के समान पशुत्व की ओर अग्रसर हो रही है। जिस प्रकार पशु अपने जन्मजात संस्कारों के आधार पर व्यवहार करता है उसी प्रकार सामान्य भारतीय नागरिक भी अपना व्यवहार अपने जन्मजात संस्कारों के आधार पर करने लगा है।

"इस पाप का महान् भयंकर दुष्परिणाम होने की सम्भावना है। इस देश का समाज पशु की भाँति शक्ति से वश में किया जाने लगेगा।

"वेदरूपी प्रकाश के सामान्य जनता से पृथक् किये जाने का ही यह दुष्परिणाम है। एक बात यह भी है कि यहाँ के ब्राह्मण समाज ने एक ओर तो सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता को अन्धकार में विचरने के लिए विवश कर दिया है और दूसरी ओर स्वयं वेदार्थ न समझते हुए भी सहज पथ-प्रदर्शक के ज्ञान से वंचित हो गया है।

"पुराणों की सृष्टि को यद्यपि मैं अशुभ नहीं मानता, इस पर भी वे वेद के स्थानापन्न तो नहीं हो सकते। पुराणों में वेद के ज्ञान की मात्र परछाइयाँ ही हैं। अतः उनमें वास्तविकता का कहीं भी लेशमात्र प्राप्त नहीं हो सकता। और न वे वेद-ज्ञान की भाँति जनता को आलोकित ही कर सकते हैं। परछाई की भाँति वेद का मिथ्या आकार ही इन पुराणों में दृष्टिगोचर होगा।

"इसका परिणाम यह होगा कि ब्राह्मण भी वेद-ज्ञान से रहित होकर वेद की परछाई की पूजा करने लगेगा और कालान्तर में वह परछाई ही शेष रह जायेगी और मूल वेद-ज्ञान लुप्त हो जायेगा।

"ईश्वर न करे, यदि दुर्भाग्य से कभी इस देश पर विदेशी राज्य स्थापित हो गया तो इस ज्ञान के लुप्त होने का दुष्परिणाम यह होगा कि यहाँ का समाज अन्धे के समान हो जायेगा और फिर उस आक्रान्ता को ही पथ-प्रदर्शक मानकर उसका अनुसरण करने लग जायेगा।"

मणिपाल पण्डितजी के इस प्रकार के विचारों से पूर्व ही परिचित था। अतः इस समय पण्डितजी जो कुछ कर रहे थे वह उनकी अन्तर्व्यथा को भली प्रकार समझ रहा था।

पण्डितजी ने आगे कहा—"यदि आनन्द वैरागी की योजना सामयिक कठिनाई को पार कर सके तो अनपढ़ भारतीयों को एक सूत्र में बाँधने का यह सुझाव है। परन्तु यह तुलसी और रुद्राक्ष वाला समाज वेद का नाम लेता हुआ भी वेद के तत्त्व से अनभिज्ञ अन्धकार में भटकता रहेगा।

"तदपि मैं समझता हूँ कि सामयिक संकट पार करने में यह योजना सहायक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी कारण मैं इस विषय में मौन हूँ।

"आनन्द वैरागी का कहना है कि विदेशी आक्रमण के तेजहीन होते ही ये अपनी योजना को विस्तृत करेंगे। ईश्वर करे, इनको अपनी योजना के सुधार में सफलता प्राप्त हो। मैं तो यही कामना करता हूँ।"

इस प्रकार बात करते हुए जलपान आ गया तो फिर सबका ध्यान उस ओर चला गया और यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया।

: २ :

अल्पाहार समाप्त कर मणिपाल ने पण्डित शिवकुमार की अपेक्षा आनन्द से बात करनी आरम्भ कर दी। उसने कहा—"वैरागीजी! आप उसके बाद फिर हस्तिनापुर नहीं पधारे। आप तो वहाँ अपने प्रचार का केन्द्र स्थापित करना चाहते थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं ग्राना तो चाहता था, किन्तु मुझे ऐसा लगा कि मेरे हस्तिनापुर ग्राने पर ग्राप मेरे तिरस्कार का संकल्प किये हुए हैं, इसलिये मैंने ग्रपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया।"

"यह ग्रापको किसने कहा है?"

उस समय मणिपाल को ग्रपना महारानी सरस्वती से उसके पुत्र के सम्बन्ध में हुग्रा परस्पर का वार्तालाप स्मरण हो ग्राया। उस समय उसने ग्रपनी पत्नी को यह भी कहा था कि वह कभी वैरागी को हस्तिनापुर ग्राने का निमन्त्रण देगा ही नहीं ग्रौर संयोग से वह यदि यहाँ ग्रा भी गया तो उसको राजप्रासाद में स्थान नहीं दिया जायेगा ग्रपितु उसको रघुनाथ मन्दिर में टिका दिया जायेगा।

इस स्मरण के ग्राते ही राजा मणिपाल समझ गया कि योगिराज ग्रपने योगबल से यह जान गया होगा। तदपि वह जानना चाहता था कि जिस कारण से मणिपाल को यह निश्चय करना पड़ा था उसके विषय में भी वैरागी जानता है ग्रथवा कि नहीं इसलिये उसने यह प्रश्न किया था।

उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए ग्रानन्द ने कहा—"किसी ग्रन्य व्यक्ति ने नहीं कहा है। ग्रापका जो यह मन है न, यह सारे चित्र स्पष्ट प्रस्तुत कर देता है।

"इसी कारण मैंने ग्रपने कार्य का केन्द्र उज्जयिनी बना लिया है। यद्यपि मेरा विचार तो शिवपुरी को केन्द्र बनाने का था, किन्तु जब मैंने देखा कि मल्ल-नरेश तो विदिशा से साँठ-गाँठ कर रहे हैं तो मैंने वहाँ केन्द्र बनाने का विचार त्याग दिया। मैं वहाँ से उज्जयिनी जा पहुँचा।

"उज्जयिनी के महाराजा को ग्रपने सांस्कृतिक कार्य के ग्रनुकूल देख मैंने वहाँ पर केन्द्र स्थापित कर लिया है। हस्तिनापुर ग्राकर ग्रापको कष्ट देने का विचार भी मैंने छोड़ दिया।"

मणिपाल ने जब ग्रपने मन की बात ग्रौर महारानी के कथन को ग्रक्षरशः वैरागी के मुख से सुना तो वह ग्राश्चर्यचकित रह गया। उसने मूल बात का वर्णन करते हुए कहा—"महारानी सरस्वती ने एक ग्रति सुन्दर ग्रौर ग्रोजस्वी पुत्र को जन्म दिया है।"

"ग्रापका एक ग्रन्य पुत्र भी तो हो गया है?"

"हाँ भगवन्! ग्राप तो बहुत कुछ जानते हैं। कृपया यह तो बताइये कि ग्रापने मेरे कार्यक्षेत्र में वह निर्माण कब ग्रौर क्यों किया?"

यह सुनकर ग्रानन्द के मुख पर मुस्कराहट खेल गई। उसने कहा, "ग्रापके राजप्रासाद को प्रकाशित करने के लिये यह किया गया है। परन्तु यह वैसे नहीं हुग्रा, जैसे महारानीजी ने ग्रापको बताया है।"

"तो फिर?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हुआ यह कि महारानीजी मुझसे अपनी वासना की तृप्ति करवाना चाहती थीं। मेरी इसमें रुचि नहीं थी। मैंने समझा कि महारानीजी पुत्र की अभिलाषा करती हैं, किन्तु इसके लिये वे अयोग्य हैं। उनकी डिम्बग्रन्थियों में डिम्ब निर्माण होता ही नहीं था। इस कारण मैंने उनके पुत्र-निर्माण की अभिलाषा को ध्यान में रख बिना उनको कष्ट दिये एक जीव उनके गर्भाशय में निर्माण कर दिया। ऐसा तो किसी के भी साथ कर सकता हूँ।

"केवल इच्छा-मात्र से मैंने ऐसा कर दिया। ईश्वर की कृपा रही कि वह बालक सुन्दर और ओजस्वी हुआ है। यदि आपने तथा महारानी ने उसकी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध किया तो वह मेरे कार्य को चालू रखने के लिए वैरागी हो जायेगा।

"परन्तु यह तो अभी भविष्य के गर्भ में ही है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र होने के कारण, वह भविष्य में क्या करेगा, इस विषय में कोई पूर्व घोषणा नहीं की जा सकती।

"मैं इस समय तो इतना ही बता सकता हूँ कि ईश्वर ने उसका कुछ इस प्रकार का बौद्धिक विकास किया है जिससे वह योगी बने। तदपि इस विषय में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।"

"तो इसका यह अभिप्राय है कि महारानीजी के साथ आपका सहवास हुआ ही नहीं?"

"इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। मैं जिस पत्नी को त्रिविष्टप में छोड़कर आया हूँ वह सरस्वती बहिन से कहीं अधिक सुन्दर, सुपठित, सभ्य और सुशील है। उससे भी मेरा सम्बन्ध केवल मानसिक कल्पना मात्र ही था। वह उसके परिणामों से सन्तुष्ट और इच्छा से तृप्त रहती थी।"

अपने पूर्व के संस्कारों को मन से निकालने का यत्न करते हुए मणिपाल ने कहा, "आप हस्तिनापुर कब आयेंगे?"

"मैं यत्न करूँगा कि शीघ्र ही वहाँ आकर ईश्वरीय विभूति के दर्शन करूँ। परमात्मा ने अपनी सामर्थ्य से अमैथुनीय सृष्टि का निर्माण किया है। इस सृष्टि-रचना के आरम्भ में भी उसने ऐसा ही किया था।

"सृष्टि-रचना के आरम्भ में भूमि बन्ध्या स्त्री की ही भाँति थी। ईश्वर की कृपा से वह उर्वरा हो गई और फिर सूर्य के सहयोग से निर्माण-कार्य आरम्भ हो गया। कुछ ऐसा ही महारानी सरस्वती में भी हुआ है और उसके परिणामस्वरूप यह ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ है।"

बिना पिता के सन्तानोपत्ति का वृत्तान्त जानकर मणिपाल ने पूछा, "ऐसा कहीं अन्यत्र भी होता देखा गया है?"

"हाँ, ऐसा होता तो है, किन्तु ऐसे उदाहरण बिरले ही होते हैं; क्योंकि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति में पुरुष अपनी पत्नी को कुलटा समझकर उसका बहिष्कार कर देते हैं। कहीं स्त्री के सहायक मिल जाते हैं तो ऐसी सन्तान वृद्धि करती हुई विभूतिसम्पन्न हो जाती है।

"महाराज! यहूद देश में मैं ऐसी ही एक अन्य घटना देखकर आया हूँ। मुझे एक दिन स्वप्न आया कि वहाँ एक गाँव में ईश्वर का पुत्र जन्म लेने वाला है। उसकी रक्षा और शिक्षा-दीक्षा के लिए मुझे वहाँ जाना चाहिए।

"उस स्वप्न को मैंने ईश्वरीय आदेश माना और उस देश को चल पड़ा। बच्चा होने से कुछ समय पूर्व ही मैं उस स्थान पर पहुँच गया। वह स्थान यहूद देश की राजधानी यरुशलम की एक सराय था। बालक का जन्म हो गया, किन्तु उस समय मुझे ज्ञान नहीं था कि वह पुत्र बिना पिता के है।

"परन्तु उसके कुछ दिन बाद कुमारी माता के पिता ने बताया कि उसकी कन्या निर्दोष तथा पवित्र है। यद्यपि वह भी अपनी कन्या के दुराचारिणी होने का सन्देह करता था, किन्तु एक रात परमात्मा ने स्वप्न में आकर उसको बताया कि यह पुत्र परमात्मा की देन है।

"वे पिता-पुत्री यहूद देश के नजरथ ग्राम के रहने वाले थे। यद्यपि स्वप्न की बात पर पिता को विश्वास तो नहीं था, इस पर भी वह अपनी कन्या को प्रसव के लिए देश की राजधानी यरुशलम ले गया। मैंने पिता-पुत्री को यरुशलम की उस सराय में ही देखा और मैं समझ गया।

"मैंने पिता, पुत्री और नवजात की सहायता की। वे जब वहाँ से अपने गाँव गये तो मैं भी उनके गाँव चला गया। पाँच वर्ष तक मैं उनके गाँव में रहा था। वहाँ मैं उसकी सहायता के लिये ही गया था और वह सहायता मैं करता रहा। मैंने यत्न किया था कि उस पुत्र को मैं भारतवर्ष ले आऊँ, किन्तु सफलता नहीं मिली। वह बालक भी बड़ा ओजस्वी, तेजस्वी और सुपुष्ट था। मुझसे वह सन्तुष्ट तो था किन्तु अपनी माता को छोड़कर मेरे साथ आने को उद्यत नहीं हुआ और न ही माता ने उसे अकेले मेरे साथ भेजा।

"इस प्रकार मैं उसको लिये बिना वापस गया। मुझे ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि भारत पर संकट आने वाला है। इसलिये उस अवसर पर मैं उसकी सहायता करने के लिये यहाँ आ गया था।

"मैं कुछ ऐसा समझ रहा हूँ कि मनुष्य ईश्वरीय शक्ति से प्रकाशित होता हुआ भी अपने मन और बुद्धि का ही अनुसरण करता है। जो कुछ मैंने यहूद में होता देखा, वही सब भारत में भी हो रहा है।

"पिताजी की यह योजना है कि भारतवासियों को गान्धार पार कर असुर देश में ही हूणों का विध्वंस कर दिया जाए। परन्तु यह होता प्रतीत नहीं होता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या मनुष्य परमात्मा की आज्ञा की भी अवहेलना कर सकता है ?"

"परमात्मा तो आज्ञा देता नहीं। यदि वह स्वामी की भाँति आज्ञा देने लगे तो फिर तो मनुष्य के भले-बुरे कार्यों का उत्तरदायी वह स्वयं हो जायेगा। जीवात्मायें स्वतन्त्र हैं। उनको सामर्थ्य तो परमात्मा की मिली हुई है परन्तु कर्म करने में वह स्वतन्त्र हैं। इसलिये जीवात्मा जो कुछ करता है वह उसके अपने मन की बात होती है।

"यही कारण है कि मनुष्य जो फल भोगता है वह उसके अपने कर्मों का फल होता है।"

मणिपाल की समझ में यह गोरखधन्धा समाया नहीं। वह विस्मित-सा आनन्द का मुख देखता रहा।

शिवकुमार इन दोनों के वार्तालाप को समीप बैठा हुआ सुन रहा था। उसने महाराज का समाधान करते हुए कहा, "देखिये महाराज ! आप अपने कर्मों के फल के लिये स्वयं उत्तरदायी हैं। अपने कष्ट का निवारण भी आप स्वयं ही कर सकते हैं। ईश्वर मनुष्य की सहायता अवश्य करता है, परन्तु वह हाथ पकड़कर किसी से कर्म नहीं कराता।"

इस प्रकार की अनेक बातें होती रहीं और जब सूर्यास्त का समय हो गया तो शिवकुमार और आनन्द अपने निवास को लौट आये।

इस घटना के कुछ दिन बाद की बातें है कि एक दिन पण्डित शिवकुमार अपने आगार में बैठे थे कि महाराज का सेवक उनको बुलाने के लिये आया।

उसको आया देख पण्डितजी ने उसकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा तो वह बोला—"भगवन् ! महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पण्डितजी महाराज के निवास पर जा पहुँचे। महाराज की बैठक में पहुँचने पर प्रणामोपरान्त महाराज ने पूछा, "पण्डितजी ! हस्तिनापुर से मणिपाल का कोई समाचार मिला है ?"

"हाँ महाराज ! इधर राजनीतिक नाटक खेला जा रहा है तो उधर मानवी नाटक की झलक मिली है। मैं उसका अर्थ समझ रहा हूँ।"

"पुष्यमित्रों का प्रतिनिधि यहाँ बातचीत करने के लिये आया है। वह कल प्रातःकाल तक यहाँ से वापस हो जाना चाहता है। इस कारण हम चाहते हैं आप उससे मिलकर बात कर लीजिये। कृपया यह भी जानने का यत्न कीजिये कि उनकी ओर से क्या सम्भावनायें हो सकती हैं। हम उनका समाधान किस प्रकार कर सकते हैं, यह तो आप स्वयं ही समझ सकते हैं।"

"महाराज ! आप यह भी बताइये कि आप किस सीमा तक जाना चाहते हैं?"

"हम तो चाहते हैं कि उनको सर्वथा निस्तेज कर दिया जाए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, मैं अभी उनसे मिलने के लिये जा रहा हूँ।"

पण्डित शिवकुमार वहाँ से उस आगार की ओर चला गया जहाँ पुष्यमित्रों के प्रतिनिधियों को ठहराया गया था।

पण्डित शिवकुमार ने द्वार पर जाकर देखा कि दो ब्राह्मण देवता जलपान कर रहे हैं। जबकि उस समय सन्ध्या का समय हो रहा था और दीपक जल चुके थे।

पण्डित शिवकुमार ने द्वार पर खड़े होकर कहा, "मैं मगधराज का प्रतिनिधि हूँ। क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?"

"पधारिये श्रीमन्! क्या शुभ नाम है आपका?"

"मैं पण्डित शिवकुमार न्यायशास्त्री हूँ। महाराजाधिराज ने मुझे आपके पाटलिपुत्र में पधारने का उद्देश्य जानने के निमित्त भेजा है।"

उन दो में से एक ने शिवकुमार को उत्तर देते हुए कहा, "हमारी ब्राह्मण सभा चाहती है कि मगधराज पुष्यमित्रों से सन्धि कर लें।"

"ये पुष्यमित्र कौन हैं? मैंने तो सुना था कि महाराज पुष्यमित्र की कोई भी सन्तान जीवित नहीं है?"

"जी हाँ, उनके परिवार में तो कोई राजा रहा नहीं। तदपि महाराज के वंश के लोग तो हैं। उनके वंश की एक कन्या के पुत्र हैं राधारमण। उन्होंने एक सुदृढ़ सेना का निर्माण कर लिया है और देश-भर के ब्राह्मण उनका समर्थन और सहायता कर रहे हैं।"

"ब्राह्मणों को उसके समर्थन से क्या लाभ होने वाला है?"

"ब्राह्मणों को उसके राज्य प्राप्त करने पर वही लाभ होगा जो किसी क्षत्रिय को क्षत्रिय के राज प्राप्त करने पर होता है।"

"परन्तु क्षत्रिय लोग तो अवसर आने पर अपने राजा के लिये जीवन-मरण की बाजी लगाकर युद्ध करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। क्या आपके ब्राह्मण भी उसी प्रकार जीवन-मरण की बाजी लगाकर अपने राजा के लिए तैयार हो सकेंगे?"

इस समय अंग देश का दूत बोला, "देखिये पण्डितजी! यह तो आप जानते ही हैं कि समय आने पर महाराज पुष्यमित्र ने युद्ध किया था और उस युद्ध में उन्होंने सीरियन की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था। न केवल इतना अपितु उन्हें देश छोड़कर जाने के लिये विवश कर दिया था।"

"वह तो सेना ने किया था और सेना में सब क्षत्रिय थे, कोई ब्राह्मण नहीं था।

"क्या इस समय भी आपकी जो सेना है, उसमें अधिकांश सैनिक क्षत्रिय वर्ण के हैं?"

"हमारी सेना में क्षत्रिय वर्ण के सैनिक हैं तो, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।

"एक विशेष बात यह भी है कि अंगराज हमारी सहायता कर रहे हैं तथा देशभर के अन्यान्य राजा-महाराजा भी हमारी सहायता के लिए तत्पर हो रहे हैं।"

"मैं तो समझता हूँ कि जब वास्तविक युद्ध होगा, उस समय ये सब लोग आपके राजा राधारमण को मझधार में छोड़कर किनारा काट जायेंगे।"

"क्यों?"

"इसलिये कि पुष्यमित्र के युद्ध की जिस समय की आप बात कर रहे हैं उस समय मगध के सिंहासन पर बौद्ध-मतावलम्बी राजा आसीन था। पुष्यमित्र ब्राह्मण था और वेदानुयायी था। वह चाहता था कि महाराज विदेशी आक्रमणकारी से युद्ध कर उसको इस देश की सीमा से बाहर खदेड़ दें। उस समय सैनिक भी यही चाहते थे।

"किन्तु महाराज ने युद्ध करना स्वीकार नहीं किया। तब सैनिकों के सामने ही पुष्यमित्र ने महाराज की हत्या कर दी और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

"उस समय सेना में सब सैनिक क्षत्रिय ही थे। वे युद्ध में गये और उन्होंने सीरियन को मार-मारकर इस देश से बाहर कर दिया।

"किन्तु अब स्थिति वैसी नहीं है। इस बार तो मगध-सम्राट विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लेने के लिये तत्पर हैं। इस कारण देश के क्षत्रिय मगधराज का साथ देने के लिये तैयार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में आपके राधारमण को किसी प्रकार की सफलता मिलना सम्भव नहीं है।

"राधारमण तो विदेशियों के साथ युद्ध का विचार ही नहीं कर रहा है। वह तो केवल ब्राह्मण राज्य की स्थापना करने के लिये यत्न कर रहा है और इसीलिये ब्राह्मण उसका साथ दे रहे हैं।

"ज्यों ही क्षत्रिय समाज को विदित होगा कि राधारमण अपने राज्य के लिये क्षत्रिय और ब्राह्मणों में वैमनस्य उत्पन्न कर रहा है, उसी समय वे उसकी सेना छोड़कर महाराज पाटलिपुत्र की सेना में आ मिलेंगे।"

"तो क्या आप यह समझते हैं कि क्षत्रिय निष्काम भाव से राज्य का संचालन करते हैं?"

"निष्काम भाव से तो कदाचित् नहीं करते, किन्तु कभी क्षत्रियों ने देश में वर्ग युद्ध भी तो नहीं किया? अब तक के सभी क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों का भली प्रकार पालन करते आये हैं। उसके साथ ही वे अपनी भी पालना करते हैं। किन्तु अपने देश में उन्होंने कभी वर्ग-संघर्ष नहीं चलाया।"

"यह सब मनगढ़न्त इतिहास है। महाराजाओं ने सूत प्रवृत्ति के लोगों को धन देकर अपने पक्ष की प्रशंसा करने की योजना चला रखी है। वैसे यह देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है कि जनता इन अनपढ़ ब्राह्मणों के प्रचार का आदर कर राजाओं की जय-जयकार करती है। हम इस प्रथा को छिन्न-भिन्न करने के लिये कटिबद्ध हैं।"

"आप इस क्षत्रिय नरेश से क्या अपेक्षा रखते हैं ?"

"हम चाहते हैं कि मगध राज्य में से एक सौ गाँव का एक क्षेत्र राजा राधा-रमण को दे दिया जाए। उसमें वह बुद्धिशील ब्राह्मणों का संगठन करके जनता को यह विश्वास दिला सके कि क्षत्रियों ने जो कुछ भ्रम फैला रखा है वह निराधार है। महाराज कुमारगुप्त किसी भी प्रकार अधिक योग्य और शौर्यवान् नहीं हैं।"

शिवकुमार मन-ही-मन हँस रहा था। उसने कहा, "आप अपने गुप्तचरों को मगध के कोने-कोने में भेजकर यह पता लगाइये कि किस कोने की प्रजा दुःखी है और वह ब्राह्मणों का राज्य चाहती है। तब हम उसके विषय में विचार कर लेंगे।"

"किन्तु यह तो राज्य स्थापित होने के उपरान्त ही सम्भव है। उससे पूर्व किस प्रकार ऐसा किया जा सकता है ? और फिर अभी तो वर्तमान महाराज का जादू ही लोगों के सिर पर चढ़ा हुआ है।"

"देखो भूमिपुत्र ! राज्य परीक्षणों के लिये नहीं बदला जा सकता। आप अपने राजा को जाकर कहिये कि पहले तो वह यह सिद्ध करे कि वह इस देश के किसी भी राजा की अपेक्षा कुशल प्रशासक है। उस अवस्था में मगध-सम्राट उस को अपने अधीन कोई क्षेत्र देने के विषय में विचार कर सकते हैं।"

"यह किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि कोई राजा कुशल प्रशासक है ?"

"महाराज कुमारगुप्त की सेवा स्वीकार कर किया जा सकता है। जब वह अपने नियत कार्य पर सफलतापूर्वक कार्य करने लगेगा तब उसको राज्यतिलक करके किसी क्षेत्र का नरेश बना दिया जायेगा।"

उनमें से एक ने बात को बदलकर कहा, "ठीक है, हम कल प्रातःकाल यहाँ से चले जायेंगे तथा जो कुछ आपने कहा है वह हम अपने महाराज को बता देंगे।"

"हाँ, यही उचित है।"

इतना कहकर पण्डित शिवकुमार वहाँ से उठकर जाने लगा, किन्तु सहसा रुककर उसने कहा, "आपके नामों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोग अंग देश के निवासी नहीं हैं। क्या आप बता सकते हैं आप किस देश के वासी हैं ?"

एक ने प्रतिप्रश्न किया, "आपने हमें किस देश का समझा है ?"

"आपमें से एक तो कोंकण के हैं और दूसरे स्थाणेश्वर के।"

दोनों को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। एक ने कहा, "आपकी बात ठीक है।"

"मैं तो यह जानना चाह रहा था कि आप यहाँ अंग देश में किस प्रकार आये हैं ? और फिर आपको इतने विश्वास का पद किस प्रकार प्राप्त हो गया है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसमें तो कोई आश्चर्य अथवा वैचित्र्य नहीं है। विदिशा में एक ब्राह्मण सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि हमें ब्राह्मण राजा राधारमण का समर्थन और सहायता करनी है। हम उसी के आधार पर उनका कार्य कर रहे हैं। हम एक वर्ष से राजा राधारमण की सेवा में हैं और उन को जब हम पर विश्वास हो गया तो फिर इस प्रकार के कार्यों पर लगा दिया है।"

"तो आप लोग शेष राष्ट्र से ब्राह्मणों का पृथक् ही राष्ट्र समझ रहे हैं?"

"पृथक् नहीं, अपितु हम ब्राह्मण समुदाय को शेष समुदाय से श्रेष्ठ समझते हैं।"

"आप लोगों ने वेद पढ़े हैं?"

"जी हाँ। वेद-वेदांगों का अध्ययन किया है।"

"उसमें कभी आपने यह भी पढ़ा कि नहीं कि ब्राह्मण समाज सिर और क्षत्रिय भुजायें हैं, वैश्य उरु हैं और शूद्र पाँव हैं?"

"हाँ, यजुर्वेद में इसका उल्लेख है।"

"तो आप सिर को बाँहों का कार्य करने के लिये तैयार कर रहे हैं?"

"जी नहीं। हम सिर को बाँहों पर शासन करने के लिये तैयार कर रहे हैं।"

"वह तो आप लोग कर रहे हैं। मैं आपके राजा राधारमण की बात कर रहा हूँ। यदि आप उन्हें ब्राह्मण मानते हैं तो उन्हें राजा बनाकर आप उन्हें समाजरूपी शरीर की भुजायें बना रहे हैं। इस प्रकार आप उनको वर्णसंकर बना रहे हैं।"

"वर्णसंकर तो वह बन चुका है। हम तो यह जानकर एक क्षत्रिय राजा का विध्वंस करने में लगे हैं।"

"ठीक है, यदि ऐसा करने की आप लोगों में सामर्थ्य है तो करिये। देखिये, मैं भी ब्राह्मण सन्तान हूँ। मैंने भी वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया है। मगधराज मेरे परामर्श से ही कार्य करते हैं। अर्थात् मैं समाज में शीर्ष की भाँति परामर्श देने का कार्य कर रहा हूँ।"

"यह तो हम आपके न्यायशास्त्री होने से ही समझ गये थे। परन्तु आप एक मूर्ख उच्छृंखल क्षत्रिय राजा का समर्थन कर रहे हैं।"

"मगधराज ने क्या उच्छृंखलता की है?"

"उन्होंने कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में साधु-सन्त-महात्माओं का अपमान किया है।"

"उन्होंने तो वहाँ खड्ग-भाले लेकर लड़ने-मरने आये नागा और गिरियों को केवल स्नान के लिये मरने नहीं दिया, यही न?

"आप लोग कुम्भ के अवसर पर उपस्थित थे या नहीं, मैं नहीं जानता, किन्तु मैं स्वयं वहाँ पर उपस्थित था। मैं आपको बताता हूँ। चार-पाँच सौ नागा साधु इस तुच्छ-सी बात पर मरने-मारने को तैयार हो गये कि सबसे पहले उनको स्नान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की अनुमति दी जाए। वे सम्भवतया इस प्रकार की योजना बनाकर ही हरिद्वार आये थे, क्योंकि उनके पास शस्त्रास्त्र थे।

"क्या वे महात्मा थे ? मैं तो उनको महात्मा नहीं कह सकता। शस्त्रास्त्र रखना क्षत्रिय का धर्म था। वे क्षत्रिय का कार्य कर रहे थे, साधु का नहीं। क्षत्रिय का भी वे अन्याययुक्त कार्य कर रहे थे, न्याययुक्त नहीं।"

"इस विषय में हमारा आपसे मतभेद है।"

"तो क्या इस मतभेद को मिटाने के लिए केवल रणभूमि ही एक उचित स्थान है ? मैं तो यही समझ रहा हूँ कि एक ही शरीर के हाथ-पाँव को नोच रहे हैं। यदि युद्ध हुआ तो क्षत्रिय ब्राह्मण सन्तान को ही इस धरती पर से निःशेष करने का यत्न करेंगे।"

यद्यपि अंग देश के दूत निरुत्तर हो रहे थे। उनमें से एक ने कहा, "इस समय तो लोहा गर्म है, उसे पीटना ही पड़ेगा।"

"ठीक है, यदि आपमें सामर्थ्य है तो यह भी करके देख लीजिये।"

"हम प्रातःकाल लौट रहे हैं। वहाँ पहुँचकर हम सारा वार्तालाप महाराजा को बता देंगे।"

शिवकुमार वहाँ से लौट आया।

राजप्रासाद में पण्डितजी की प्रतीक्षा हो रही थी। शिवकुमार ने वहाँ पहुँचकर अपने वार्तालाप का सारांश बताते हुए कहा, "ऐसा लगता है कि हमने अंगराज को जो पत्र भेजा था उसका यह परिणाम है। अंगराज ने कदाचित् इन लोगों से कहा है कि वे हमसे बात करके कुछ निश्चय कर लें।"

"तो फिर ?"

'अंग-नरेश को प्रातःकाल ही यह सूचना भेज देनी चाहिये कि हमें अपने गुप्तचरों से विदित हुआ है कि राजा राधारमण ने एक बहुत विशाल सेना एकत्रित कर ली है। हमें यह भी सूचना मिली है कि अंग-नरेश मगध पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं।

"अंग देश में इस प्रकार की स्वतन्त्र सेना का होना विस्मयकारक है तदपि हम अंग देश के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप न करते हुए यह कहना चाहते हैं कि यदि अंग देश की सेना ने मगध की भूमि पर पग भी रखा तो उस सेना का पूर्ण संहार कर दिया जायेगा।

"अंग देश की सेना के हमारे देश में प्रवेश के प्रतिकार में सम्भवतया हमारे सैनिकों को अंग देश में प्रविष्ट होना पड़ जाए, इसके लिये भी हम उत्तरदायी नहीं होंगे और वहाँ हमारी सेना जो प्रलंयकर युद्ध करेगी उसमें अंग देश की जो भी हानि होगी उसका उत्तरदायित्व आप पर होगा। यदि अंग देश की सेना ने हमारी सेना का किसी प्रकार विरोध किया तो अंग देश को शत्रु देश मानकर उसके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसा ही व्यवहार किया जायेगा।

"आपके ब्राह्मण अपने देश की सीमा के भीतर जो चाहे करें, किन्तु यदि उन्होंने हमारे राज्य में पग रखा तो हम उनको विनष्ट करने के लिये बाध्य होंगे। इसमें यदि आपकी सेना ने किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न की तो उसका जो परिणाम होगा उसके लिये भी उसको तैयार रहना चाहिये और उसके परिणामस्वरूप जो हानि होगी उसका उत्तरदायित्व आप अथवा आपकी सेना पर होगा।"

मगध-नरेश ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया और तदनुसार दूसरे दिन उसी प्रकार पत्र लिखकर अंग-नरेश के पास भेज दिया गया।

: ३ :

इधर मगध में एक अन्य पग उठाया गया। सेनाध्यक्ष को यह अधिकार दे दिया गया कि उसकी सेना में जितने भी ब्राह्मण सैनिक अथवा अधिकारी हैं, उन्हें छः मास का अग्रिम वेतन देकर उन्हें सेना की सेवा से मुक्त कर दिया जाए।

मगध की सेना को अंग की सीमा पर एकत्रित होने के भी आदेश दे दिये गये। उनको यह भी निर्देश था कि अंग देश से जो भी मगध में प्रविष्ट हो, यदि वह अनधिकारी है तो उसको पकड़कर वन्दी बना लिया जाए।

यदि अंग देश की ओर से किसी प्रकार की छेड़छाड़ होती है, उसको आक्रमण मानकर उस पर धावा बोल दिया जाए।

यह सारा कार्य प्रभात-वेला में सम्पन्न कर लिया गया।

महाराज कुमारगुप्त ने मध्याह्न के भोजन के समय पण्डित शिवकुमार को आमन्त्रित किया हुआ था। वे हस्तिनापुर के मणिपाल के विषय में उनसे विचार-विमर्श करना चाहते थे।

निश्चित समय पर जब पण्डितजी पधारे तो महाराज ने कहा, "हस्तिनापुर से मणिपाल का पत्र आया है। उनका कहना है कि वे भविष्य में हमको राजस्व नहीं देंगे। उन्होंने यह भी बताया है कि वे अपनी स्वतन्त्र सेना भी रख रहे हैं।"

"हाँ महाराज! जाते समय मुझसे भी उन्होंने इस प्रकार की बात की थी। मैं समझता हूँ कि उनको यह सम्मति दी जाए कि वर्ष में एक बार विजयदशमी के दिन वे पाटलिपुत्र में स्वयं उपस्थित होकर या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से, जो कि महामन्त्री ही हो सकता है, संकेत के रूप में एक पात्र भेंट में दे जाएँ। इसके साथ ही जब साम्राज्य की ओर से किसी प्रकार के युद्ध की बात आयेगी तो उनकी सेना भी उसमें सम्मिलित होकर साम्राज्य की सेना के रूप में युद्ध पर जायेगी। उसका व्यय साम्राज्य की ओर से वहन किया जायेगा।"

"हाँ, ऐसा ही कुछ मणिपाल ने लिखा है।"

"मेरी सम्मति है कि आपको मान जाना चाहिये। इन पुष्यमित्रों से यह हस्तिनापुर की सेना के विरुद्ध कार्य लिया जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित शिवकुमार ने भी हस्तिनापुर के राजा मणिपाल के नाम एक पत्र लिख दिया था। उसमें उनका यही कहना था कि मगध और हस्तिनापुर में सांस्कृतिक स्थिति समान होनी चाहिये। इसका अभिप्राय यह हुआ कि दोनों राज्यों का अस्तित्व समान हो। समान ढंग से विचार करें और फिर उस विचार के अनुरूप कार्य हो।

दोनों का आचार-विचार वेदानुसार होना चाहिये। इसलिये दोनों में धर्मशास्त्र-व्यवस्था, शास्त्र और राज्यशास्त्र समान होना चाहिये।

पण्डित शिवकुमार ने यह भी लिखा कि ऐसी संभावना है कि जिस समय अंग देश की सीमा पर युद्ध छिड़े उसी समय विदिशा कौशाम्बी पर आक्रमण करे। पिछले पचास वर्ष से यही उसका लक्ष्य रहा है। इस सम्भावना को रोकने के लिये हस्तिनापुर से सहायता की आवश्यकता पड़ेगी अतः हस्तिनापुर को इसके लिये तैयार रहना चाहिये।

इस प्रकार प्रबन्ध हो जाने पर कुमारगुप्त प्रसन्न था। उसे इससे शुभ परिणामों की सम्भावना थी। जो राज्य मगध साम्राज्य को कर देना बन्द कर चुके थे उनको पुनः साम्राज्य में सम्मिलित करने की सामर्थ्य कुमारगुप्त में नहीं थी। इस कारण स्वेच्छा से साम्राज्य में सम्मिलित होने का आश्वासन पाकर वह सामयिक संकट पार करने की आशा करता था। कुमारगुप्त के पिता के राज्य में सुव्यवस्था के कारण मगध सम्पन्न देश बन चुका था और प्रजा के साथ राजा भी धन-धान्ययुक्त हो रहा था।

इस कारण वह मणिपाल के विजयदशमी के समारोह में सम्मिलित होने और सबके सम्मुख मगध राज्य से सहयोग और सद्भावना के प्रदर्शन से देश में स्वस्थ परम्परा की आशा कर रहा था।

एक सप्ताह के भीतर छः सहस्र से अधिक ब्राह्मण सैनिकों को छः-छः मास का अग्रिम वेतन देकर अवकाश मिल जाने से पूर्ण मगध में सनसनी उत्पन्न हो गई। इनमें से अधिकांश सैनिक इसे सुअवसर जानकर अंग राज्य में ब्राह्मण आन्दोलन की सहायता को चल पड़े। मागधी सेना को भी यही आज्ञा थी कि जो ब्राह्मण सैनिक अथवा नागरिक अंग राज्य को जाना चाहें उनको जाने दिया जाए।

इस समय राज्य की सेना ने अंग राज्य से जाने वाले मार्ग अवरुद्ध कर दिये। मगध से अंग राज्य को जाने वालों को खुली छूट थी, परन्तु अंग राज्य से आने वालों को रोक लिया जाता था। यदि किसी के पास शस्त्रास्त्र होते तो उनको अधिकार में कर लिया जाता था।

जब यह निश्चय हो गया कि हस्तिनापुर और कौशाम्बी की सेना युद्ध में कूदने के लिए तत्पर है तो महाराजाधिराज ने शिवकुमार को कौशाम्बी और हस्तिनापुर के सैनिकों की पहुँच और उनके निवास का प्रबन्ध देखने के लिए भेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया।

पण्डित शिवकुमार कौशाम्बी पहुँचे तो आनन्द उनसे पूर्व ही वहाँ पहुँचा हुआ था। शिवकुमार तो जाकर राज्यप्रासाद में टिका था किन्तु आनन्द अपने मामा रामेश्वर के निवास पर टिका था।

एक दिन बिना पूर्व सूचना के पण्डित शिवकुमार बाजार में रामेश्वर के पुत्र महेश्वर की दुकान पर जा पहुँचा। पण्डित शिवकुमार को आया देख महेश्वर दुकान से बाहर आकर अपने फूफा के चरणस्पर्श करने लगा।

महेश्वर की कपड़े की दुकान थी और वह खूब चलती थी। जिस समय शिवकुमार दुकान के बाहर रथ से उतरा, दुकान पर ग्राहकों की भीड़ लगी हुई थी। महेश्वर का पुत्र राहुल तथा दुकान के कर्मचारी ग्राहकों से व्यवहार कर रहे थे।

ग्राहकों ने जब महेश्वर को दुकान से निकल रथ से उतरने वाले ब्राह्मण देव के चरणस्पर्श करते देखा तो वे समझ गये। राहुल और उसके कर्मचारी भी काम करते-करते रुक गये और उनके साथ ही सब ग्राहक भी पण्डित शिवकुमार की ओर देखने लगे।

उसका परिणाम यह हुआ कि चलते-फिरते लोग भी यों ही रुक गये और मार्ग पर एक प्रकार से भीड़-सी इकट्ठी हो गयी। लोग देख रहे थे कि रथ से उतरने वाले व्यक्ति के दुकानदार चरणस्पर्श कर रहा था। इस प्रकार भीड़ एकत्रित हो गयी और मार्ग अवरुद्ध हो गया।

शिवकुमार ने पूछा, "कहो, कैसे हो?"

"रात पिताजी ने बताया था कि आप शीघ्र ही पाटलिपुत्र से इधर आने वाले हैं। राजसी रथ को देख मैं यही समझा कि आप पधार गये हैं और फिर आपको इसी स्थान पर रथ से उतरते देखा तो मुझे असीम प्रसन्नता होने लगी थी। मुझे यहीं आपके चरणस्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया है।"

"मैं बाजार और मण्डी की दशा देखने के लिए आया था। जब बाजार में आया तो फिर मुझे तुम्हारा ध्यान आ गया। मैंने रथवान को इस ओर ले चलने के लिए कह दिया।"

"फूफाजी! अपनी चरणरज दुकान पर डाल दीजिये, जिससे कि दुकान पवित्र हो जाए।"

"खैर, चलो, तुम्हारी दुकान पर तो आ ही रहा हूँ।"

राहुल ने जब देखा कि उसका पिता अतिथि को दुकान पर ला रहा है तो वह द्वार पर आ गया। उसे देख अन्य ग्राहक भी जो बैठे थे, उठकर खड़े हो गये। शिवकुमार घड़ी-भर दुकान पर रहा।

थोड़ी देर इधर-उधर बाजार में घूमघामकर शिवकुमार रामेश्वर के घर जा पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमुखी ने उसको प्रणाम किया और फिर सीधा पूछने लगी, "तो आप अभी तक भी गृहस्थ के ही वस्त्र धारण किये हुए हैं ?"

"हाँ देवि ! मेरे जैसे मनुष्य का भी अपने कर्मों पर अपना अधिकार नहीं है। मैं संन्यास लेने काशीजी पहुँचा ही था कि वहाँ मगध-सम्राट कुमारगुप्त मिल गये। वह मुझे प्रेरणा देकर पाटलिपुत्र ले गये। वहाँ राज्य की अवस्था और आवश्यकता का वर्णन कर मुझे राज्य का परामर्शदाता बनने के लिए विवश कर दिया।

"मैंने भी यही उचित समझा कि संन्यास लेकर एकान्तवास करने की अपेक्षा पुनः पाटलिपुत्र की हलचल का मार्गदर्शन करना अधिक उपयुक्त होगा।"

"इसका अभिप्राय यह हुआ कि आप पुनः राजसेवा में पहुँच गये हैं ? अर्थात् घूम-घुमाकर वहीं जहाँ साठ वर्ष पूर्व थे। अब कहाँ निवास बनाया है ?"

"अब तो राजप्रासाद में ही ठहरा हूँ। परामर्शदाता तो लगभग आठों प्रहर सम्राट और साम्राज्य की देख-रेख में संलग्न रहता है।"

"मुझे आप पर दया आने लगी है।"

"हाँ, अवस्था तो दयनीय ही है, परन्तु अनिवार्यता हो गयी है। हमारा हरिद्वार में आरम्भ किया हुआ कार्य विफल हो गया है। अब उसको नयी दिशा देने की आवश्यकता हो गयी थी।"

चन्द्रमुखी की राजनीति में किसी प्रकार की रुचि नहीं थी। इस कारण वह पति के स्वास्थ्य और भोजनादि के प्रबन्ध के विषय में पूछने लगी। शिवकुमार ने कहा, "मेरी भेंट महाराजाधिराज से प्रायः भोजन के समय ही हुआ करती है। उसी समय मैं राजकार्य का परामर्श दिया करता हूँ। एक वर्ष के अनवरत प्रयत्न से राज्य का सूत्र ठीक दिशा में कार्य करता प्रतीत होने लगा है। यहाँ भी राज्य-कार्य से ही आया हूँ। महाराज सुरेन्द्रमणि से मिलकर कुछ माँगने आया हूँ।

एकाएक महेश्वर ने शिवकुमार को बताया कि आजकल आनन्द भैया भी यहीं आये हुए हैं और उसके निवास पर ही ठहरे हुए हैं। शिवकुमार ने उसके विषय में पूछा तो चन्द्रमुखी बोली, "वह इस समय पुष्यमित्र वालों से मिलने के लिए गये हुए हैं।"

"तब तो उससे भी मिलना होगा।"

रामेश्वर की पत्नी भी वहाँ पर आ गयी थी। उसने चरणस्पर्श किये और कहने लगी, "जीजाजी ! कम-से-कम यह तो अच्छा ही है कि आपने अभी संन्यास नहीं लिया है। किन्तु आनन्द भैया तो संन्यास लेकर भी बाँझ औरतों को पुत्ररत्न प्रदान कर रहे हैं।"

शिवकुमार हँस पड़ा। पूछने लगा, "किसको पुत्र दिया है ?"

"पुत्र अभी हुआ तो नहीं है। हाँ, गर्भ तो स्थित हो ही गया है। मैं भली प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानती हूँ कि वह स्त्री बाँझ थी। कई वर्ष से वह रजस्वला भी नहीं हुई थी। एक दिन वैरागीजी से मिलने के लिए आयी और अपने पति से अनबन का वर्णन करने लगी। उन्होंने उससे अनबन का कारण पूछा। उसने बताया कि वह सन्तान-विहीन है। यही उनकी अनबन का भी कारण है। वैरागीजी महाराज ने कह दिया, सन्तान तो उसके होने वाली है किन्तु उसकी देख-रेख ठीक ढंग से न की गयी तो वह परिवार में उपद्रव भी उत्पन्न कर सकती है।

"मेरी समझ में तो यह बात आयी नहीं। यहाँ तक कि मैं ही नहीं अपितु वह स्त्री भी इसको हँसी की बात समझ रही थी। किन्तु आज वह स्त्री आकर मुझसे कह रही थी कि उसके पेट में हलचल-सी हो रही है।

"मैंने वैरागीजी से पूछा तो वे कहने लगे कि एक महात्मा इस संसार में आ रहा है। मेरा काम तो उसका मार्ग प्रशस्त करना था, वह मैंने कर दिया है।

" 'यह कैसे हो गया ?'

" 'ईश्वर की कृपा का फल है।' "

यह सुनकर शिवकुमार ने कहा, "मैं जानता हूँ। इसी प्रकार एक बालक को वैरागीजी ने हस्तिनापुर में भी जन्म दिलवाया है।"

"इससे तो ऐसा लगता है, वे गधे को मोती परोस रहे हैं। अनधिकारियों को सन्तान देकर वे ईश्वर के विधान के विपरीत कर रहे हैं।"

"नहीं बहिन ! ऐसी बात नहीं है। बिना परमात्मा के सहयोग और माता-पिता की उत्कट इच्छा के सन्तान तो किसी के भी उत्पन्न नहीं हो सकती। आनन्द वैरागी तो केवल अपनी दूर-दृष्टि से देख लेता है कि क्या होने वाला है और वह उसका वर्णन कर देता है। वास्तव में सन्तान का निर्माण आरम्भ होने के उपरान्त ही वह अपनी भविष्यवाणी करता है।"

रामेश्वर का पत्नी सुभद्रा समझ गयी कि आनन्द को यह दूर-दृष्टि योग-साधना से प्राप्त हुई है। तो भी घटना के इस प्रकार के विश्लेषण के विषय में आनन्द से जानना चाहती थी। इसलिये वह इस समय चुप ही रही।

शिवकुमार हस्तिनापुर की सेना का शिविर स्थान देखकर कौशाम्बी पहुँचा था। स्थान नगर से दूर यमुना तट पर था। वहाँ पर लभगग दस सहस्र सैनिकों के ठहरने के लिए भूमि को समतल किया गया था और डेरे लगा दिये गये थे। सैनिक आने आरम्भ नहीं हुए थे।

महाराज कुमारगुप्त की आज्ञा यह थी कि हस्तिनापुर अधिकारियों का प्रबंध देख उसमें कौशाम्बी के सहयोग की व्यवस्था कर दे। महाराजाधिराज का विचार था कि कम-से-कम दो वर्ष तक तो यह शिविर यहाँ पर रखना ही पड़ेगा। महा-राजाधिराज यह भी जानना चाहते थे कि यदि शिविर का व्यय वहन करना हस्तिनापुर के सामर्थ्य की बात न हो तो वे यह भी अनुमान लगायें कि इसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगध से कितनी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है।

शिविर से पता करने पर शिवकुमार को ज्ञात हुआ कि शिविर को चालू होने में अभी एक मास का समय और लगेगा।

इससे मन में यह विचार कर कि शिविर के अधिकारियों से मिलकर और उनकी आवश्यकताओं को जानकर ही वह वहाँ से आगे जायेगा। इस कारण मन में एक मास से अधिक वहाँ रहने का विचार कर वह नगर को लौट आया था।

शिवकुमार शिविर से नगर लौटा तो उस समय आनन्द भी अपने कार्य से वापस आ गया था। आनन्द नित्य की भाँति सायंकाल नगर के मध्य में महाभारत की कथा पर अपने प्रवचन करने लग गया था। इस समय वह प्रवचन करने के लिए ही गया हुआ था। शिवकुमार भी सामान्य श्रोता बन नगर के चौक की ओर चल पड़ा था।

शिवकुमार ने देखा कि चौक पर नागरिकों की अपार भीड़ एकत्रित है। चौक में भद्रकुमार की दुकान के बाहर विशाल मंच बना हुआ था। मंच पर स्थानीय वैरागी मठ के कुछ साधु बैठे थे और उनके ही बीच में आनन्द वृहस्पति भी बैठा हुआ था। जिस समय पण्डित शिवकुमार वहाँ पहुँचा, वहाँ उस समय एक स्थानीय पण्डितजी मंगलाचरण गान कर रहे थे।

शिवकुमार भीड़ में एक स्थान पर एक कोने पर जाकर चुपचाप खड़ा हो गया।

आनन्द की पैनी दृष्टि उस पर पड़ गयी। उसने दूर से ही उसको देख लिया था। उसने समीप खड़े एक गृहस्थ को अपने पास बुलाया और उसके कान में कुछ कहा। वह गृहस्थ वहाँ से उठ मंच के पीछे से निकलकर उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ पण्डित शिवकुमारजी खड़े थे।

मंच पर होने वाली इस हलचल को पण्डित शिवकुमार ने भी देख लिया था और वह समझ रहा था कि यह क्या हो रहा है। यह देखकर शिवकुमार ने अपना स्थान बदल लिया।

आनन्द ने अपने पिता को स्थान बदलते देख लिया था। जब वह गृहस्थ पण्डित को लिये बिना मंच पर पहुँचा तो उसको हँसी आ गयी।

तब तक मंगलाचरण समाप्त हो गया था। आनन्द ने अपना प्रवचन आरम्भ करने से पूर्व कहा, "कौशाम्बी के नागरिकों के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि इस देश के एक महान् विद्वान् व्यक्ति इस समय यहाँ विराजमान हैं। वे भूत-पूर्व मगध-सम्राट महाराज समुद्रगुप्त के महामात्य, त्रिविष्टप में शिक्षा विभाग के अध्यक्ष, त्रिविष्टप-मगध युद्ध में त्रिविष्टप की विजयी सेना के सेनाध्यक्ष और वर्तमान में महाराज कुमारगुप्त के राजपुरोहित पण्डित शिवकुमारजी महाराज हैं। वे इस समय यहाँ इस सभा में विराजमान हैं। मेरा उन श्रीचरणों में विनम्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन है कि वे मंच पर पधारकर कौशाम्बी की जनता को अनुग्रहीत करें।

"नागरिकों से प्रार्थना है कि वे उनके आने के लिए मार्ग बना दें।"

इतना कहकर आनन्द ने उस ओर संकेत किया जिस ओर शिवकुमार छिपकर खड़ा होने का यत्न कर रहा था।

जब आनन्द ने इस प्रकार उंगली से संकेत किया तो उस ओर के लोग अपने समीप खड़े लोगों को देखने लगे। शिवकुमार के ओजस्वी मुख को देखकर ही लोग समझ गये कि किस व्यक्ति की ओर वैरागीजी का संकेत है।

विवश पण्डित शिवकुमार को आगे बढ़ना पड़ा। वे आगे बढ़ते जा रहे थे और लोग उनके लिए मार्ग छोड़ते हुए उनको प्रणाम भी करते जा रहे थे। पण्डितजी का जो परिचय दिया गया था और जो तेज उनके मुखमण्डल पर चमक रहा था, वह उनको सम्मान दिलाने के लिए पर्याप्त था। इस प्रकार पण्डितजी शीघ्र ही मंच पर पहुँचा दिये गये।

मंच पर पहुँच पण्डितजी ने कहा, "मैं तो चुपचाप तुम्हारा प्रवचन सुनना चाह रहा था।"

"और मैं चाहता था कि हमारे कार्यक्रम को महाराजाधिराज का संरक्षण प्राप्त हो जाए।"

अधिक वार्तालाप न कर आनन्द वैरागी ने अपना प्रवचन आरम्भ कर दिया।

लगभग अढ़ाई घड़ी तक आनन्द अपने प्रवचन के माध्यम से उपस्थित जनता को महाभारत के युद्ध के कारणों के विषय पर समझाता रहा। उसका कहना था कि ब्राह्मण वर्ग का पतन तो महाभारत के काल से पूर्व ही आरम्भ हो गया था। महाभारत के काल में यह पतन ब्राह्मण वर्ग से क्षत्रिय वर्ग में आना आरम्भ हो गया था और क्षत्रियों के पतन के कारण ही महाभारत के युद्ध की भूमिका बनी।

यदि विकृत विचार निम्न वर्ग के लोगों अथवा जातियों में व्यापक हो तो उसका प्रभाव उस वर्ग तक ही सीमित रहता है, वह आगे नहीं बढ़ पाता। उच्च वर्ग की ओर जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हाथ-पैर इत्यादि शरीर के निम्न अंगों में जो विकार अथवा रोग सामान्यतया हाथ-पैर को ही प्रभावित करते हैं, यद्यपि कष्ट सारे शरीर को होता है, परन्तु जब शरीर के शीर्ष में रोग व्याप्त हो तो पूर्ण शरीर ही उस रोग से पीड़ित हो उठता है।

भारतीय समाज में भी कुछ ऐसा ही हुआ। भारत में ब्राह्मण का बड़ा मान किया जाता था, किया जाता है और भविष्य में भी किया जाता रहेगा। ब्राह्मण-वर्ग को सर्वोत्तम सुख-सुविधा देने का भी यत्न किया जाता रहा है। वह इस कारण कि ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् को राष्ट्र का मस्तिष्क माना गया है।

परन्तु जब मस्तिष्क ही रुग्ण हुआ तो रोग शरीर के अन्यान्य अंगों में भी व्याप्त हो गया। उसका परिणाम ही महाभारत का युद्ध हुआ और कुरुक्षेत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठ-दस कोस के स्थान पर एक करोड़ के लगभग देश के चोटी के मेधावी शूरवीर योद्धा एकत्रित होकर युद्ध-प्रवृत्त हो गये। इसमें उन योद्धाओं अर्थात् क्षत्रियों को दोष नहीं देना चाहिए। दोष का मूल तो ब्राह्मण समाज में था। क्षत्रिय वर्ग तो ब्राह्मण का अनुयायी था। जिस प्रकार मानव शरीर में मस्तिष्क के अधीन उसके अन्यान्य अवयव कार्य करते हैं उसी प्रकार क्षत्रिय समाज ब्राह्मण समाज का अनुकरण करता रहा।

ऐसी ही कुछ स्थिति वर्तमान समय में उत्पन्न हो गयी है। ब्राह्मण वर्ग ने एक वार पुनः इसी प्रकार संकट हमारे समाज में उत्पन्न करने का यत्न किया है। विदिशा के राज्यपरिवार ने मगध से उसके अपने निजी विवाद में ब्राह्मण वर्ग को अपना अग्रणी वनाकर उस विवाद को तूल देना आरम्भ कर दिया है।

ब्राह्मण वर्ग की इस प्रवृत्ति को समय पर न रोका गया तो भविष्य में इसका भयंकर परिणाम न केवल ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वर्ग के लिए या मगध अथवा विदिशा के लिए अपितु समस्त देश के लिए होगा। ब्राह्मणों का पद समाज के सिर के समान है। सिर यदि हाथ-पैर का कार्य करने लगेगा तो सिर का स्थान पैर ले लेंगे और उसका फिर वही परिणाम होगा जो महाभारत के युद्ध के समय अथवा उसके उपरान्त हुआ था। धरती जन-विहीन हो जायेगी।

महाभारत का युद्ध दुर्योधन और युधिष्ठिर की मूर्खता के कारण हुआ था। उनमें मूर्खता का समावेश इस कारण हो गया था, क्योंकि ब्राह्मण ने मस्तिष्क का कार्य छोड़कर हाथ-पैर का कार्य करना आरम्भ कर दिया था।

इसीलिये यहाँ पर सम्पूर्ण राष्ट्र के शरीर की बात की जा रही है। समय रहते विकृत मस्तिष्क की चिकित्सा यदि कर ली जाए तो यह विचारशील यन्त्र कार्य करने के लिए बाध्य हो जायेगा अथवा इसको बाध्य कर दिया जायेगा। राष्ट्र को फिर मस्तिष्क के आदेश पर कार्य करने के लिए उद्यत किया जायेगा। किन्तु सर्वप्रथम जो कार्य है वह मस्तिष्क को स्वस्थ और सबल करना है।

इस प्रकार आनन्द वैरागी ने युक्ति और अनेकानेक प्रमाणों के माध्यम से अपने कथन की पुष्टि की। उसकी वाणी में मधुर रस था। मुख पर ओज तो उसके योगाभ्यासी होने के कारण स्वाभाविक ही था। अब वह वैरागी भी हो गया था। इस कारण सहस्रों की संख्या में उस चौक पर एकत्रित जनसमुदाय मन्त्रमुग्ध होकर उसके प्रवचन को सुनता रहा था और ब्राह्मण वर्ग के वर्तमान व्यवहार की बात सुनकर उनके मनों में क्षोभ भी उत्पन्न हो रहा था।

: ४ :

प्रवचन समाप्त कर दोनों पिता-पुत्र एक साथ ही रामेश्वर के घर को गये। सुभद्रा ने वैरागी द्वारा पुत्रदान की जो बात बताई थी, उस पर मार्ग में ही चर्चा होने लगी। शिवकुमार ने कहा, "आनन्द ! ब्रह्माजी की भाँति यहाँ भी रचना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य आरम्भ कर दिया है क्या ?"

"गुरुजी ! मैं किसी प्रकार का रचना-कार्य नहीं कर रहा। रचना तो ब्रह्मा ही कर रहा है। मैं तो केवल उसकी सूचना मात्र दे देता हूँ। आदिकाल में भी ब्रह्मा ने अनेक बार सृष्टि-रचना की थी। उस समय भी अधिकांश अनिश्चित प्राणी ही बने थे। मनुष्य तो कई परीक्षणों और निरन्तर असफलताओं के उपरान्त ही बन पाया था।

"मुझे लगता है कि अब भी कुछ ऐसा ही हो रहा है। ब्रह्मा ने नजरथ में एक बालक का निर्माण किया है, किन्तु अभी तक तो उस बालक द्वारा ब्रह्मा के किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे।

"ब्रह्मा ने एक बालक हस्तिनापुर में भी निर्माण किया है। एक का निर्माण यहाँ भी हो रहा है। अब यही देखना है कि इन तीन स्थानों में भी कहीं पर ब्रह्मा सफल होता है अथवा कि नहीं।"

"तुम्हारा इसमें क्या योगदान है ? तुम इस बीच में क्या हो ?"

"मेरा कार्य केवल सम्बन्धित व्यक्तियों को सूचना देना मात्र है। नजरथ में भी मैं केवल सूचना ही दे पाया था। यद्यपि मैं वहाँ ब्रह्मा द्वारा निर्मित वस्तु पर ज्ञान का प्रलेप करने के लिए गया था किन्तु सफलता नहीं मिली। भारतवर्ष में जिनका निर्माण किया जा रहा है, उनके विषय में भी यत्न करके देखूँगा। सफलता तो उनके अथवा उस समय की जनता के भाग्य के अधीन है।

"नजरथ से तो मैं निराश ही लौटा था, किन्तु यहाँ भी आशा के कोई विशेष लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे।

"ब्रह्मा ने हस्तिनापुर में मणिपाल की पत्नी सरस्वती को चुना और यहाँ चेतन कहार की पत्नी को चुना है। मुझे ब्रह्मा के इस चयन पर सन्देह है। अतः इन दोनों बालकों से भी मुझे किसी प्रकार की कोई आशा नहीं दिखाई देती।"

इन बातों को सुनकर शिवकुमार गम्भीर हो गया। उसने इसके बाद आनन्द से कुछ और अधिक जानने का यत्न नहीं किया। इस विषय में तो कुछ और जानना शेष था भी नहीं! आनन्द अपने पिता के स्वभाव को जानता था। वह समझ गया था कि उसके पिता बात करते-करते इस कारण मौन हो गये हैं क्योंकि वे दूर तक झाँकने का यत्न कर रहे हैं।

पण्डित शिवकुमार अधिक समय तक मौन नहीं रहे। कुछ कालोपरान्त उन्होंने कहा, "मैं समझता हूँ कि यह स्वाभाविक ही हो रहा है। ब्रह्मा शक्ति का रूप है। यह शक्ति विद्युत् की भाँति जब चमकती है तो वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही चमकती है। परन्तु वह किस पर गिरती है अथवा गिरेगी, यह उस शक्ति के अधीन नहीं होता। यह उस भूमि के अधीन है जिस पर वह पड़ती है।

"विद्युत् प्रकृति के नियम के अनुसार ही चमकती है। पड़ी भी वह नियमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुसार ही है। परन्तु मानवों पर पड़ी है और मानव अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और कार्य-कुशलता में स्वतन्त्र हैं।

"मणिपाल की पत्नी महामूर्ख है। इसलिये उस भूमि की उपज पर तो किसी प्रकार की आशा करनी ही नहीं चाहिये। चेतन की पत्नी को मैंने देखा नहीं है। इसी प्रकार तुम्हारी नजरथ वाली भूमि के विषय में भी मुझे कुछ जानकारी नहीं है।

"इससे कुछ कह पाना सम्भव नहीं है कि इनके उत्पन्न होने से मानव जाति का किसी प्रकार का कल्याण होने की कोई सम्भावना है अथवा नहीं।"

आनन्द ने कहा, "नजरथ वाली मेरी का पुत्र तो बुद्धिशील तथा प्रबल मन और इन्द्रियों वाला होगा, ऐसा मेरा अनुमान है। बस, माँ के प्रति उसका मोह इतना प्रबल था कि वह उसका त्याग नहीं कर सका।"

इस समय वे रामेश्वर के घर पर पहुँच गये थे।

रथ से उतरकर भीतर गये तो रामेश्वर उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। कुशल समाचारोपरान्त रामेश्वर ने बताया, "महाराज आपको स्मरण कर रहे थे। सम्भवतया पाटलिपुत्र से आपके लिए कोई सन्देश आया है।"

"आप इनसे कब मिले थे?"

"मैं सायंकाल दीप जलने के उपरान्त वहाँ से चला था। महाराज कह रहे थे कि आप मध्याह्नोत्तर वहाँ से आये थे। अभी तक वापस नहीं लौटे हैं।"

शिवकुमार उसी समय राजप्रासाद के लिए चल पड़ा। राज्य का रथ शिवकुमार ने आनन्द के प्रवचन में पहुँचने पर वापस भेज दिया था। इस समय राजप्रासाद जाने के लिए रामेश्वर ने अपना रथ दे दिया।

राजप्रासाद पहुँचकर शिवकुमार ने अपने पहुँचने की सूचना महाराज के पास भिजवा दी।

उस समय महाराज, महारानी तथा उनके दोनों कुमार भोजन कर रहे थे। पण्डित शिवकुमार को वहीं बुलवा लिया गया।

शिवकुमार भोजन कक्ष में गये तो महाराज ने पूछा, "पण्डितजी! भोजन किया अथवा कि नहीं?"

"अभी नहीं किया है।"

"आप भोजन के लिए बैठिये, तब तक हम आपको पाटलिपुत्र का सन्देश देते हैं।"

पण्डित शिवकुमार हाथ धोकर भोजन करने के लिए बैठ गया तो महाराज ने कहा, "पाटलिपुत्र से यह सन्देश आया है कि अंग देश का महामात्य किसी प्रकार का वार्तालाप करने के लिए पाटलिपुत्र आया है। महाराज चाहते हैं, उससे यदि आप वार्तालाप करें तो उचित होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने भोजन करते हुए कहा, "ठीक है, मैं अभी पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान कर देता हूँ।"

"हाँ, यही उचित होगा।"

दोनों भोजन करते रहे। शिवकुमार ने कहा, "यहाँ का समाचार यह है कि अभी उस शिविर में सैनिकों का जाना आरम्भ नहीं हुआ है। शिविर को पूर्ण होने में अभी एक मास और लग जायेगा। इसलिये यदि महाराजाधिराज चाहेंगे तो शीघ्र ही पुनः आना भी हो सकता है।"

महाराज ने पूछा, "मुझे विदित हुआ है कि आपके साथ आपका एक शिष्य पाटलिपुत्र में भी है?"

"जी हाँ, है। वैसे तो वह सदा ही मेरे साथ रहता है, इसलिये उसको यहाँ भी साथ आना चाहिये था। किन्तु मेरे वहाँ से चलते समय वह रुग्ण था, इस कारण मैं उसको वहीं रुग्णालय में छोड़कर आया हूँ।"

"महारानीजी कह रही हैं कि यदि आप केशव और विश्व को भी उसी भाँति शिष्य बनाकर अपने साथ रखने की कृपा करें तो हम आपके अति अनुग्रहीत होंगे।"

"देख लीजिये। मेरा कार्य तो इसी प्रकार घूमने-फिरने का है। अतः मेरे शिष्यों को भी मेरे साथ चलना-फिरना पड़ेगा। यात्रा में कष्ट तो होता ही है। अतः यह आप लोगों के विचार करने की बात है। सोच लीजिये और बच्चों से पूछ लीजिये।"

महारानी बोलीं, "आप तो पुनः पधारने वाले हैं ही, तब तक मैं इन बच्चों को तैयार करके रखूँगी।"

शिवकुमार ने कहा, "बहुत कठोर जीवन व्यतीत करना होगा। इसका विचार कर ही बच्चों को मेरे साथ चलने के लिए तैयार करना चाहिये। मैं अनुमान लगा रहा हूँ कि इन पुष्यमित्रों के युद्ध में अभी कुछ काल है। यदि यह युद्ध हुआ तो फिर हूणों से भी युद्ध की सम्भावना है। उसमें भी पाँच-छः वर्ष लग जायेंगे। तब तक यदि ईश्वर ने जीवन दिया तो मुझे अपना स्थान पाटलिपुत्र में ही दिखाई दे रहा है। उसके उपरान्त मेरी इच्छा संन्यास लेने की है। उस अवस्था में मैं अध्यापक का कार्य छोड़ दूँगा। तब तक ये विद्यार्थी भी शिक्षा समाप्त कर लेंगे।"

"पाटलिपुत्र में आप तथा आपके विद्यार्थी कहाँ रहते हैं?"

"अभी तो राजप्रासाद के एक कक्ष में ही मुझे स्थान मिला हुआ है; किन्तु यदि विद्यार्थियों की संख्या एक की अपेक्षा तीन हो गयी तो फिर मुझको पृथक् स्थान लेकर रहना चाहिये।"

यों उस समय बात समाप्त हो गयी। जब तक शिवकुमार ने भोजन किया तब तक रथ भी तैयार कर लिया गया था। भोजन समाप्त होते ही उसने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा आरम्भ कर दी।

दिन-रात निरन्तर चलते रहने के उपरान्त चौथे दिन पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र जा पहुँचा। जहाँ-जहाँ पड़ाव पड़ने पर अश्व बदलने का प्रबन्ध था वहाँ-वहाँ रथ के सारथी के बदलने का भी प्रबन्ध था। इस प्रकार सारथियों की नींद पूरी हो जाती थी और शिवकुमार स्वयं रथ पर ही सो लेता था।

अपने कक्ष में पहुँचते ही उसने महाराज को अपने पहुँचने की सूचना भेज दी। तदनन्तर स्नानादि कर दो घड़ी में तैयार होकर वह रमाकान्त को देखने के लिए राजप्रासाद के रुग्णालय में जा पहुँचा। कौशाम्बी को जाते समय रमाकान्त को शीत-ज्वर हो गया था, इस कारण वह उसको अपने साथ नहीं ले जा पाया था। रुग्णालय में भिषक की देख-रेख में उसको छोड़ गया था।

रमाकान्त ने जब अपने गुरुजी को आते देखा तो वह बिस्तर पर से उठकर उनके चरणस्पर्श करने दौड़ा। शिवकुमार ने पूछा, "कहो, स्वास्थ्य कैसा है ?"

"गुरुजी ! अब पाँच-छः दिन से मैं पूर्णतया स्वस्थ हूँ। मैंने महाराज से याचना की थी कि मुझे आपके पास भेजने की व्यवस्था कर दीजिये, परन्तु वहाँ से अभी तक कोई उत्तर ही नहीं आया।"

शिवकुमार ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं है, अब तो मैं स्वयं ही आ गया हूँ।"

इस प्रकार शिवकुमार रुग्णालय के अध्यक्ष भिषक को अभी बता ही रहा था कि बालक को उसके कक्ष में भेजने की व्यवस्था कर दी जाए कि तब तक महाराज का सेवक उसको ढूंढ़ता हुआ वहाँ पहुँच गया था।

सेवक ने पण्डितजी को बताया कि महाराज उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

शिवकुमार ने वहाँ से चलते हुए रमाकान्त को कहा, "तुम सीधे अपने कक्ष में पहुँच जाना। मैं महाराज से मिलकर वहीं आने वाला हूँ।"

शिवकुमार जब महाराज के पास पहुँचा तो महाराज ने बताया कि अंग का महामात्य आया है और वह कहता है कि पुष्यमित्रों के विषय में वह विवश हो गया है। वह चाहता है कि कोई इस प्रकार का प्रबन्ध किया जाए कि जिससे यह दुष्ट ग्रह अंग राज्य से टल जाए।

शिवकुमार ने पूछा, "आपने उससे किसी प्रकार का वार्तालाप किया है ?"

"केवल इतना ही वार्तालाप हुआ है। अन्य विषय पर कुछ भी बात नहीं हुई है। हमें अंगराज के व्यवहार में कुटिलता की झलक मिलती है।"

"इस अमात्य से तो मैं अभी मिल लेता हूँ। यदि वार्तालाप शीघ्र ही निपट गया तो भोजन के समय आकर बता दूंगा और यदि बात लम्बी हुई तो प्रातःकाल आकर बता दूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, रात्रि का भोजन आप हमारे साथ ही करियेगा।"

अंग देश के महामात्य को राजप्रासाद के बाहर उस निवासगृह पर ठहराया गया था जिस पर पूर्वकाल में पण्डित शिवकुमार का निवास था। वह स्थान राजप्रासाद से काफी दूर था। रथ में जाने पर भी उस स्थान तक पहुँचने में आधा घड़ी समय लगता था।

महाराज से मिलने के आधा घड़ी उपरान्त जब पण्डित शिवकुमार उस स्थान पर पहुँचा तो उसने अपने आने की सूचना अंग देश के महामात्य विक्रमसिंह को भेज दी।

सूचना मिलने पर विक्रमसिंह स्वयं उनका स्वागत करने के लिए आया और उनको लेकर भीतर अपने कक्ष में चला गया।

पण्डितजी को बैठाते हुए विक्रमसिंह ने पूछा, "पण्डितजी! कौशाम्बी किस कार्य से गये थे ?"

"मेरी धर्मपत्नी और उसके भाई का परिवार वहाँ रहता है। उनसे मिले एक वर्ष से अधिक हो गया था। अतः अवसर पाकर उनसे मिलने के लिए चला गया था।"

शिवकुमार ने उसको वास्तविक बात कि वह वहाँ हस्तिनापुर का सैनिक शिविर देखने गया था, नहीं बताई।

यह सुन विक्रमसिंह बोला, "तब तो महाराज ने व्यर्थ में आपको कष्ट देकर बीच में ही बुला लिया है। मैं तो साधारण-सी बात के लिए आया था। बात केवल यह है कि पुष्यमित्रों की अभी युद्ध की तैयारी नहीं है। हम उनकी तैयारी में बाधायें उपस्थित कर रहे हैं। हम समझते हैं कि इस प्रकार वे मगध साम्राज्य से युद्ध के लिए कभी तैयार हो ही नहीं पायेंगे। उनके इस कार्य में हमारा किसी प्रकार का भी सहयोग नहीं है।

"इस कारण हम समझते हैं कि अंग देश के नागरिकों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं अब उनकी आवश्यकता नहीं रही। मैं उन प्रतिबन्धों की समाप्ति के लिए ही बातचीत करने के लिए आया हूँ।

"अंग देश के नागरिक ज्यों ही सीमा पार करते हैं कि उनकी तलाशी ले ली जाती है। उनके शस्त्रास्त्र ले लिये जाते हैं। उनके पास कितना धन है इसका वृत्तान्त लिख लिया जाता है। जिसके पास दस सहस्र मुद्रा से अधिक हो उसका अतिरिक्त धन वहीं सीमा पर जमा करवा लिया जाता है।

"इसके अतिरिक्त भी उनसे यह लिखवा लिया जाता है कि वे मगध में कितने दिन रहेंगे और कहाँ जायेंगे तथा रहेंगे। इन प्रतिबन्धों के कारण दोनों देशों का व्यापार लगभग ठप्प-सा हो गया है।

"मैं इन असुविधाओं को दूर करने के सम्बन्ध में परस्पर बात करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही आया हुआ हूँ।"

"ठीक है। आप जो-जो प्रतिबन्ध अनुपयुक्त समझते हैं उनका विवरण और आपकी दृष्टि में उनका जो विकल्प हो वह भी सब लिखकर महाराज के सचिवालय को भेज दीजिये। सारी बात विस्तार से लिख दीजियेगा। मैं इस सम्बन्ध में महाराज से बात करूँगा और फिर उनका जो परामर्श होगा उससे आपको अवगत कर दूँगा।"

विक्रम बहादुरसिंह कहने लगा, "मैं समझता हूँ कि महाराज से बात करने से पूर्व यदि आपसे विचार-विमर्श हो जाए तो उपयुक्त है। उसके उपरान्त महाराज की दृष्टि से सारी बातें लिखकर मैं उनके सचिवालय को लिख दूँगा।

"मैं नहीं चाहता कि जो कुछ हम इस समय यहाँ पर विचार-विमर्श कर लें उस पर फिर बाद में किसी प्रकार का परिवर्तन हो।"

शिवकुमार ने कहा, "यदि आप ऐसा चाहते हैं तो यह ठीक है। मैं कल प्रातः-काल अल्पाहार के उपरांत उपस्थित हो जाऊँगा। उस समय इन बातों पर विचार कर लेंगे। इस समय तो मैं यात्रा से आया हूँ। थकान अनुभव कर रहा हूँ।"

विक्रम बहादुरसिंह को इसे स्वीकार करना ही पड़ा।

वहाँ से निकलकर पण्डित शिवकुमार महाराज के पास उनके साथ भोजन करने के लिए चला गया।

भोजन करते हुए महाराज ने पूछा, "क्या बात हुई अंग के महामात्य से?"

"मेरा अनुमान है कि अंग देश किसी प्रकार की जल्दी में नहीं है। वे लोग समय को टालना चाह रहे हैं। इसमें उनका उद्देश्य क्या है यह कदाचित् कल होने वाले वार्तालाप से कुछ स्पष्ट हो सके। आज इस विषय पर अधिक वार्तालाप नहीं हुआ।"

भोजनोपरान्त शिवकुमार जब अपने आवास में आया तो रमाकान्त तब तक वापस पहुँच गया था। वह वहाँ बैठा स्वाध्याय कर रहा था। इससे शिवकुमार को सन्तोष हुआ।

शिवकुमार ने पूछा, "मेरे जाने के बाद तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई?"

"जी नहीं गुरुजी! रुग्णालय के वैद्यजी बहुत ही सज्जन पुरुष हैं। स्वयं मेरी देखभाल करते थे। साधारणतया उन्होंने मुझे अपने पास ही रखा था और अपने पास ही भोजन भी कराया करते थे।"

"चलो अच्छा हुआ। मुझे तुम्हारी चिन्ता रहती थी।"

"किन्तु गुरुजी! उस अवधि में मेरा अध्ययन सारा रुक गया था।"

"तुम रुग्ण थे, इसलिए वह तो रुकता ही।"

"रोग तो आपके जाने के दो दिन बाद ही ठीक हो गया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, मेरा भी यही विश्वास था; किन्तु उस समय तुम मेरे साथ यात्रा करने की स्थिति में नहीं थे। अब यदि कहीं जाऊँगा तो उस समय मैं तुमको साथ ले जाऊँगा। तब तुम्हारे अध्ययन में किसी प्रकार की बाधा नहीं रहेगी।"

अगले दिन प्रातःकाल अल्पाहार करने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार अंग देश के महामात्य विक्रम बहादुरसिंह से मिलने के लिए उसके निवास पर गया। वह उस समय तक अपना अल्पाहार समाप्त नहीं कर पाया था। उसने पण्डितजी को अपने पास ही बुलाकर उनसे अल्पाहार के लिए पूछा। पण्डितजी ने बताया कि वे कर आये हैं।

विक्रम बहादुरसिंह ने पण्डितजी को अपने पास ही बैठा लिया और मगध से अंग देश के सम्बन्धों की चर्चा करने लगा। इसमें उसने पुराने इतिहास की पुनरावृत्ति की।

पण्डित शिवकुमार उस सारे इतिहास को भली-भाँति जानता था, तदपि वह चुपचाप उसको सुनता रहा। वह समझता था कि विक्रम बहादुरसिंह अपना अल्पाहार समाप्त करे तो किसी पृथक् एकान्त स्थान पर बैठकर उससे वार्तालाप करे।

लगता था, विक्रमसिंह को किसी प्रकार की त्वरा नहीं थी। उसने अपने अल्पाहार की गति और भी मध्यम कर दी। उस समय उसने न केवल व्याख्या-सहित दोनों देशों के परस्पर सम्बन्धों का इतिहास बताया अपितु अपनी ओर से भी कुछ काल्पनिक बातें जोड़ दी थीं। इस प्रकार उसने इस वार्तालाप में दो घड़ी का समय निकाल दिया।

वह इतिहास जब लगभग समाप्त हो गया किन्तु विक्रम बहादुरसिंह ने अपनी बात को समाप्त करने का कोई संकेत नहीं दिया तो पण्डित शिवकुमार ने विवश उसको संकेत कर अपनी बात कहनी आरम्भ की। उसने कहा, "महाशय! आप अपना अल्पाहार शीघ्र समाप्त करिये। मुझे इस इतिहास को जानने में कोई रुचि नहीं है। मुझे इस इतिहास का पूर्ण ज्ञान है।

"मैं तो आपसे पृथक् में बात करने के लिए आया हूँ अतः इन सब सेवकों के सम्मुख मैं इस प्रकार की कोई बात करना उपयुक्त नहीं समझता।"

"परन्तु मैं तो आपसे किसी प्रकार की कोई गुप्त बात करने के लिए आया नहीं हूँ। मैं तो उस विषय पर ही बात करना चाहता हूँ कि जिसका सम्बन्ध आपकी और हमारी प्रजा से है। ये सेवक भी तो उसी प्रजा के अंग हैं, इसलिए मुझे इनके सम्मुख बात करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता।"

"यह ठीक है कि आप किसी प्रकार की गुप्त बात करने न आये हों, किन्तु मुझे आपसे एक गुप्त बात करनी है। यद्यपि उसका भी सम्बन्ध दोनों देशों की प्रजा से ही है। तदपि प्रजा को वह बात उन देशों के महाराज ही बतायेंगे। हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें हस्तक्षेप करने का किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं है।"

यह सुनकर विक्रमसिंह के मानो कान खड़े हो गये। वह सतर्क हो गया। उसने अल्पाहार समाप्त किया तो शिवकुमार ने उसको उठने का संकेत किया।

शिवकुमार उसको अतिथिगृह की बैठक में ले गया। उसने वहाँ नियुक्त प्रतिहार से कहा, "देखो, हम भीतर गुप्त मन्त्रणा कर रहे हैं। तुम यहाँ पर सतर्क और सावधान खड़े रहो। किसी को हमारी बात सुनने न देना और यदि कोई मिलने के लिए आना चाहे तो उसका नाम-पता पूछकर, फिर हमें बताकर जैसा हम कहें वैसा करना।

"हमारी आज्ञा के बिना न इस कक्ष में और न इस कक्ष के आसपास किसी को आने नहीं देना।"

प्रतिहार को इस प्रकार का निर्देश कर कक्ष में प्रविष्ट होते ही शिवकुमार ने कक्ष का द्वार भीतर से बन्द कर दिया।

जब दोनों अपने-अपने स्थान पर बैठ गये तो शिवकुमार ने कहा, "पिछली दो घड़ी से जो इतिहास आप मुझे सुना रहे थे उसका मुझे पूर्ण ज्ञान है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि उस इतिहास का वर्तमान स्थिति से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध है ही नहीं।

"कल सायंकाल आपने आपकी प्रजा पर लगाये गये प्रतिबन्धों की बात कही थी। वे प्रतिबन्ध बहुत विचार करने के उपरान्त लगाये गये हैं। हमें उस समय भी, जिस समय इन प्रतिबन्धों को लगाया गया था, यह ज्ञात था कि इनके कारण दोनों देशों की प्रजा को पर्याप्त असुविधा होगी। इससे व्यापार की हानि होगी यह भी हम जानते थे, किन्तु यदि दोनों राज्यों में युद्ध की स्थिति हो गयी तो उससे जो हानि और कष्ट होने की सम्भावना थी, वह तो इन कष्टों की तुलना में बहुत अधिक थी। उसको रोकने के लिए यह सब प्रतिबन्ध लगाये गये थे।"

"पण्डितजी! यही तो मेरा कहना है कि ये प्रतिबन्ध ही तो अब युद्ध का कारण बनने लगे हैं।"

"जी नहीं। जिन कारणों से आपके महाराज ने युद्ध की सम्भावना व्यक्त की है, यह तो उनके कारण लगाये गये हैं।"

"वे कारण क्या हैं?"

"एक तो ब्राह्मणों का आन्दोलन है।"

"ब्राह्मणों का आन्दोलन तो हम समझते हैं कि उफान की तरह ही है। उसे हम इस प्रकार के प्रतिबन्धों का कारण नहीं मान सकते। और फिर वह आन्दोलन तो हमारे राज्य के भीतर की बात है। उसका आपके राज्य से क्या सम्बन्ध है? हमें विश्वास है कि हम उस आन्दोलन को समाप्त करने में शीघ्र ही सफल हो जायेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह आन्दोलन उबाल है अथवा कि दावानल, यह तो आप ही जानिये, किन्तु हम यह जानते हैं कि यदि यह अग्नि एक बार भड़क उठी तो फिर वह बहुत कुछ भस्म किये बिना शान्त नहीं हो पायेगी।

"मैं राज्यों की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं पूर्ण मनुष्य जाति के दो विशिष्ट अंगों में उत्पन्न होने वाले वैमनस्य की बात कर रहा हूँ। ब्राह्मण और क्षत्रियों में पूर्ण देश में एक प्रकार से वैमनस्य का वातावरण पनप रहा है।

"वैमनस्य की इस अग्नि को विदिशा वालों ने प्रज्वलित किया है और आप उसको हवा देकर अधिक तीव्र करने में सहयोग कर रहे हैं।"

"परन्तु ब्राह्मण-राज्य तो इससे पूर्व भी स्थापित हो ही चुका है? और उस समय हम समझते हैं कि देश का कुछ भला ही हुआ था।"

"किन्तु आप यह क्यों भूलते हैं कि उस समय जाति के दो अंगों में परस्पर वैमनस्य नहीं था। और उस समय जो देश की दुर्बलता थी वह ब्राह्मण और क्षत्रियों के वियोग के कारण भी नहीं थी। उसका कारण था, इन दोनों को एक ओर करके बौद्ध जीवन-मीमांसा का प्रचार करना। और फिर, उस दुर्बलता का लाभ उठाकर विदेशी आक्रमण करने पर उतारू थे।"

"पण्डितजी! हम तो इसको शान्त करने का यत्न कर रहे हैं।"

"अभी तो जैसा आप कह रहे हैं उस प्रकार का कोई लक्षण कहीं से भी दिखाई नहीं दे रहा है। मैं इस विषय में आपको मगध राज्य की बात बता देता हूँ। मगध राज्य की यह सुनिश्चित धारणा है कि यह जो विद्रोह का आन्दोलन चल रहा है, इसने आपके राज्य को केन्द्र बनाया हुआ है। वहीं से इसकी गतिविधि का संचालन हो रहा है। यद्यपि यह विद्रोह विदिशा वालों का आरम्भ किया है। भारतीय समाज को विनष्ट करने वाले इस विद्रोह को हमें समाप्त करना ही होगा। इसे आप बड़ी सरलता से समाप्त कर सकते हैं क्योंकि इसका केन्द्र अब आपका राज्य है।

"और यदि आपने इसको समूल नष्ट न किया तो फिर हमको करना पड़ेगा; किन्तु फिर उसके लिए हमें अपनी सेना को आपके राज्य में भेजना पड़ेगा। उस स्थिति में आपको भी कष्ट होगा और आपकी प्रजा को भी। ये जो हमने अपने राज्य में आपके राज्य से आने वालों पर प्रतिबन्ध लगाये हैं उसका भी यही कारण है, जिससे कि आप लोग सचेत हो जाएँ।

"यदि आप चाहते हैं कि ये प्रतिबन्ध उठ जाएँ तो आपके राज्य में जो पुष्य-मित्रों की युद्ध की तैयारी चल रही है, उसको आप समाप्त कीजिये। हम इसको सहन नहीं कर सकते।"

विक्रम बहादुरसिंह पण्डितजी द्वारा इस प्रकार स्पष्ट बात कह देने पर विस्मय कर रहा था। पण्डित शिवकुमार समझता था कि उसने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है अत: उसने वहाँ से जाना ही उचित समझा। उसने उठते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "आप कब जाने का विचार कर रहे हैं ?"

विवश विक्रम बहादुरसिंह को भी उठना पड़ा। उसने कहा, "जाने से पूर्व मैं महाराज से भेंट करना चाहता हूँ। बताइये, इसके लिए कब समय मिल सकता है ?"

"यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो आज सायंकाल चतुर्थ प्रहर से पूर्व ही हो सकती है।"

"जी हाँ, मैं दर्शन करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, मैं उनको बता दूंगा। आप उस समय आ जाइये। यदि उस समय महाराज को कुछ अन्य कार्य हुआ तो इसकी सूचना मैं आपको पहले ही दे दूंगा। उस स्थिति में कोई अन्य समय निश्चित कर लिया जायेगा और उसकी सूचना आपको दे दी जायेगी।"

"ठीक है, मैं चतुर्थ प्रहर मिलने के लिए आऊँगा।"

: ५ :

पण्डित शिवकुमार ने अंग के महामात्य को भेंट का जो समय दिया था उस समय ही भेंट की व्यवस्था कर दी गयी। महामात्य के पास से जाकर शिवकुमार ने महाराज को पूर्ण वार्तालाप से अवगत करा दिया था। जिस समय महामात्य की महाराज से भेंट हुई उस समय केवल वे दो व्यक्ति ही वहाँ पर थे। पण्डित शिवकुमार उसमें उपस्थित नहीं था।

विक्रम बहादुर ने महाराज से जो पहली बात की वह उसके देश के नागरिकों पर मगध द्वारा लगाये प्रतिबन्धों के विषय पर ही थी।

महाराज ने कहा, "इस विषय पर हमारे परामर्शदाता पण्डित शिवकुमारजी ने अपनी स्थिति स्पष्ट तो कर दी थी। हमारी ओर से वही बात है। आपको कुछ और कहना हो तो बताइये।"

"मैं तो यही कहने के लिए आया था कि पण्डितजी ने जो कुछ कहा है उस पर आप पुनर्विचार करते तो अच्छा था।"

"आप यह क्यों समझ रहे हैं कि वह पण्डितजी का कथन था। वह पण्डितजी का कथन नहीं अपितु मगध राज्य का सुविचारित निर्णय था। उसके अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर आपको बात करनी हो तो वह कीजिये।"

"मैं तो इसी विषय पर बात करने के लिए आया था।"

"वह बात तो अब समाप्त हो गयी है। उस विषय में वह अन्तिम निर्णय है।"

इस प्रकार दो टूक बात हुई और दो पल में ही यह भेंट-वार्ता भी समाप्त हो गयी।

महाराज कुमार ने प्रतिहार को बुलवाया और उससे कहकर पण्डितजी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलवा लिया। महाराज ने कहा, "पण्डितजी! महामात्य को उनके स्थान पर पहुँचाने की कृपा कीजियेगा।"

पण्डित शिवकुमार उसको लेकर अतिथिगृह की ओर चला गया।

जिस समय विक्रम बहादुरसिंह महाराज से भेंट के लिए आया था उस समय एक अन्य युवक भी उस कक्ष में था, किन्तु विक्रम बहादुरसिंह को इसका ज्ञान नहीं था। उस युवक को पर्दे के पीछे छिपने के लिए निर्देश दे दिया गया था। वह युवक वह सारा वार्तालाप सुनता रहा था जो कि महाराज और विक्रम बहादुरसिंह के मध्य हुआ था।

जब विक्रम बहादुरसिंह चला गया तो वह युवक निकलकर बाहर आ गया और महाराज से कहने लगा, "महाराज! आपने उस व्यक्ति के समाधान करने का तो यत्न किया ही नहीं। इससे तो बात बिगड़ने की अधिक सम्भावना है।"

"उसका समाधान तो हमारे परामर्शदाता पण्डित शिवकुमारजी ने पहले ही कर दिया था। उन्होंने उसको बता दिया था कि उनके राज्य में बाहर के कुछ लोग आकर मगध के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हैं। उनको बताया गया कि हमारी सूचना के आधार पर यह तैयारी बड़े जोरों से हो रही है। अतः उस आन्दोलन को निःशेष करने के उद्देश्य से यह प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। वे यदि स्वयं उस आन्दोलन को अपने राज्य में निःशेष कर दें तो उनकी प्रजा पर हमारे राज्य में जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वे उठा लिये जायेंगे।

"उसको यह भी कहा गया है कि यदि मगध राज्य के विरुद्ध किये जाने वाले इस षड्यन्त्र को उनका राज्य निःशेष नहीं करता है तो हमको अपनी सेना वहाँ भेजकर स्वयं यह कार्य करना पड़ जायेगा। इससे दोनों राज्यों में युद्ध की स्थिति हो सकती है।"

वह युवक कुछ और कहने ही वाला था कि प्रतिहार ने आकर सूचना दी, "पण्डित शिवकुमारजी पधार रहे हैं।"

महाराज ने पण्डितजी का स्वागत करते हुए कहा, "आइये पण्डितजी! आपका परिचय एक अन्य व्यक्ति से कराता हूँ।"

शिवकुमार कक्ष में अपने स्थान पर बैठकर महाराज की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगा।

महाराज ने वहाँ बैठे युवक की ओर संकेत कर कहा, "ये हैं हमारे रूठे हुए राजकुमार, युवराज स्कन्दकुमार। आज पाँच वर्ष के बाद ये राजधानी में वापस आये हैं।"

पण्डित शिवकुमार ने उसको आशीर्वाद दिया। स्कन्दकुमार ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोला, "मैं त्रिवेणी पर भारद्वाज महर्षि के आश्रम को जा रहा था। मार्ग में पाटलिपुत्र से निकला तो महाराज के दर्शन करने आ गया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित शिवकुमार बोले, "मैंने आपके विषय में सुन तो रखा था किन्तु दर्शन करने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है।

"तदपि एक बात मैं समझ नहीं पाया हूँ। वह यह कि आप महाराज से रुष्ट हैं अथवा कि राज्य से ?"

राजकुमार ने विषय को बदलकर कह दिया, "मुझे भी महाराज ने आपका नाम बताया था और आपका संक्षिप्त परिचय भी दिया था। महाराज ने बताया कि आप हमारे प्रपितामह के राजपुरोहित और महामात्य थे। परन्तु आपके मुख पर ओज और शरीर में स्फूर्ति देखकर तो इस बात पर सन्देह होने लगता है। इस समय आपकी आयु कितनी होगी ?"

स्कन्दकुमार की बात सुनकर शिवकुमार मुस्करा दिया। उसने कहा, "मैं राजपुरोहित अथवा महामात्य था, इसका प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। इतना तो युवराज समझ ही सकते हैं कि मैं उनकी आयु से अधिक आयु का हूँ। अतः मैं जो कुछ भी युवराज से पूछ रहा हूँ उसमें कुछ तथ्य तो हो सकता है।

"मान लीजिये कि मैं आपके प्रपितामह का राजपुरोहित और महामात्य न भी रहा हूँ तो क्या राज्य अथवा राजा से रूठना समान हो जायेगा ?

"युवराज ! राजा तो मनुष्य है। उसकी जीवन-अवधि सीमित है। राजा अपनी जीवन-आयु के भीतर ही राज्य करने की सामर्थ्य से विहीन भी हो सकता है, परन्तु राज्य तो दीर्घकालीन होता है। राजा और मन्त्री आदि तो काल की अवधि में सीमित हैं किन्तु राज्य स्थायी है, वह अनन्त भी हो सकता है।

"इसी कारण मैंने प्रश्न किया था कि आप महाराजाधिराज से रुष्ट हैं अथवा कि मगध राज्य से ?"

"पण्डितजी ! मैं आपकी इस बात से तो सहमत हूँ कि राजा और मन्त्री अनित्य हैं, ये आते-जाते रहते हैं। अतः मेरा कहना है कि मैं भी समय पर आ जाऊँगा।"

"परन्तु राजकुमार ! तब तक कोई अन्य भी तो आ सकता है। उस अवस्था में यहाँ आना उतना सुगम नहीं होगा जितना कि इस समय अपने पिता के राज्य-काल में सुगम है।"

"पण्डितजी ! क्या आप यह नहीं जानते कि मैं यहाँ क्यों नहीं रहता ?"

"नहीं, मैं नहीं जानता। मेरे प्रश्न का भी उसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। मेरा प्रश्न तो केवल इतना ही है, आपके रूठकर चले जाने के कारण का सम्बन्ध राज्य से अथवा राजपरिवार से है ?"

"मैं दोनों में अन्तर नहीं समझता।"

"यह आपकी भूल है। मैं आपको विस्तार से समझाता हूँ। मैं आरम्भ में आपके प्रपितामह का राजपुरोहित रहा। इस पद पर मैं तीन वर्ष तक रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर मैंने उनका महामात्य बनना स्वीकार कर लिया। उस पद पर मैं पाँच वर्ष तक आसीन रहा। पाँच वर्ष के अन्त में उन्होंने मुझ पर झूठा लांछन लगाकर मुझे लांछित और दण्डित करने का यत्न किया था। मुझे उसका ज्ञान हुआ तो एक दिन रात के समय अवसर पाकर मैं इस राज्य से ही विलुप्त हो गया।

"यह घटना अस्सी वर्ष पूर्व की है। लांछन लगाने में प्रमुख आपके प्रपितामह थे। मैं भारत की सीमा पार कर त्रिविष्टप में चला गया था। जब तक आपके प्रपितामह और उनके महामन्त्री वररुचि रहे, मैंने इधर आने का विचार ही छोड़ दिया था।

"तदपि जब शकों के आक्रमण को निष्फल करने के उपरान्त आपके प्रपितामह के महामात्य ने मुझसे राज्य के विषय में सम्मति माँगी तो उस समय मैंने सम्मति दी थी। यदि उस समय मेरी दी हुई सम्मति को स्वीकार कर लिया जाता तो मगध राज्य की जो दुर्दशा आज हो रही है, वह न होती।

"अब न आपके प्रपितामह रहे हैं और न ही उनके महामात्य वररुचि रहे हैं। इस स्थिति में आपके पिता ने मुझसे आग्रह किया तो मैं पुनः राज्य की सेवा करने के लिये उपस्थित हो गया हूँ। आपके पिताश्री को मेरी योजना हितकर प्रतीत हुई तो मैंने भी राज्य की सेवा करना स्वीकार कर लिया।"

"पण्डितजी! आपने भी तो वही किया है जो मैं कह रहा हूँ। राजा के रहते मैं नहीं आ रहा हूँ।"

"परन्तु युवराज! मैं तो राज्य से रुष्ट नहीं था। न मैं महामात्य पद का ही अभिलाषी था। मैं तो केवल परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रहा हूँ। वह तब भी बना था जब तुम्हारे प्रपितामह शकों को पराजित कर राज्य को पुनर्गठित करना चाह रहे थे।

"आपकी बात वैसी नहीं है जैसी कि मेरी है। आप तो स्वयं राजा हैं, इसलिये आपको राज्य के समीप रहना चाहिए। मैं केवल परामर्शदाता था और मेरा परामर्श सदैव राज्य के लिए उपलब्ध रहता था। उस समय भी वैसा ही होता था जबकि पण्डित वररुचि तिब्बत में वहाँ के राजा से बात करने के लिये गया था। कोई मेरे परामर्श को स्वीकार करे अथवा न करे, यदि वह मेरा परामर्श चाहता है तो मैं किसी को भी परामर्श देने से इन्कार नहीं करता।

"आपके पिताजी मेरी सम्मति का सम्मान करते हैं, इस कारण मेरी सेवायें मगध राज्य को प्राप्त हो रही हैं।"

"आपको इस कार्य का क्या वेतन मिलता है?"

"यह तो महाराज बता सकते हैं।" यह कहकर शिवकुमार मात्र मुस्करा दिया।

महाराज ने तुरन्त जब कुछ नहीं कहा तो राजकुमार ने अपने पिता से पूछा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पिताजी ! अपने परामर्श के लिए पण्डितजी राज्य से क्या पाते हैं ?"

"केवल भोजन, वस्त्र और निवास। वह भी कोई विशेष प्रकार का नहीं, सामान्य नागरिक जैसा ही।"

उसने यह सुनकर पण्डित शिवकुमार से पूछा, "तो पण्डितजी ! आपका निर्वाह कहाँ से होता है ?"

"यहाँ कुछ यजमान हैं। वे उस समय भी थे जब मैं आपके प्रपितामह के समय यहाँ का महामात्य था। वे आज भी हैं। उनकी दान-दक्षिणा से काम चल जाता है। मेरी दृष्टि में किसी ब्राह्मण का वेतनभोगी होना उसका अपने वर्ण से च्युत होना है।"

"तो आप महामात्य होते हुए भी पौरोहित्य करते थे ?"

"हाँ, मैं तब भी यह कार्य करता था। उस समय भी इससे मेरे परिवार का निर्वाह हो जाता था और उसी प्रकार आज भी होता है। मैं यहाँ जो कुछ भी पाता हूँ वह मेरे परामर्शदाता होने के विनिमय में नहीं पाता। वह तो सामान्यया घर आये अतिथि के समान ही भोजन और निवास की भाँति है।"

यह सुनकर स्कन्दकुमार को बड़ा विस्मय हो रहा था। वह विचारमग्न हो गया। वह कुछ बोला नहीं। उस समय महाराज ने कहा, "मैं अंगराज के महामात्य के आने से पूर्व तुमसे कह रहा था कि पण्डितजी का कहना है कि मनुष्य को तो अपने कर्तव्य के पालन करने का ही अधिकार है। उस कर्तव्य का फल तो परमात्मा के अधीन है, क्योंकि कर्तव्य का निर्धारण भी वही करता है अतः फल भी वही देता है। मनुष्य किसी मनुष्य को क्या दे सकता है, वह अपना ही कर्तव्य कर्म कर ले, यही पर्याप्त है।

"इसी प्रकार तुम अपने विषय में सोचो। हम तुमको क्या दे सकते हैं। तुम्हें तो अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। न तो हम तुम्हारे लिये कुछ कर सकते और न तुम हमारे लिये कुछ कर सकते हो।"

कुमार ने अपने पिता की अपेक्षा पण्डितजी से पूछा, "क्यों पण्डितजी ! क्या आप भी ऐसा ही समझते हैं ?"

"हाँ कुमार ! यह मनुष्य जीवन का यथार्थ विवेचन है। मैने किसी के आगे हाथ फैलाकर याचना नहीं की। किन्तु ईश्वर बड़ा दयालु है। जिस प्रकार वह सबका पालन-पोषण करता है उसी प्रकार इस शरीर का भी वह विगत एक सौ वर्ष से पालन-पोषण कर रहा है।

"मैं समझता हूँ कि वह अधिक कुशलता से पालन-पोषण कर रहा है। यह आप मेरे स्वास्थ्य को देखकर स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं।"

"परन्तु पण्डितजी ! महाराज से मेरा विवाद जीवनयापन अथवा खाने-पीने के विषय पर तो था ही नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो विवाद की बात कर ही नहीं रहा। मेरा तो केवल यही कहना है कि राज्य के प्रति आपका कर्तव्य है। आप इस राज्य के युवराज हैं। उस झगड़े से तो इस पद का कोई सम्बन्ध है ही नहीं।"

"महाराज का तो यह कहना है कि मेरी पत्नी को कोई भी मगध की रानी मानना स्वीकार नहीं करेगा।"

"यह तो उनकी भविष्यवाणी थी। वह ठीक भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती।

"उस भविष्यवाणी को मिथ्या सिद्ध करने के लिये तुम और तुम्हारी पत्नी यत्न कर सकते थे। केवल भविष्यवाणी सुनकर उसको सत्य मान लिया? इस प्रकार तो तुम्हारे राज्य छोड़कर जाने से न केवल तुम्हारी पत्नी महारानी पद के अयोग्य हो रही है अपितु उसके साथ-साथ तुम्हारे भी महाराज बनने का अवसर क्षीण होता जा रहा है।

"युवराज! यदि तुम महाराजाधिराज बनना चाहते हो तो इसमें सर्वाधिक सहयोग तुम्हें अपने परिवार से ही प्राप्त हो सकता है। ऐसे अनेक हैं जो राज्य-परिवार में उत्पन्न होने पर भी महाराज नहीं बन पाये अथवा बन भी गये तो उस पर स्थायी रूप में रह नहीं पाये। इसके विपरीत अनेक ऐसे भी हैं जो सामान्य नागरिक के रूप में उत्पन्न होकर राज्य प्राप्त कर चुके हैं।"

"आपका अभिप्राय है कि राज्य-पद प्राप्त करने के लिये भी मनुष्य को कुछ करना पड़ता है?"

"क्यों नहीं। अब तुम अपने प्रपितामह के भाई रामगुप्त को ही देख लो। उन्होंने न केवल राज्य खोया अपितु अपनी पत्नी को भी खो बैठे।"

"पण्डितजी, बताइये, वह योग्यता कहाँ बिकती है?"

"मेरे आगारों में इसका भण्डार है। यदि उसको प्राप्त करने की लालसा लेकर आओगे तो प्राप्त हो जायेगी। इसके साथ ही परमात्मा की कृपा प्राप्त करने का भी एक उपाय है। मैं वह उपाय भी बता सकता हूँ।

"मैं प्राप्त करने का उपाय ही बता सकता हूँ। प्राप्त करने के लिये प्रयत्न तो आपको स्वयं करना पड़ेगा। इस प्रकार की बातों में कोई अन्य किसी का सहायक नहीं हो सकता।"

यह सुनकर स्कन्दगुप्त को हँसी आ गयी। उसने पूछा, "श्रीमान्‌जी ने कितनों को राज-पाट दिलवा दिया है?"

"अभी तक तो इस पद का अभिलाषी एक ही व्यक्ति मेरे पास आया था। वह इस समय तिब्बत का नरेश बना हुआ है।

"वहाँ का राजा कोई लामा अर्थात् साधु ही हो सकता था, परन्तु मैंने गृहस्थी को राजा बनने के लिये तैयार किया और समय आने पर वह राजा बन गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना अवश्य हो गया है कि अब लामा का पद राज्य से पृथक् हो गया है।"

यह सुनकर भी स्कन्दगुप्त गम्भीर विचार में पड़ गया।

महाराज ने जब अपने पुत्र को विचारमग्न देखा तो उससे पूछने लगे, "क्या विचार कर रहे हो?"

"मैं यह विचार कर रहा हूँ कि भारद्वाज आश्रम के ऋषिराज ने मेरे पितामह को अपने भाई की विधवा पत्नी से विवाह करने का अधिकार दे दिया था। मैं सोचता हूँ कि इसी प्रकार वह मेरे लिये भी कोई विकल्प सुझा सकते हैं जिसके आधार पर मैं मगध-नरेश बन सकूँ।

"आज पण्डितजी से मैंने सुना है कि इनके पास कोई ऐसी संजीवनी है कि जिसके सेवन से कोई भी राजा बन सकता है। मैं सोचता हूँ कि क्यों न पहले उसका ही सेवन करके देख लूँ, कदाचित् वह सफल हो जाए और मुझे भारद्वाज आश्रम जाने की आवश्यकता ही न रहे।"

"यह विचार ठीक ही है।" महाराजा ने कह दिया।"

"पण्डितजी! आप मेरे नवजीवन के निर्माण में कितना समय लगायेंगे?"

"यह तो बहुत कुछ तुम्हारी पूर्व-शिक्षा पर निर्भर करेगा। वह कैसी और कितनी है, उसके विषय में मुझे ज्ञान नहीं है। कुछ समय तो उसका परीक्षण करने में ही लग जायेगा।"

"उस अवधि में मुझे रहना कहाँ होगा?"

"अच्छा तो यही होगा कि मेरे निकट रहो। मेरे पार्श्व के आगार खाली हैं। परन्तु इसके लिये महाराज से स्वीकृति लेनी होगी। मैं आजकल राजप्रासाद के एक कक्ष में ही रह रहा हूँ। वहाँ एक विद्यार्थी और भी है। यदि महाराज उचित समझेंगे तो एक आगार युवराज के लिये भी दे देंगे।"

"मैं अकेला तो नहीं हूँ। मेरे साथ रहने के लिये तो मेरी पत्नी तथा उसका एक पुत्र भी है।"

"इसके लिये भी महाराज की स्वीकृति की आवश्यकता होगी।"

"आप स्वीकृति ले लीजिये।"

"तुम्हारा पाटलिपुत्र में रहने का कब तक का कार्यक्रम है?"

"दो दिन।"

"ठीक है, कल मुझसे मिल लेना। उस समय मैं बताऊँगा कि मेरे गुरुकुल में तुम किस प्रकार रह सकते हो।"

इस प्रकार यह लम्बा वाद-विवाद उस समय समाप्त हो गया। शिवकुमार अपने आगार में चला गया।

उस दिन रात्रि के समय पण्डित शिवकुमार ने महाराज से युवराज के विषय में बात की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने युवराज के विषय में बताया, "युवराज स्कन्द ने कोई एक साधारण रूप-रेखा की ग्राम्य युवती राजप्रासाद में लाकर रख ली थी। आते ही उसने महारानी का भी अपमान कर दिया। वह युवराज के आगारों में बैठी थी कि महारानी की उस पर दृष्टि पड़ गयी। महारानी ने उसके पास जाकर पूछा, 'तुम कौन हो?'

" 'पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो?' उस लड़की ने अपनी ग्रामीण भाषा में बड़े उजड्डपने से महारानी से पूछ लिया।

" 'मैं यहाँ की महारानी हूँ।'

" 'और मैं महारानी बनने के लिये आयी हूँ।' उसने उसी प्रकार उत्तर में कह दिया।

"दोनों में एक प्रकार से विवाद उठ पड़ा। महारानी ने तो महामात्य की सुन्दर कन्या को अपनी पुत्रवधू के रूप में चयन किया हुआ था। उसका वह स्वप्न चूर हुआ तो उसने धक्के दे-देकर उस ग्राम्य युवती को राजप्रासाद से बाहर निकलवा दिया।

"युवराज को जब इसका पता चला तो वह अपनी माँ से लड़ने आ गया। उसने उसको बताया कि वह तो उसको अपनी पत्नी बनाकर मगध की रानी बनाने के लिये लाया है।

"महारानी को क्रोध आ गया और उसने अपने पुत्र को प्रासाद से निकल जाने के लिये कह दिया।

"स्कन्द महारानी की शिकायत लेकर मेरे पास आया और कहने लगा कि महारानी कहती है कि उसकी पत्नी को कोई भी महारानी मानने के लिए तैयार नहीं होगा।

"महारानी ने उससे पूर्व ही महाराज को सारी घटना सुना दी थी। स्कन्द के मुख से जब मैंने महारानी की शिकायत सुनी तो मैंने भी उसको कह दिया कि महारानीजी ने जो कुछ कहा है वह ठीक ही कहा है।

"बस, उसी दिन वह उस ग्राम्य बाला को लेकर वहाँ से चल दिया। यह सुना गया कि वह नेपाल में अज्ञात स्थान पर जाकर रहने लगा था।

"आज पाँच वर्ष बाद वह एकाएक आया तो मैंने उसे आपके विषय में बताया और वह आपसे मिलने की इच्छा करने लगा।"

शिवकुमार ने युवराज की कथा सुन कह दिया, "यदि आप उचित समझते हैं तो उसे मेरे पास छोड़ दीजिए। मैं यत्न करूँगा कि इस मिट्टी से कोई सुन्दर प्रतिमा बन सके।"

"यहाँ राजप्रासाद में तो इसको सभी कर्मचारी जानते हैं। यह उनसे सम्पर्क कर किसी प्रकार का षड्यन्त्र करने लग जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"षड्यन्त्र करता है तो करने दीजिये। यह आपको तथा राज्य को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह अकेला तो क्या, यदि सम्पूर्ण सेना भी इसके साथ हो तो मैं उसको भी सन्मार्ग पर ला सकता हूँ।

"महाराज! इस बात की तो आप चिन्ता मत करिये। इसके विपरीत इस हृष्टपुष्ट युवक में यदि कुछ बुद्धि होगी तो मैं इसको सन्मार्ग पर ले आऊँगा और इस समय यह इस राज्य के लिए बहुत ही उपकारी होगा।"

"तो आपको इससे भी कुछ आशा है?"

"यह बलिष्ठ तो है, परन्तु नितान्त बुद्धिहीन नहीं है। इसके मस्तक पर मैं राजसी चिह्न भी देखता हूँ। वह कुछ-कुछ धुँधला अवश्य है किन्तु यदि यत्न किया जाए तो उसको स्पष्ट किया जा सकता है।"

"ठीक है, यत्न कीजिये। हम महारानी को समझा देंगे कि वह आपके कक्ष की ओर न जाए। व्यर्थ का विवाद उचित नहीं है।"

इस प्रकार महाराज से बात हो गयी। उसके बाद शिवकुमार अपने मन में विचार करने लगा कि स्कन्द उससे मिलने आयेगा अथवा कि नहीं।

अगले दिन प्रातःकाल जिस समय शिवकुमार और रमाकान्त अल्पाहार की प्रतीक्षा में बैठे थे कि ठीक उसी समय स्कन्द वहाँ आ गया। शिवकुमार ने उसे बुलाकर बैठा लिया।

स्कन्द बोला, "आपने कहा था कि आपके कक्ष में आकर आपके गुरुकुल में रहना होगा। मैं इस समय यही देखने आया हूँ कि आपके गुरुकुल में निवास और भोजन की कैसी व्यवस्था है। मनुष्य को भोजन और निवास की व्यवस्था तो पहले देख लेनी चाहिये। शिक्षा की बात तो उसके उपरान्त होगी।"

"हाँ युवराज! यह बात तुमने बुद्धिमत्ता की ही कही है। यह तुमने ठीक कहा है कि यह राजप्रासाद नहीं अपितु गुरुकुल है। यहाँ भोजन, वस्त्र और निवास सबके लिए एक समान ही होता है। यहाँ न कोई राजकुमार माना जाता है और न कोई साधारण कुमार।"

"इसीलिये तो मैं पहले आपके गुरुकुल का निरीक्षण करने के लिये आया हूँ। यदि यहाँ का जीवन अनुकूल लगा तो फिर अपनी पत्नी को भी ले आऊँगा।"

"वह इस समय कहाँ है?"

स्कन्द मुस्करा दिया। फिर बोला, "वह तो किसी अज्ञात स्थान पर है। यह मैं किसी को बताऊँगा नहीं और आपसे भी आशा करता हूँ, आप उसे जानने का आग्रह नहीं करेंगे।"

"ठीक है, मुझे किसी प्रकार का आग्रह नहीं है।"

तब तक अल्पाहार का समय हो गया।

पण्डितजी ने पूछा, "हमारे साथ अल्पाहार करोगे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ पण्डितजी ! इसीलिये तो आया हूँ।"

पण्डितजी ने रमाकान्त से कहा, "जाओ, पाचक से कहो कि तीन व्यक्तियों का अल्पाहार लाये।"

रमाकान्त जब अल्पाहार के कहने के लिए पाठशाला की ओर गया तो स्कन्द ने पूछा, "यह मेरा गुरु-भाई होगा ?"

"हाँ, इसका नाम रमाकान्त है। वैसे पारिवारिक सम्बन्ध में यह मेरा प्रपौत्र है।"

तभी रमाकान्त पाचक के साथ अल्पाहार लेकर आ गया। अल्पाहार में खीर, पूरियाँ और सब्जी तथा अचार आदि थे। सब चौकियों पर बैठ गये। पाचक ने सामने रखी चौकियों पर तीनों के लिए थाल लगा दिये। उनमें अल्पाहार परोस दिया गया।

पाचक अल्पाहार परोसकर चला गया तो युवराज ने रमाकान्त से कहा, "भाई रमाकान्त ! क्या आयु है इस समय तुम्हारी ?"

"यही सोलह वर्ष युवराज !"

"तुमने कैसे जाना कि ये युवराज हैं ?" यह प्रश्न शिवकुमार ने किया।

"मैंने जब पाचक से कहा कि वह तीन व्यक्तियों के लिए अल्पाहार लाये तो उसने मुझसे पूछा कि क्या युवराज भी हम लोगों के साथ ही अल्पाहार करेंगे ? इससे मैं जान पाया था कि आप युवराज हैं।"

पण्डित शिवकुमार ने फिर युवराज से कहा, "इस बात की आशंका तो महाराज भी करते थे, किन्तु मैंने उनको बताया है कि मेरे साथ रहते हुए तो तुम केवल स्कन्दकुमार ही रहोगे, युवराज नहीं।"

"परन्तु पण्डितजी ! मैं दूसरों को किस प्रकार मना कर पाऊँगा ?"

"दूसरों की बात छोड़ो; परन्तु तुमको तो यहाँ शिष्य भाव से ही रहना होगा। दूसरे क्या सोचते हैं, क्या कहते हैं, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।"

स्कन्द ने बात बदलते हुए कहा, "आपका भोजन स्वादिष्ट और पौष्टिक तो है, परन्तु खीर में मेवे और बादाम आदि नहीं हैं।"

"उनसे तो खीर का वास्तविक स्वाद ही बिगड़ जाता है। पाटलिपुत्र जैसे ऊष्ण जलवायु वाले स्थान पर उनका सेवन उपयुक्त भी नहीं है। कश्मीर और तिब्बत में उनका प्रयोग लाभकारी होता है। इस प्रकार के ऊष्ण जलवायु वाले स्थानों पर उनका प्रयोग लाभकारी कम ही होता है।"

"नित्य प्रातःकाल आप यही अल्पाहार करते हैं ?"

"नहीं, बदलता रहता है। कभी हलवा होता है, कभी दलिया होता है और कभी परांठे भी होते हैं। अल्पाहार का अर्थ है, कम किन्तु पौष्टिक आहार। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पेट ठसाठस भरना उचित नहीं होता।"

"अध्ययन का समय कौन-सा है ?"

"वैसे तो यहाँ का प्रत्येक समय अध्ययन का ही है। साथ रहना, वार्तालाप करना, सामान्य व्यवहार करना, ये सब शिक्षा के ही अंग माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रातः सूर्योदय से पूर्व दो घड़ी अध्ययन का समय है। उस समय स्नानादि से निवृत्त होकर यही कार्य होता है। दो घड़ी का समय साधना के लिए नियत है। उसके बाद दो घड़ी पुस्तक का अध्ययन होता है।

"पुस्तक का अध्ययन आरम्भ करने से पूर्व तो मैं यह देखूँगा कि तुम पहले से ही क्या-क्या जानते हो, क्या जानने की तुम्हारी क्षमता है, उसके आधार पर तुम्हारे लिये विद्या का निर्धारण करूँगा।

"अल्पाहार तक यह क्रम चलता है। तदनंतर तुम लोगों को पढ़ने के लिए काम देकर मैं स्वयं महाराज के पास विचार-विमर्श के लिए चला जाऊँगा।

"मध्याह्न भोजन से एक घड़ी पूर्व मैं वापस आता हूँ। भोजन के उपरान्त एक घड़ी-भर विश्राम के लिए होता है। तदनंतर मैं प्रश्नोत्तर करता हूँ। इस कार्य में प्रायः एक घड़ी समय लग जाता है।

"इसके बाद विद्यार्थी को भ्रमण के लिए अवकाश होता है और मैं राज्यकार्य में प्रवृत्त हो जाता हूँ।

"दीपक जलने से पूर्व विद्यार्थी को अपने स्थान पर लौट आना चाहिये। तब तक मैं भी राज्यकार्य से वापस आ जाता हूँ। उस समय से रात्रि के भोजन के समय तक देश-विदेश की राजनीति तथा इतिहास आदि की चर्चा भी किया करते हैं।"

राजकुमार बड़े मनोयोग से यह सब सुनता रहा और फिर बोला—"मैं आपके इस कार्यक्रम में सम्मिलित होना चाहता हूँ, परन्तु मैं अपनी पत्नी को अपने साथ ही रखना चाहता हूँ। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस कार्यक्रम में मुझे उसकी सेवा के लिए भी तो कुछ समय चाहिये।"

"यदि वह यहाँ आयेगी तो वह भी यहाँ शिष्या के रूप में ही रहेगी। उसको भी मेरे दिन-भर के इस कार्यक्रम को स्वीकार करना होगा।"

"तो आप उसको भी पढ़ाया करेंगे ? किन्तु वह तो सामान्य भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त कुछ लिख-पढ़ ही नहीं सकती ?"

"यह देखना तो मेरा काम है कि उसमें किस बात की योग्यता है और उस को क्या पढ़ाया जाना चाहिये।"

"और उसका बच्चा ?"

"वह कितना बड़ा है ?"

"तीन वर्ष का होने वाला है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसके लिए सेविका का प्रबन्ध करना होगा। वह भी कर दिया जायेगा। यदि यह सम्भव हुआ तो मैं तुम्हारी पत्नी को मगध की महारानी बनने लायक बना सकूँगा।"

यह सुनकर तो स्कन्दगुप्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह पण्डितजी का मुख देखता रह गया।

"तुम्हें उसकी शिक्षा का भार वहन करना नहीं पड़ेगा। यह सब मेरा काम है। यह मैं उसके आने पर विचार कर लूँगा। किन्तु यदि उसको यहाँ आकर रहना है तो शिष्य भाव से रहना होगा और पढ़ाई करनी होगी।"

अल्पाहार समाप्त होने पर तीनों उठकर हाथ धोने लगे।

पण्डितजी ने स्कन्दगुप्त को देखकर कहा, "लगता है, तुम्हें तृप्ति नहीं हुई ?"

"आपका अनुमान ठीक है।"

"तो दिन को भी सोने का अभ्यास होगा ?"

"जी हाँ। खाना-पीना और सोना। वहाँ इसके अतिरिक्त कोई कार्य भी तो नहीं था।"

"परन्तु यहाँ तो उन्नति के शिखर पर चढ़ने का कार्य है।"

स्कन्द ने कहा, "अब मैं जाना चाहता हूँ। मैं अपनी पत्नी को लेकर यहाँ आऊँगा।"

"कब तक आने का विचार है ?"

स्कन्द कुछ सोचता रहा। फिर बोला, "क्यों ?"

"मैं कुछ समय बाद कौशाम्बी जाने वाला हूँ।"

"कब तक जाने वाले हैं ?"

"एक सप्ताह तक।"

"तब तक मैं आ जाऊँगा।"

: ६ :

प्रातःकाल का अल्पाहार करने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार नियमानुसार महाराज के पास चले गये।

आज महाराज ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "पण्डितजी! आपके शिष्य ने क्या निश्चय किया है ?"

नित्य ही प्रातःकाल पण्डितजी इस प्रकार आते थे और इस समय महाराज उनके सम्मुख यदि कोई नवीन समस्या उत्पन्न हुई होती तो उसको रखकर उसका समाधान उनसे चाहते थे। अन्यथा किसी पुराने विषय पर भी चर्चा होती रहती थी।

महाराज का प्रश्न सुनकर पण्डितजी ने कहा, "महाराज! वह अल्पाहार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय आया था। उसने हमारे साथ ही अल्पाहार किया था।

"अल्पाहार से पूर्व उसने उस कक्ष में रहकर जीवन का विधि-विधान जानने का यत्न भी किया था। उसकी जिज्ञासा जानकर मैंने उसे सारी कार्य-विधि समझा दी है।"

"उसकी शिक्षा कब से आरम्भ हो रही है ?"

"वह एक सप्ताह के बाद आने के लिए कह गया है। उसके बाद ही आरम्भ होगी।"

"हमें तो अभी भी वह कुछ-कुछ उजड्ड प्रकृति का लगता है। मुझे और महारानी को भय है कि वह कहीं आपका किसी प्रकार कुछ अनिष्ट न कर दे।"

"वह मेरा अनिष्ट नहीं कर सकता। हाँ, यदि उसने इस दिशा में कुछ भी यत्न किया तो उससे उसका ही अनिष्ट होगा, मेरा नहीं।

"महाराज ! आप इस विषय में चिन्ता न करें। लकड़ी कितनी भी कुरूप और टेढ़ी-मेढ़ी हो, शिल्पकार उससे सुन्दर और चमकीला तथा चिकना-सा सिंहासन बना ही लेता है।

"आरम्भ में तो प्रत्येक वस्तु भद्दी और रूपहीन ही होती है। यह तो निर्माण करने वाले की कुशलता ही है कि उससे वह सुन्दर, सुखकारक और उपकारी तथा उपयोगी वस्तुयें बना देता है।"

"मुझसे अधिक महारानी को आपकी चिन्ता है। उनका कहना है कि वह भाग्यहीन आपको कष्ट ही देगा। आपके प्रति महारानी के मन में बड़ा आदर और श्रद्धा है। इस कारण उनको चिन्ता भी अधिक है।"

"आप महारानीजी को समझा दीजिये कि अपने जीवन में मैं स्कन्द से भी अधिक उग्र एवं उजड्ड प्रकृति के लोगों से निपट चुका हूँ। मैं देख रहा हूँ कि ईश्वर की कृपा से मेरी आयु तीस वर्ष तक और है। उसे वह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता।"

महाराज ने विषय बदलकर पूछा, "आपका कार्यक्रम कौशाम्बी जाने का था ?"

"मैंने आपको बताया था कि अभी तो वह शिविर बसा ही नहीं। उसमें अभी एक मास का समय और लगने वाला है। वहाँ जाने का तब ही लाभ है जब वह पूर्ण रूप से बस जाये। उसके बाद ही वहाँ की व्यवस्था देखी जा सकती है और उसके बाद ही उसमें परिवर्तन अथवा सुधार के विषय में विचार किया जा सकता है।"

महाराज ने कहा, "हम चाहते हैं कि आप वहीं से सौराष्ट्र चले जायें सौराष्ट्र-नरेश को भी इस अभियान में हमारे साथ सहयोग करने के लिए प्रेरित करें। और फिर उनकी सेना का शिविर भी उज्जयिनी के बीस-तीस कोस पश्चिम में स्थापित हो सके तो फिर हम विदिशा वालों की ओर से निश्चिन्त होकर अंग देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सुगमता से निपट लेंगे।"

"सौराष्ट्र वालों से भी मेरी प्रारम्भिक बात तो हो ही चुकी है। अब तो विस्तार से बात करनी है। उस समय कुछ व्यय आदि की भी चर्चा चलेगी। मैं समझता हूँ कि सबकुछ सुविधाजनक प्रबन्ध हो जायेगा।"

"उस स्थिति में अपने शिष्यों की क्या व्यवस्था करेंगे ?"

"शिष्य तो सदा ही मेरे साथ रहेंगे।"

"और उसकी पत्नी ?"

"उसकी व्यवस्था मैं यहाँ करके जाऊँगा। उसको उतनी अवधि के लिए कार्य सौंप जाऊँगा।"

"उसके बच्चे का क्या प्रबन्ध होगा ?"

"वे दोनों यदि आ गये तो उसके बाद उसके बालक के लिए एक सेविका की व्यवस्था करनी होगी। सेविका को भी प्रासाद के उसी कक्ष में ही रहना होगा।"

महाराज ने कहा, "महारानीजी बच्चे को देखना चाहती हैं। यदि बालक होनहार हुआ तो उसको वे अपने पास अपनी देख-रेख में रखना चाहेंगी।"

"यह तो उनके आने पर और फिर बालक की माता के यह स्वीकार करने पर ही सम्भव होगा। मैं समझता हूँ कि बालक पर उसकी माता का अधिकार सर्वोपरि होता है।"

"महारानीजी उसे स्कन्द से श्रेष्ठ बनाने की योजना बनाने लगी हैं।"

यह सुन शिवकुमार के मुख पर मुस्कराहट खेल गयी। उसने कहा, "अपनी सन्तान के विषय में तो पूर्णतया असफल सिद्ध हुई हैं ?"

"आप ठीक कहते हैं; किन्तु उनका कहना है कि अब वे पूर्वापेक्षा अधिक अनुभवी और बुद्धिमती हो गयी हैं।"

"ठीक है। राजकुमार को आने दीजिये। तदनंतर ही इस दिशा में कुछ सोचा जा सकता है। यत्न किया जायेगा कि महारानी की योजना सफल हो।

"हाँ, एक बात का निश्चय तो अभी ही किया जा सकता है कि उस बच्चे के पालन-पोषण के लिए जो धाय हो उसे महारानीजी अपनी सेविकाओं में से अभी से चयन कर लें। इससे बात अधिक सुगम हो जायेगी।"

जैसा कि स्कन्द ने कहा था, तदनुसार वह एक सप्ताह से पूर्व ही लौट आया। पण्डित शिवकुमार जिस दिन कौशाम्बी जाने वाले थे उससे एक दिन पूर्व वह अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर आ गया।

मध्याह्नोत्तर का समय था। पण्डितजी अपने प्रपौत्र शिष्य रमाकान्त से वार्तालाप में निमग्न थे। सेवक ने आकर सूचना देते हुए कहा, "पण्डितजी ! युवराज एक युवती और उसके साथ बच्चे को लेकर आ गये हैं और साथ ही आगार को खुलवाना चाह रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितजी ने कहा, "आगार तो तुम खोल दो, किन्तु देखो, राजप्रासाद के इस भाग में वह राजकुमार या युवराज कुछ नहीं है। यहाँ केवल स्कन्दगुप्त ही कहलायेगा। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार यह बालक यहाँ केवल रमाकान्त है उसी प्रकार वह भी यहाँ स्कन्दकुमार बनकर रहेगा। युवराज बनकर नहीं।"

सेवक ने पूछा, "पण्डितजी ! वह महिला ?"

पण्डितजी कुछ विचार करने के बाद बोले, "उसका नाम आदि जानकर बताऊँगा कि वह क्या है। अभी तो तुम इतना ही समझ लो कि वह रमाकान्त की बहिन है।"

सेवक वहाँ से जाने लगा तो पण्डितजी ने उससे फिर कहा, "देखो, जाकर दो आगार खोल दो। उसके बाद महारानीजी के पास चले जाओ। उनसे कहना कि पण्डितजी ने एक तीन वर्ष के शिशु के लिए सेविका की व्यवस्था के लिए कहा था। कृपया उस सेविका को तुरन्त भेज दें।"

इस प्रकार पण्डितजी ने सेवक को भेज दिया। वे फिर रमाकान्त से उसकी प्रातःकाल की पढ़ाई के विषय में प्रश्नोत्तर करने लग गये।

उसी समय राजकुमार उस आगार में आ गया। उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी अपने बच्चे को लिए हुए आ रही थी।

पण्डितजी ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "आओ स्कन्द ! कैसी रही तुम्हारी यात्रा ?"

"पण्डितजी ! कुछ विशेष कष्ट नहीं हुआ। यहाँ हम मध्याह्न के कुछ कालोपरान्त पहुँच गये थे। किन्तु हमने यही सोचा कि अब तक तो आपके यहाँ मध्याह्न का भोजन समाप्त हो गया होगा। इस कारण हम धर्मशाला में टिक गये। वहीं हमने भोजन किया। फिर कुछ देर विश्राम कर ही इधर आये हैं।"

उसी समय सेवक अपने साथ महारानी द्वारा नियुक्त सेविका को लेकर आ गया।

सेवक द्वार पर ही खड़ा हो गया और उसने वहीं से कहा, "पण्डितजी ! सेविका आ गयी है।"

पण्डितजी ने कहा, "आओ बहिन ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"पण्डितजी ! मुझे भगवती कहते हैं।"

"भगवती ! देखो, इस बालक को अपनी गोद में ले लो। इसको बाहर दालान में ले जाओ और वहाँ इसको खिलाओ। अब से तुम यहीं रहोगी और इस बालक तथा इसकी माता की सेवा किया करोगी। तुम्हारे भोजन आदि का भी प्रबन्ध सब यहीं से होगा।

"समझ गयी हो न ?"

"जी पण्डितजी ! समझ गयी हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है। बच्चा सँभालो।"

सेविका बच्चे को लेकर चली गयी।

पण्डितजी ने पूछा, "स्कन्द ! तुम्हारी पत्नी का क्या नाम है ?"

"बताओ, क्या नाम है तुम्हारा ?" स्कन्द ने अपनी पत्नी की ओर देख उससे ही कहा।

उसकी पत्नी ने अपना मुख ऊपर नहीं उठाया। यों ही मुख नीचे किये उसने कहा, "माँ ने तो मेरा नाम सुखिया रखा था। इन्होंने मेरा नाम श्रीमती कर दिया है।"

"देखो, यहाँ न तो सुखिया नाम चलेगा और न श्रीमती ही। अब तुम ही बताओ, तुम्हारा क्या नाम रखा जाए ?"

"मैं क्या बताऊँ ? आप ही बता दीजिये कि मेरा क्या नाम होना चाहिये। मुझे वह स्वीकार होगा।"

"शकुन्तला ठीक है ?" पण्डितजी ने पूछा।

उसने अपने पति की ओर देखकर कहा, "क्यों जी, यह नाम आपको कैसा लगता है ?"

"गुरुजी जो कह दें, समझ लो कि बस वही ठीक होगा।"

"तो अब से मेरा नाम शकुन्तला होगा ?"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "शकुन्तला ! देखो, तुम्हें विदित है कि स्कन्द तुम्हें यहाँ मुझसे पढ़ने के लिए लाया है ?"

"उससे क्या होगा महाराज ?"

"अगर मेरा प्रयत्न सफल हो गया तो हो सकता है कि तुम इस देश की महारानी बन जाओ।"

"वह तो मैं इनसे विवाह करने से ही हो गयी थी।"

"विवाह करने से तो कोई महारानी नहीं हो सकती। न कोई महाराजा ही होता है। ऐसे तो बहुत हो गये हैं कि जो महाराजा और महारानी के पुत्र होकर भी वीथिकाओं में भिक्षा माँगते हुए परलोक सिधार चुके हैं। और इसके विपरीत ऐसे भी बहुत हो गये हैं जो महाराजाओं की सेज की कभी श्रृंगार बनी थीं, वे भी गलियों की खाक छानती हुई परलोक जा पहुँची हैं।

"देखो बेटी ! राज-पद तो भगवान् की कृपा से उसका भजन करने पर और अपनी योग्यता को उस योग्य बनाकर ही प्राप्त होता है। जन्म और विवाह से ऐसे पद प्राप्त नहीं होते।"

"तो फिर ?" पत्नी ने अपने पति की ओर देखकर यह प्रश्न किया था।

स्कन्द बोला, "इन दोनों बातों के लिए ही तो मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितजी ने कृपा करके तुमको और मुझको ये दोनों ही गुण दान करने का वचन दिया है। यदि इनकी कृपा हुई तो तुम्हारा मनचाहा हो जायेगा।"

"तो इसके लिए क्या करना होगा?"

पण्डितजी ने इसका उत्तर देते हुए उसको बताया, "कल प्रातःकाल सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व उठकर प्रातः-कृत्य से और स्नान आदि से निवृत्त हो जाना। कल से मैं तुम लोगों को दोनों प्रकार की तैयारी का ढंग बताना आरम्भ कर दूँगा।"

"करना तो तुम दोनों को ही है। जितनी लगन से और यत्नपूर्वक तुम लोग करोगे, उतनी ही सुगमता से मान, पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल हो जाओगे।"

स्त्री तो पण्डितजी का मुख देखती रही।

पण्डितजी ने स्कन्दकुमार को सम्बोधित होकर कहा, "मैं कल यात्रा पर जा रहा हूँ। तुम मेरे साथ चलने के लिए तैयार रहना। कल हम प्रातःकाल का अल्पाहार करके यहाँ से चलेंगे। हमें दो मास लग सकते हैं। पत्नी से इतने समय के लिए अवकाश ले लेना।"

"और यह क्या यहाँ अकेली रहेगी?"

"इसे हम साथ नहीं ले जा सकते। इससे हमारी गति में अन्तर आ जायेगा। फिर साथ में बच्चा भी तो है। उसका विचार करना परम आवश्यक है। वह अपनी माँ के पास ही यहाँ रहेगा।"

स्कन्दकुमार को समझाकर पण्डितजी ने उसकी पत्नी से कहा, "शकुन्तला बेटी! मैं आज रात्रि के समय तुम्हारी परीक्षा लूँगा। उसके बाद मैं निश्चय करूँगा कि तुमको इन दो मास के लिए क्या काम देकर जाऊँ। जो काम मैं करने को कहूँगा वह सब मैं आकर तुमसे पूछूँगा। इसलिये उसे करके रखना।

"अब तुम लोग जाओ और अपना काम करो अथवा आराम करो, जैसा भी ठीक समझते हो। मैं अब इस समय महाराज के पास जाऊँगा। उनसे भेंट का समय हो गया है।"

इतना कहकर पण्डितजी उठे और रमाकान्त से बोले, "तुम मेरे साथ आओ।"

जब पण्डितजी चले गये तो स्कन्द की पत्नी शकुन्तला ने कहा, "यह तो कुछ भी नहीं!"

"तो तुम क्या चाहती थीं?"

"अभी आप बहुत दिनों बाद तो वैसे भी गाँव में लौटे थे और फिर दो महीने के लिए जा रहे हैं। मैं तो अकेली रह जाऊँगी।"

"मैं युद्ध पर जा रहा हूँ और यदि युद्ध से जीवित न लौट पाया तो क्या करोगी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो सती हो जाऊँगी।"

"बस, फिर तो तुम मेरे जीवित रहने के लिए भगवान् से प्रार्थना करती रहना। इस प्रकार समय बीत जायेगा और मैं भी जीवित जागृत वापस लौट आऊँगा।"

इस सम्भावना पर तो उसे महारानी बनना अखरने लगा, किन्तु वह विवश थी।

शिवकुमार उस प्रातःकाल जब महाराज की बैठक में पहुँचा तो महाराज ने पूछा, "आपकी शिष्यमण्डली आ गयी?"

"जी, आ गयी है।"

"जब आपका सेवक महारानीजी के पास सेविका के लिए पहुँचा तो उस समय हम भी वहीं थे। सेविका जब जाने लगी तो उसको महारानी ने कहा कि वह बच्चे को खिलाती हुई उसके पास ले आये। देखें तो सही कि वह है कैसा?

"हम वहीं थे कि थोड़ी देर बाद सेविका भगवती उस बच्चे को लेकर वहाँ आ गयी। महारानी ने उसको देखा और पसन्द कर लिया है। बच्चा स्वस्थ था और सुन्दर भी। कदाचित् खुले वायुमण्डल में रहता होगा, इस कारण उसका वर्ण कुछ श्यामल-सा है। हमें जहाँ तक स्मरण है, स्कन्द भी उसकी आयु में वैसे ही वर्ण का था।

"महारानी ने बच्चे को अपनी गोद में लेकर उसको बार-बार प्यार किया। इससे स्पष्ट है कि वह उनको भा गया है। आधी घड़ी तक बच्चा महारानी के पास रहा था। फिर उन्होंने उसको वापस भेज दिया था।"

"यह प्रसन्नता की ही बात है।"

"हम समझते हैं कि महारानीजी इस बालक को अपनी देख-रेख में ले लेना चाहेंगी।"

"कोई भी योजना तुरन्त लागू नहीं करनी चाहिये। धीरे-धीरे ही इस ओर यत्न किया जाना अच्छा होगा। इस समय राज्य को स्कन्द की अत्यधिक आवश्यकता है। उस बालक के विषय में समय आने पर विचार कर लिया जायेगा। उसमें अभी बीस वर्ष का समय है। उससे पूर्व उस बालक की आवश्यकता कम ही है।"

यह सुनकर महाराज को हँसी आ गयी। फिर कहने लगे, "यह तो स्त्री-स्वभाव है। कोई भी शिशु देखा नहीं कि उसको प्यार करने लगती हैं और फिर यह तो उनका अपना अंश है।"

"मैं इसमें किसी प्रकार की हानि नहीं समझता। मेरा तो केवल इतना ही कहना है कि उस बच्चे पर त्वरा में किसी प्रकार का अधिकार करने का यत्न नहीं किया जाना चाहिये।

"स्त्री जहाँ स्नेह और प्रेम की प्रतिमूर्ति होती है वहाँ वह प्रचण्ड ज्वाला के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान भी होती है। कहीं चण्डी का भाव उभर आया तो फिर इस ब्राह्मण के वश से बाहर की बात हो जायेगी।"

महाराज ने यह सुना तो गम्भीर होकर पण्डितजी का मुख देखने लगे। शिवकुमार ने आगे कहा, "इतिहास यही बताता है कि गुप्त साम्राज्य उन्नति के पथ पर आरूढ़ था कि स्त्रियों के मोह-जाल में फँस गया और वहीं से उसका ह्रास आरम्भ हो गया।

"महाराज समुद्रगुप्त ही पहली बार आपके परिवार में महाराजा का विरुद् प्राप्त करने में सफल हो पाये थे। यह विरुद् भी उनको उनकी अनेक विजयों के उपरान्त उपलब्ध हो पाया था। परन्तु उसी समय वैशाली की एक कन्या ने वैमनस्य का बीजारोपण कर दिया।

"यह तो महाराज समुद्रगुप्त का भाग्य था कि उस समय पण्डित हरिषेण जैसे व्यक्ति उनके परामर्शदाता थे। ज्योंही उन्होंने देखा कि विष-वृक्ष फैल रहा है, उन्होंने उसका प्रतिकार कर दिया।

"महाराज समुद्रगुप्त ने उस भूल की पुनरावृत्ति की। एक दिन शिकार खेलने के लिए गये कि एक सामान्य से परिवार की कन्या को पकड़कर ले आये। उनकी पटरानी उनसे कुपित हुई और उनको त्याग करके स्वयं उज्जयिनी को प्रस्थान कर गयी। अपने पुत्र को भी साथ लेती गयी।

"मगध साम्राज्य पर यह दूसरी चोट थी। उस समय भी महाराज समुद्रगुप्त के भाग्य और ऐश्वर्य ने बिगड़ी बात को कुछ सँभाल लिया। किन्तु ज्योंही उनका पुत्र बड़ा हुआ, उसने उनकी ही हत्या कर डाली।

"आपके पिताश्री ने भी इतिहास से कुछ भी शिक्षा ग्रहण न कर उन्होंने भी स्वयं दो विवाह कर लिये।

"जिस प्रकार भरपूर बल से किसी गेंद को फेंका जाता है तो वह उस बल के आवेग से उतनी दूर तक लुढ़कती चली जाती है, किन्तु ज्योंही वह आवेग समाप्त हुआ कि गेंद की गति मन्द और मन्दतर हो जाती है, वही स्थिति मगध की हुई। पूर्वपुरुषों अथवा पूर्वकृत्यों के आवेग के कारण कुछ समय तक तो साम्राज्य की गति बनी रही किन्तु शीघ्र ही उसका ह्रास आरम्भ हो गया।

"अपने पिता के राज्यकाल में ही विक्रम की दूसरी पत्नी के पुत्र ने विद्रोह कर दिया।

"साम्राज्य दुर्बल होता गया और आपके पिताजी के जीवनकाल में ही आपके भाई ने पिता से विद्रोह कर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। उसके बाद मगध का महामन्त्री वररुचि बना। उसकी गलत नीतियों के कारण मगध को त्रिविष्टप में पराजय का मुख देखना पड़ा। वैसे तो त्रिविष्टप के साथ युद्ध अनावश्यक था, किन्तु जब पराजय हुई तो उससे साम्राज्य की महिमा मिट्टी में मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी।

"स्त्रियों का झमेला राज्य की जड़ों को खोखला कर देता है। आपके पिता के महामन्त्री वररुचि ने स्वयं भी दो विवाह किये हुए थे। वह भी एक सरल-सी बात को समझने में असमर्थ रहा। मैंने उससे कहा था कि भारत की आर्थिक दशा से तिब्बत की आर्थिक दशा का कोई सम्बन्ध नहीं है। त्रिविष्टप किसी को यह विवश नहीं करता कि वह उसकी वस्तुओं का क्रय करे। उस महाशय का कहना था कि त्रिविष्टप के लोग अपनी वस्तुयें कम मूल्य पर देते हैं और उनकी वस्तुयें भी श्रेष्ठ होती हैं। त्रिविष्टप को चाहिये कि वह इस प्रकार की वस्तुओं के निर्यात पर रोक लगाये। इस प्रकार की बात दो पत्नियों का पति ही कर सकता था।"

महाराज ने विषय परिवर्तन कर कहा, "आप कल कौशाम्बी जा रहे हैं। वहाँ का सैनिक शिविर और उसके साथ ही सौराष्ट्र का सैनिक शिविर दोनों ही इतने सुदृढ़ होने चाहिये कि विदिशा वालों के सिर उठाते ही उसको वहीं कुचलकर रख दिया जाए।"

शिवकुमार ने कहा, "मुझे पूर्ण आशा है कि विदिशा को मुँह की खानी पड़ेगी। और यदि पुष्यमित्रों के साथ युद्ध के समय विदिशा ने पुनः सिर उठाया तो भारत के मानचित्र में से विदिशा का नाम और चिह्न ही मिट जायेंगे।"

इस प्रकार वार्तालाप कर निश्चित समय पर शिवकुमार वहाँ से वापस आ गया। दिन-भर के कार्य यथावत् चलते रहे।

रात्रि भोजन के समय शिवकुमार का शिष्य समुदाय पटरियों पर पालथी मारे बैठा था। सामने रखी चौकियों पर सजे थालों में भोजन सामग्री रखी हुई थी।

इस समय स्कन्दगुप्त का पुत्र बालक प्रद्युम्न भी उनके साथ ही बैठा हुआ था। उसके समीप ही उसकी सेविका भगवती बैठी उसको खिला रही थी।

खाते-खाते स्कन्द ने कहा, "पण्डितजी! भगवती आज प्रद्युम्न को उसकी दादी के पास ले गयी थी।"

"अच्छा!" पण्डितजी ने इस प्रकार आश्चर्य व्यक्त किया मानो उनको इस विषय में ज्ञान ही न हो और वे पहली बार इस बात को सुन रहे हों।

यह सुनकर भगवती ने अपना स्पष्टीकरण करते हुए कहा, "मैं कुमार को गोदी में लेकर प्रांगण में पुष्करिणी पर जल-प्रपात दिखाकर इसका मनोरंजन कर रही थी। उस समय महाराज तो महारानीजी के समीप होते हैं। किन्तु सदा के विपरीत महारानीजी आज पुष्करिणी के किनारे उस समय टहल रही थीं। उन्होंने मुझे बच्चे के साथ देखा तो अपने समीप बुला लिया। मैं उनके समीप गयी तो पूछने लगीं, 'यह किसका बच्चा है?'

"मैंने कह दिया, 'राजकुमार का।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उन्होंने बालक को उठाया और अपनी गोद में ले लिया। वे उसको हँसाने का यत्न करती हुई उसको प्यार करने लगीं। और फिर उसको उसी प्रकार अपने आगार में ले गयीं।

"एक घड़ी-भर यह बच्चा उनके साथ खेलता रहा है और जब वापस लाने लगी तो इसके गले में उन्होंने यह सोने की माला डाल दी तथा हाथ में एक सुन्दर-सा खिलौना दे दिया।"

महारानी ने बालक को जो खिलौना दिया था, वह काष्ठ का हाथी था। खिलौने का रंग हाथी के रंग का ही था, किन्तु उस पर जो आसन बना था तथा झूल आदि लटक रहे थे वे सब रंग-बिरंगे थे।

पण्डितजी ने बालक से ही पूछा, "प्रद्युम्न, कहाँ गये थे ?"

बालक ने गले में पड़ी माला दिखा दी। उसका कहना शायद यही था कि इसको देने वाली के पास वह गया था।

पण्डितजी ने कहा, "मैं इसे शुभ लक्षण मानता हूँ। इस प्रकार महारानीजी और शकुन्तला में यह सेतु का कार्य करेगा।"

स्कन्द को यह सुनकर प्रसन्नता हुई।

भगवती को भय लग रहा था कि कहीं उसने बच्चे को दादी के पास ले जाकर भूल तो नहीं की। जिस समय वह बालक को लेकर गयी थी उस समय तो वह यही समझी थी कि उसका इस प्रकार बालक को ले जाना गुप्त ही रहेगा किन्तु जब उसके गले में सोने की बहुमूल्य माला और हाथ में सुन्दर खिलौना आया तो फिर उसका वहाँ ले जाना किसी प्रकार भी गुप्त नहीं रखा जा सकता था।

इसीलिये अपने सुनियोजित कृत्य को उसने एक आकस्मिक घटना का रूप देकर सुना दिया।

पण्डितजी ने जब उसको शुभ लक्षण माना और कुमार ने भी प्रसन्नता व्यक्त की तो उसको इससे सान्त्वना मिली और वह प्रसन्नता से बालक को भोजन कराती रही।

: ७ :

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार अगले दिन प्रातःकाल सबने यथासमय अल्पाहार किया और फिर दो रथों को लेकर पण्डित शिवकुमार अपने शिष्यों के साथ कौशाम्बी के लिए चल दिया।

एक रथ पर तो पण्डित शिवकुमार स्वयं और उनके दो शिष्य बैठे थे तथा दूसरे रथ पर उनका सामान तथा सेवक बैठे थे। मार्ग में पण्डित शिवकुमार अपने शिष्यों को स्मृति और शास्त्र की बातें बताते रहे। उसके साथ ही भारत के प्राचीन इतिहास और राजाओं के व्यवहार की विवेचना भी वह करता जाता था।

इसी प्रकार एक दिन पण्डित शिवकुमार ने महाभारत की भी विवेचना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सुनकर स्कन्द ने प्रश्न किया, "पण्डितजी ! हम लोगों में यह विख्यात है कि महर्षि व्यासकृत महाभारत ग्रन्थ महान् धर्मग्रन्थ है। किन्तु आपने तो अपनी विवेचना में धर्मराज युधिष्ठिर तक को महामूर्ख सिद्ध कर दिया है। जन साधारण तो उसको धर्म का अवतार ही मानता रहा है ?"

"यह तो तुम जानते ही हो कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय उसकी कितनी प्रतिष्ठा थी ?"

"हाँ गुरुदेव ! उनकी तो उस समय बहुत प्रतिष्ठा थी। सम्भवतया समस्त जम्बूद्वीप उस समय उनकी जय-जयकार करता था।"

"तुम ठीक कह रहे हो। किन्तु जब महाभारत का युद्ध हुआ उस समय तो वे सब इसकी सहायता के लिये आये नहीं। न केवल इतना, उनमें से अनेक राजा-महाराजा तो युधिष्ठिर के विरुद्ध भी हो गये थे।"

"जी हाँ, किन्तु इसका कारण तो यह था कि पाण्डवों के वन में चले जाने पर उनके शत्रु दुर्योधन ने उनके विरुद्ध इन राजा-महाराजाओं के कान भर दिये थे।"

"यह तो ठीक है, किन्तु तुम समझते हो कि वे राजा-महाराजा भी मूर्ख थे जो इस प्रकार दुर्योधन की बात सुनकर उस पर विश्वास करने लगे थे ? इसके विपरीत यदि युधिष्ठिर के जीवन पर विवेचनात्मक दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उन पाँचों भाइयों में युधिष्ठिर सबसे अधिक मूर्ख था।

"जब भीम को विष देकर नदी में बहा दिया गया था तो युधिष्ठिर को तो उसी समय समझ जाना चाहिये था कि दुर्योधन आदि सभी कौरव उससे तथा उसके भाई पाण्डवों से द्वेष रखते हैं और वे ऐसा कोई भी अवसर नहीं चूकेंगे जब वे पाण्डवों को क्षति पहुँचा सकें।

"किन्तु युधिष्ठिर यह नहीं समझ सका और दुर्योधन के निमन्त्रण पर उसके साथ जुआ खेलने के लिये चल पड़ा। इतना ही नहीं अपितु विदुरजी महाराज जो कि इस खेल का निमन्त्रण देने आये थे, उन्होंने उसको संकेत भी किया था कि उसे वहाँ नहीं जाना चाहिये, किन्तु युधिष्ठिर नहीं माना।

"खेलते हुए जब युधिष्ठिर हारने लगा तो उसने उस खेल में अपने राज्य और अपनी पत्नी को इस प्रकार दाँव पर लगा दिया मानो वह सब उसकी स्व-अर्जित निजी सम्पत्ति हो।

"युधिष्ठिर की अपेक्षा द्रौपदी कहीं अधिक शिक्षित और बुद्धिमती थी। उसने पाँचों भाइयों के हार जाने के उपरान्त भी पत्नी को दाँव पर लगाने की बात को युक्ति और व्यवहार के विपरीत सिद्ध कर दिया था। उस समय तो भीष्म पितामह भी वहाँ पर थे। वे भी द्रौपदी की युक्ति का खण्डन नहीं कर सके। भले ही अपनी दास-वृत्ति के कारण उन्होंने दुर्योधन का पक्ष न छोड़ा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"युधिष्ठिर पर इसका भी कुछ प्रभाव न हुआ और वह फिर दाँव पर दाँव लगाता रहा।

"युधिष्ठिर से मिलने के लिए कृष्ण वन में गये थे और उस समय उन्होंने उसको जो परामर्श दिया था उसे यदि वह स्वीकार कर लेता तो तब भी इतना विनाशकारी युद्ध होने की सम्भावना नहीं थी जो कि उसके न मानने से बाद में हुआ था।

"युधिष्ठिर के चारों भाई और द्रौपदी भी वहीं वन से लौट जाना चाहते थे। वे इन्द्रप्रस्थ जाकर बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लेने के पक्ष में थे, परन्तु युधिष्ठिर ने यह स्वीकार नहीं किया। वह वन से जाने के लिये उद्यत नहीं हुआ तो उस अवस्था में उसके भाई तथा पत्नी उसको अकेला छोड़कर इन्द्रप्रस्थ वापस नहीं जा सके।

"बाद में भी जब गन्धर्वों ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया उस समय युधिष्ठिर इन्द्र को अपना शत्रु समझने लगा। जब भी वह दुर्योधन को अपना भाई ही समझता था। बस, यही उसकी दुर्बुद्धि की बात है। इसके कारण ही उस महायुद्ध में कोटि-कोटि योद्धाओं की असामयिक मृत्यु हुई।

"शत्रु और मित्र की पहचान उनके कर्मों से होती है। वे किस परिवार में उत्पन्न हुए हैं, उससे नहीं। यदि कृष्ण पाण्डवों के परामर्शदाता न होते तो युद्ध का परिणाम उसके सर्वथा विपरीत ही होता जो कि उनके परामर्श से हुआ था।"

इस प्रकार पण्डित शिवकुमार अपने शिष्यों को दिन-प्रतिदिन शिक्षित करते जा रहे थे और मार्ग की दूरी भी सिमटती जा रही थी और फिर एक दिन वे कौशाम्बी जा पहुँचे।

कौशाम्बी पहुँचकर राजप्रासाद के बाहर अपना रथ रुकवाकर पण्डितजी ने अपने आने की सूचना महाराज के पास भिजवा दी।

सूचना मिलते ही महाराज दौड़कर आये और पण्डितजी को प्रणाम कर सबका स्वागत करते हुए उनको भीतर ले गये।

जिस समय पण्डित शिवकुमार वहाँ पहुँचे थे उस समय महाराज अपनी पत्नी और पुत्री के साथ अपनी बैठक में बैठे हुए थे। तभी प्रतिहार ने आकर पण्डितजी के पधारने की सूचना दी थी।

महारानी पण्डितजी से भली-भाँति परिचित थी। उस परिचय का ही यह परिणाम था कि उसने अपने राजकुमारों को पण्डितजी के अधीन शिक्षित करने की इच्छा प्रकट की थी। उस समय जब महारानी ने पण्डितजी के आने की सूचना सुनी तो वह अपने आगार में न जाकर पण्डितजी का स्वागत करने के लिये वहीं रुकी रही।

महारानी के साथ उनकी राजकुमारी भी थी। इस समय राजकुमारी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु सोलह वर्ष की हो गई थी।

महारानी ने जब देखा कि पण्डितजी के साथ दो अन्य युवक भी हैं तो वह राजकुमारी को लेकर अन्तःपुर की ओर जाने लगी। उस समय जाते-जाते स्कन्द ने राजकुमारी को देख लिया।

महारानी और राजकुमारी उस कक्ष से निकलकर चले गये तो महाराज ने कहा, "आज महारानी के साथ हमारी राजकुमारी वत्सला भी यहीं बैठी थीं। हमारी यह कन्या दोनों राजकुमारों से बड़ी है। हम विचार कर रहे हैं कि भावी युद्ध से पूर्व ही इसका विवाह कर दिया जाए।

"अब आप भी पधार गये हैं। इस विषय पर भी आपसे परामर्श में सहायता मिल जायेगी।"

पण्डित शिवकुमार ने महाराज की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपने साथ आये अपने दोनों शिष्यों का परिचय देते हुए बताया, "यह छोटा मेरा प्रपौत्र रमाकान्त है और यह है स्कन्दकुमार। महाराज कुमारगुप्त का सुपुत्र। ये दोनों आजकल मेरी देख-रेख में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इस बूढ़े तोते को भी मैं इस योग्य बना रहा हूँ कि यह राजनीति में निपुण हो अपने पिता के साम्राज्य को सम्हाल सके।"

"और इस छोटे तोते को क्या बनायेंगे?" महाराज ने रमाकान्त की ओर संकेत कर पूछा।

"यह बालक प्रतिभावान् है, किन्तु अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। उसका कारण यह है कि हूणों से युद्ध समाप्त होते ही मैं संन्यास ग्रहण करने वाला हूँ।"

"किन्तु हूणों के युद्ध में भी अभी समय लगेगा। हाँ, लगता है कि पुष्यमित्रों से शीघ्र ही युद्ध होने वाला है। उनकी सेना के अश्वों के खुरों से उड़ने वाली धूलि अब दूर क्षितिज में दिखाई देने लगी है।"

"अच्छा, कोई समाचार मिला है?"

"जी हाँ, विदिशा का समाचार है कि वहाँ राजधानी के बाहर बहुत बड़ा सैनिक-शिविर खुल गया है।"

"इस दिशा में आपकी क्या तैयारी है?"

"जिस समय विदिशा के विषय में यह समाचार विदित हुआ था उस समय आप तो यहाँ थे नहीं, और यहाँ नदी के तट पर हस्तिनापुर का शिविर होने के कारण मैंने अपनी सेना को वहाँ से बीस कोस दूर वसुमति के तट पर एकत्रित होने की व्यवस्था करवा दी है।

"पाटलिपुत्र का मार्ग वसुमति और यमुना के संगम के समीप से ही है। वह हमारी सेना के शिविर के एक दिन के अभियान के अन्तर पर है। वहाँ हमारे राज्य की सीमा भी है। उस स्थान पर ही मैं समझता हूँ कि शत्रु को ललकारा जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ईश्वर की कृपा हुई तो विदिशा वालों का पत्ता तो वहाँ पर ही कट जायेगा।

"इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि वे अपने राज्य से ही विंध्याचल को पार कर पुष्यमित्रों की सहायता के लिये अपनी सेनायें अंग में भेज दें। उस अवस्था में हस्तिनापुर की सेनायें उनका मार्ग रोकने के लिये विन्ध्याचल पर उनसे युद्ध करेंगी। यदि ऐसा हुआ तो फिर इधर से हमारी सेना हस्तिनापुर की सेना की सहायता के लिये विन्ध्याचल की ओर कूच कर देगी।"

"परन्तु पण्डितजी! इस युद्ध में भारी व्यय होने की सम्भावना है। हम इसके लिये मगध राज्य से सहायता की आशा करते हैं।"

"इस विषय में विचार किया गया था। आपके कोष की पूर्ति पाटलिपुत्र के कोष से की जायेगी।"

महाराज ने कहा, "जब आप पिछली बार यहाँ थे, उस समय ही मैं इस विषय में आपसे कहने की सोच रहा था, परन्तु उस समय ऐसा लगता था कि अभी युद्ध दूर है, इसलिये उस समय कहना उचित नहीं समझा। अब जब हम विदिशा वालों की तैयारी देखते हैं तो ऐसा लगता है कि हमें अपना कार्य और भी द्रुत गति से करना चाहिये। इसलिये उसी गति से कार्य किया भी जा रहा है।"

"मैं धन के विषय में आज ही पाटलिपुत्र को लिख देता हूँ। आशा करता हूँ कि तुरन्त ही व्यवस्था हो जायेगी।"

इससे बात का विषय बदल गया। महाराज सुरेन्द्रमणि ने पूछा, "अब आप यहाँ कब तक रहने का विचार करते हैं?"

"आने से पूर्व तो यही विचार था कि कम-से-कम एक मास तक तो रहना ही पड़ेगा, किन्तु अब जो आप समाचार दे रहे हैं उनके परिप्रेक्ष्य में मुझे शीघ्र ही वापस जाना पड़ जायेगा। इस पर भी यहाँ के समाचार जान और वहाँ से हस्तिनापुर की सारी गतिविधि का निरीक्षण करने के उपरान्त ही जाने के विषय पर विचार करना होगा।

"हस्तिनापुर जाकर मुझे उनसे युद्ध की बात समझनी है और कुछ बातें उनको भी समझानी हैं। इसलिये दो-चार दिन लग सकते हैं। आपके सेनापति से भी युद्ध की रूपरेखा पर विचार-विमर्श करना है। सम्भवतया आपके वसुमति स्थित शिविर को देखने की भी आवश्यकता पड़ जाए।"

"ठीक है, अब आप आराम कीजिये। हम अब सायंकाल के अल्पाहार के समय मिलेंगे।"

शिवकुमार ने अनुभव किया था कि स्कन्दकुमार ने राजकुमारी को देखा है और उस पर मोहित हो गया है। अतः वह विचार करने लगा कि महाराज को सम्पूर्ण विवरण शीघ्रातिशीघ्र दे दे, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि राजकुमारी से स्कन्द का किसी प्रकार का सम्बन्ध बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने ताली बजाई तो तुरन्त एक प्रतिहार वहाँ आकर उपस्थित हो गया। महाराज ने प्रतिहार से कहा, "पण्डितजी के लिये नियत अतिथिगृह को खोल दो।"

प्रतिहार गया तो पण्डित शिवकुमार ने कहा, "मुझे आपसे शीघ्रातिशीघ्र पृथक् में कुछ बात करनी है।"

"जी हाँ, वह सायंकाल के अल्पाहार के बाद हम मिल लेंगे। इस समय तो मेरा मन्त्रिमण्डल मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा।"

इस सायंकाल अल्पाहार के समय महाराज से पण्डित शिवकुमार की भेंट नहीं हो सकी। महाराज मन्त्रिमण्डल की बैठक में गये तो वहाँ युद्ध के विषय पर विचार-विमर्श होने लगा था। मन्त्रिमण्डल में कुछ सदस्यों का विचार था कि कौशाम्बी को इस समय युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिये। इससे उसकी स्थिति बिगड़ सकती है।

इस प्रकार के विचार के व्यक्तियों का कहना था कि इस युद्ध में जन और धन की अपार हानि होगी और उस अनुपात में लाभ बहुत कम होगा। महाराज अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को समझा रहे थे कि पुष्यमित्रों का अभियान सारे भारतवर्ष की एकता के लिये महान् घातक सिद्ध होगा। इसी प्रकार के विचार-विमर्श में सायंकाल के अल्पाहार का समय निकल गया था।

पण्डित शिवकुमार रात्रि का भोजन अपने शिष्यों के साथ ही किया करता था। इसलिये उस समय भी महाराज के साथ उनकी पृथक् में कोई बात नहीं हो सकी।

अगले दिन बहुत प्रातःकाल ही पण्डितजी हस्तिनापुर वालों का सैनिक शिविर देखने के लिये चले गये। प्रातःकाल का अल्पाहार पण्डितजी ने शिविर में ही किया। उस समय स्कन्दगुप्त उनके साथ था और रमाकान्त अतिथिगृह में बैठा स्वाध्याय कर रहा था।

हस्तिनापुर की सेना के शिविर का अध्यक्ष एक युवक ही था। पण्डितजी ने जब उस युवक को देखा तो उन्हें लगा कि वह युवक ओजस्वी और बुद्धिमान है। पण्डितजी ने जब उससे उसका नाम पूछा तो उस युवक ने कहा, "मेरी माताजी ने मेरा नाम पुरुरवा रखा था और तब से यही नाम चला आ रहा है।"

"क्या अभिप्राय है इसका ?"

"यही कि जिस समय मेरा जन्म हुआ था मेरे पिता उस समय युद्धभूमि पर गये हुए थे। मेरा जन्म होते ही मेरी विमाता ने हम माता-पुत्र को घर से निकाल दिया था। यद्यपि मेरी माँ की स्थिति उस समय ऐसी नहीं थी तदपि उसको विवश घर को छोड़ना ही पड़ा। अन्य कोई मार्ग नहीं था। वे मुझे लेकर नेपाल चली गईं। मेरा बाल्यकाल वहीं बीता और वहीं मेरी शिक्षा भी हुई। शिक्षा पूर्ण होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपरान्त मैं वहाँ की सेना में प्रविष्ट हो गया।

"नेपाल के सेनापति की मुझ पर कृपा रही। वे मेरे शौर्य की परीक्षा कर मेरी उन्नति करते रहे। उसी समय हूणों के भारत पर आक्रमण की चर्चा आरम्भ हो गई। महाराजा नेपाल ने सरदार मिहिरकुल से सन्धि कर ली। उस समय मैंने सुना था कि महाराज नेपाल ने उस सन्धि में यह वचन दिया है कि वह हूण आक्रमण के समय अपनी सेनायें भारत की सहायता के लिये नहीं भेजेंगे।

"मुझे यह जानकर बड़ा क्षोभ हुआ। मैं तो यह चाहता था कि जिस समय हूण सेना भारत पर आक्रमण करे उस समय नेपाल और कश्मीर की सेनायें पीछे से उस पर आक्रमण कर उसको परास्त कर दें। इस प्रकार दो प्रबल सेना के बीच में हूणों को पीस डाला जाए।

"नेपाल के सेनापति ने महाराज के विचारार्थ ऐसी ही एक योजना भेजी भी थी, परन्तु महाराज ने इसके विपरीत सन्धि कर ली तो इस पर मुझे स्वयं पर ही ग्लानि होने लगी। मेरा मन नेपाल की सेना में पड़े रहने पर उदास रहने लगा।

"मैं नेपाल की सेना छोड़कर भारत चला आया। मैंने देखा कि हस्तिनापुर मगध से स्वतन्त्र सेना का निर्माण कर रहा है, इसलिये मैं उसमें प्रविष्ट हो गया। महाराज मणिपाल जब पहले ही दिन सैनिक-शिविर में आये तो मेरी उनसे भेंट हो गई। वे किसी अज्ञात कारण से मेरी ओर आकर्षित होकर मेरे पास चले आये और मेरा परिचय पूछने लगे।

"मैंने महाराज को अपना पूर्ण परिचय दे दिया। उनको मैंने यह भी बता दिया कि नेपाल में मैंने किस प्रकार का सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया हुआ है और मेरी योग्यता किस प्रकार की है।

"महाराज ने कुछ विचार किया होगा। इस प्रकार मुझे हस्तिनापुर सेना में प्रविष्ट हुए एक वर्ष ही हुआ था कि इस शिविर की योजना बन गई। महाराज ने मुझे इस शिविर का अध्यक्ष बनाकर यहाँ भेज दिया।"

इस समय शिवकुमार अधिक व्यक्तिगत बातों के पक्ष में नहीं था अतः जिस कार्य से वह वहाँ आया था, उस विषय पर वार्तालाप होने लगा।

पण्डितजी ने पूछा, "पुरु! यह तो तुम जानते ही होगे कि यह शिविर किस उद्देश्य से खोला गया है?"

"जी पण्डितजी! जिस समय अंग देश मगध पर आक्रमण करे और विदिशा वाले अंग की सहायता के लिये जाएँ उस समय उनको रोकना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।"

"तुम क्या समझते हो कि यह कार्य कब तक होने वाला है?"

"पण्डितजी! यद्यपि सेनापति का यह कार्य नहीं है तदपि हस्तिनापुर महाराज के दूर होने के कारण इस कार्य को भी मैंने अपने हाथ में ले लिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैंने उसके लिये साधन तैयार कर लिये हैं।

"इस समय विदिशा में हमारे गुप्तचर कार्य कर रहे हैं। हमें वहाँ की गतिविधियों की सूचना निरन्तर प्राप्त होती रहती है। उन गतिविधियों से मैं कौशाम्बी-नरेश को अवगत करता रहता हूँ। आज तक की सारी स्थिति के विषय में मैंने उनको सूचना दे रखी है। हमने एक संयुक्त योजना बनाई है कि वहाँ की सेनाओं के चलने से पूर्व ही हमारे दोनों राज्यों की सेनायें अपने-अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर चल पड़ेंगी।"

शिवकुमार ने पुरुरवा को बताया, "परन्तु कौशाम्बी के मन्त्रिमण्डल में तो युद्ध के विषय में मतभेद उत्पन्न हो गया है?"

"तब तो मुझे तुरन्त महाराज से मिलना चाहिये।"

"ठीक है। चलो, मैं भी उधर ही जा रहा हूँ।"

"मैं चलता तो अभी आपके साथ ही हूँ, परन्तु मैं जाऊँगा अपने ही रथ में।"

इस प्रकार यह वार्तालाप समाप्त हो गया।

शिवकुमार स्कन्द और पुरु को साथ लेकर शिविर का निरीक्षण करने चल पड़ा। पण्डितजी स्थान-स्थान पर सैनिकों से उनके रहन-सहन और खान-पान आदि सुविधाओं के विषय में पूछताछ करते रहे। उपसेनापतियों से भी उन्होंने बातचीत की।

इस प्रकार पण्डितजी ने शिविर का निरीक्षण किया और वहाँ का प्रबन्ध सन्तोषजनक जान उन्होंने मध्याह्न के भोजन के समय तक कौशाम्बी पहुँच जाने का विचार कर वहाँ से चलने का निश्चय किया।

दो रथ उस शिविर से राजधानी को चले। एक पर तो पण्डित शिवकुमार और स्कन्द थे तथा दूसरे पर शिविर का सेनापति पुरुरवा था। दोनों रथों के आगे-पीछे दो-दो अश्वारोही अपने-अपने अश्वों पर सरपट दौड़े चले जा रहे थे।

मध्याह्न एक घड़ी दिन व्यतीत होने पर वे कौशाम्बी के राजप्रासाद में जा पहुँचे। महाराज पण्डितजी की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने जब पण्डितजी के साथ पुरु को भी देखा तो उनको बहुत प्रसन्नता हुई।

महाराज ने पुरु को सम्बोधित कर कहा, "सेनापति पुरु! मैं स्वयं आज सायंकाल तुमसे मिलने के लिए शिविर में आने वाला था। यह अच्छा ही हुआ कि तुम स्वयं आ गये हो।"

पुरुरवा ने कहा, "महाराज! मैं भी एक विशेष निवदेन करने के लिए ही उपस्थित हुआ हूँ।"

"ठीक है, आओ भीतर चलते हैं। पण्डितजी के सम्मुख ही बात होगी अथवा कि पृथक् में?"

"पण्डितजी के विषय में मुझे अपने महाराज से पूर्ण सूचना मिल चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने मुझे बताया है कि हम जो कुछ भी यहाँ कर रहे हैं वह सब पण्डितजी की ही योजना है। ऐसी स्थिति में पण्डितजी से गुप्त तो कोई बात होनी ही नहीं चाहिये।

"यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं तो पण्डितजी का हमारे मध्य में होना लाभ की ही बात समझता हूँ।"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।" महाराज ने कहा।

इस प्रकार तीनों पृथक् आगार में जाकर बैठ गये। उन तीनों के लिए वहीं भोजन की भी व्यवस्था की गयी।

भोजन करते हुए महाराज सुरेन्द्रमणि ने कहा, "कल हमारे मन्त्रिमण्डल की बैठक सायंकाल तक भी बहुत विलम्ब से समाप्त हुई है। हमारा एक मन्त्री कहता है कि मगधराज महत्त्वाकांक्षी है इसलिये हमको उनकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में किसी प्रकार का सहायक नहीं होना चाहिये। उसने भावी युद्ध की भयंकरता का वीभत्स चित्र खींचा और फिर सम्मति दी कि हमें चाहिये कि हम अपनी सेना को वसुमति के तट से वापस बुला लें। उसका यह भी कहना था कि हम विदिशा-नरेश को भी लिख दें कि उनके साथ हमारा किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं है। क्योंकि हम अब मगध के अधीन नहीं हैं इसलिये उनकी विजय में भी हमें किसी प्रकार की रुचि नहीं होनी चाहिये।

"इससे बात बहुत बढ़ती गयी। विवाद बढ़ता रहा। यद्यपि मन्त्रिमण्डल का बहुमत तो मेरे विचारों से सहमत है और वह मेरे ही पक्ष में है, किन्तु वह मन्त्री अपने विचार से टस से मस नहीं हुआ।

"हमने उसके कथन पर विचार कर उसका परीक्षण करने के लिए अपना एक गुप्तचर विदिशा भेज दिया है। उसके लौटने तक मन्त्रिमण्डल का निर्णय भी स्थगित कर दिया है।"

पुरु ने कहा, "आप भले ही उस मन्त्री का नाम न बताना चाहें, किन्तु मैं उस मन्त्री का नाम जानता हूँ।"

पुरु के मुख से यह सुन महाराज परेशान-से दिखाई दिये।

महाराज समझते थे कि उनके मन्त्रिमण्डल की सारी कार्यवाही बन्द आगार में होती है। वे समझ नहीं पाये कि पुरु को उसके विषय में किस प्रकार ज्ञात हो गया?

पुरु ने महाराज को परेशान देखा तो बोला, "महाराज! मेरी सूचना का स्रोत कौशाम्बी नहीं, विदिशा है। मेरे गुप्तचरों ने मुझे सचेत करते हुए कहा है कि अपने कैम्प के समाचार हम आपके मन्त्री सदाशिव महोदय से सुरक्षित रखें।"

कौशाम्बी-नरेश ने जब यह समाचार सुना तो वह तो स्तब्ध-सा रह गया। पुरु ने ही आगे कहा, "मैं महाराज से यह निवेदन करने के लिए आया हूँ कि आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी बहाने से इन मन्त्री महोदय को राज्य से बाहर भेज दीजिये, जिससे कि वे यहाँ का समाचार विदिशा न भेज सकें।"

यह सुनकर तो शिवकुमार को भी विस्मय हुआ। पुरु के सैनिक-शिविर के कुशल प्रबन्ध से वह बड़ा प्रभावित हुआ था। महाराज सुरेन्द्रमणि पुरु को कहने के लिए बात पर विचार ही कर रहा था कि पण्डित शिवकुमार ने कहा, "महाराज ! क्या पण्डित सदाशिव का कौशाम्बी में रहना अनिवार्य है ?"

"नहीं, अनिवार्य तो नहीं है। उसके बिना कार्य में कठिनाई तो होगी, किन्तु असम्भव तो कुछ भी नहीं है।"

"उसे आप मेरे पास भेज दीजिये। मैं उसको पाटलिपुत्र भेज दूँगा। इस प्रकार उसकी वहीं रहने की व्यवस्था करवा दूँगा।"

"ठीक है, उसको बता दिया जायेगा कि उसके पाटलिपुत्र से लौटने के उपरान्त ही युद्ध के विषय में अन्तिम निर्णय किया जायेगा।"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "उसे रात्रि-भोजन के समय मेरे पास भेज दीजिये। मैं उसकी व्यवस्था कर दूँगा और जब वह पाटलिपुत्र से लौटेगा तब तक युद्ध समाप्त भी हो चुका होगा।

"आप उसको आश्वस्त कर दीजिये कि उसको राज्य के महत्त्वपूर्ण एवं गुप्त कार्य से पाटलिपुत्र भेजा जा रहा है। इसलिये वह अपने जाने की सूचना यहाँ किसी को न दे।

"किन्तु इसमें एक सावधानी यह बरतनी होगी कि जब उसको बाहर जाने के लिए कहा जाए, उसके बाद उसके निवासगृह से बाहर जाने वालों की तलाशी आरम्भ कर देना परम आवश्यक होगा।"

पण्डित सदाशिव के विषय में जब बात निश्चय हो गयी तो पण्डित शिवकुमार ने अपने मन की बात कहनी आरम्भ कर दी। उन्होंने कहा, "मेरा स्वभाव है कि मैं अपने शिष्य रमाकान्त को सदा अपने साथ ही रखता हूँ। इसलिये मैंने उसको कुछ इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया हुआ है कि मानो उसके कान तो हैं, किन्तु उसके जिह्वा नहीं है। वह सुना तो करता था। इससे उसका ज्ञानवर्द्धन होता था। किन्तु मैंने उसको बता दिया था कि उसे अपने ज्ञान के प्रयोग की रीति अभी सीखनी शेष है, अतः वह सुनी बात को किसी को कहे नहीं। उसे अपने ज्ञान का प्रयोग मेरे ज्ञान के बिना किसी अन्य स्थान अथवा व्यक्ति से नहीं करना चाहिये।

"परन्तु यह जो नया प्राणी आजकल मेरे साथ है, यह सर्वथा नवीन है। इस कारण अब से मेरे शिष्य राज्य-कार्य के अवसर पर मेरे साथ नहीं रहेंगे।

"इस राजकुमार स्कन्दगुप्त ने एक सर्वथा गँवार युवती से विवाह कर लिया। इससे महाराज तथा महारानी उससे रुष्ट हो गये और तब राजकुमार स्कन्द पृथक् किसी अज्ञात स्थान पर रहने लगा। यह पुनः राजधानी में लौटा। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विचारणीय हो गया है कि मगधराज के निधन के बाद क्या यह भारत के सम्राट-पद को सम्हाल सकेगा ? मैं इसकी योग्यता की परीक्षा करने के लिए ही इसे अपने साथ रख रहा हूँ। अभी उसके विषय में कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, कुछ साधारण-सी बातें ही जान पाया हूँ।"

महाराज ने पूछा, "आप हस्तिनापुर के सेनापति इन पुरुरवा के विषय में जानते हैं अथवा नहीं ?"

"इनसे तो आज प्रथम बार ही भेंट हुई है। अभी तक तो केवल इनके बाल्य-काल से लेकर अर्थात् इनके जन्म से आरम्भ कर कौशाम्बी में स्थित हस्तिनापुर के शिविर में आने तक का इतिहास ही विदित हो पाया है। अपने देश के प्रति इनकी निष्ठा का भी इस अवधि में ज्ञान हुआ है।

"बस, अभी तक मैं इनके विषय में इतना ही जान पाया हूँ, किन्तु यह तो पूर्ण परिचय नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह ओजस्वी युवक हैं और इन से बात करके इनके ही द्वारा जो दो-चार बातें इनके विषय में ज्ञात हुई हैं उनमें से प्रमुख यह बात है कि ये सेनापति-पद के लिए अत्यन्त योग्य और उपयुक्त व्यक्ति हैं।"

"मैं आपको इनके विषय में बताता हूँ।

"यह महाराज कुमारगुप्त की द्वितीय पत्नी से उत्पन्न उनके सुपुत्र हैं। इनका नाम है पुरुगुप्त और इनकी माता का नाम है सावित्रीदेवी।

"महाराजाधिराज जब युद्ध पर गये हुए थे तो महाराज की बड़ी रानी ने षड्यन्त्र करके इस बालक को मरवा डालने का यत्न किया था, किन्तु इसकी माता को उस षड्यन्त्र का पूर्व ज्ञान हो गया था। अतः उसने अवसर पाकर वहाँ से भाग जाना ही उचित समझा।

"इसकी माता पाटलिपुत्र से भागकर नेपाल जा पहुँची। वहाँ इन्होंने काठमाण्डू में निवास किया। इसकी माता वास्तव में नेपाल के राजकीय परिवार से भी सम्बद्ध है। वहाँ उस परिवार की सहायता से ही पुरुगुप्त की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध हुआ है। वहीं इनको सेना में उच्च पद भी प्राप्त हो गया था।

"वहाँ इन्होंने कुछ भारत के विपरीत होता देखा तो ये भारत के हित में अपने देश में आ गये हैं।"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "मुझे तो यह भी ज्ञात नहीं था कि महाराज कुमारगुप्त ने भी दो विवाह किये थे। मेरे विचार से यह इस परिवार की चौथी पीढ़ी है कि राजसिंहासन पर बैठने वाले ने दो विवाह किये हैं। अभी तक तो मैं यही समझ रहा था कि कुमारगुप्त इस बात में अपवाद हैं।

"इन द्विपत्नीक महाराजों ने मगध के सम्राट-पद को दूषित किया है। यद्यपि उस परिवार में जितने भी राजा हुए हैं उन्होंने अपनी कार्यकुशलता से साम्राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माण कर लिया था, किन्तु दो-दो रानियों के कारण साम्राज्य को घुन भी लगता रहा है। यही कारण है कि साम्राज्य को बचाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी उसका क्षरण होता जा रहा है।

"मुझे यह दिखाई देने लगा है कि कुमारगुप्त पर ही इस साम्राज्य की इतिश्री होने वाली है। यह अब साम्राज्य के रूप में नहीं रह पायेगा।"

"पण्डितजी ! हम तो इस युवक से बहुत आशायें लगाये हुए हैं। मैं इनको अपना जामाता बनाने का विचार कर रहा हूँ।"

"इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि यह युवक इस पद के लिए सर्वथा योग्य और श्रेष्ठ है, परन्तु इसके लिये आपको तथा इसको, दोनों को ही भारी संघर्ष करना पड़ेगा।"

पुरु बोला, "पण्डितजी ! मैंने राजकुमारी वत्सला को देखा है और उसे पसन्द किया है। उसका कारण यह नहीं है कि वह कौशाम्बी की राजकुमारी हैं। उनमें जो अपने गुण हैं, मैं तो उन पर मुग्ध हूँ।"

पुरुकुमार ही आगे कहने लगा, "जहाँ तक पाटलिपुत्र के राज्य की बात है, उस पर मेरी गिद्ध-दृष्टि कभी नहीं रही, न यह किसी प्रकार के प्रलोभन की वस्तु है। तदपि यदि उसका भार मुझको मिला तो मैं अपनी सामर्थ्य से उसको निबाहूँगा ही, अन्यथा कौशाम्बी का साधारण नागरिक बनकर जीवन व्यतीत करने में मुझे कोई संकोच नहीं होगा।"

पण्डितजी ने उसको प्रोत्साहित करते हुए कहा, "ठीक है, पुरुकुमार ! मैं तुम्हारी भावना समझता हूँ और उसका आदर भी करता हूँ। मैं समझता हूँ कि जब तक पुष्यमित्रों से युद्ध होता है, तुम्हें उसी प्रकार लुप्त रहना है जिस प्रकार अब तक रहते आये हो। युद्ध के समाप्त होने पर इस विषय पर विचार करेंगे।"

उस दिन जब पण्डितजी रात्रि-भोजन के लिए तैयार हुए तो उस समय रमाकान्त ने कहा, "गुरुदेव ! स्कन्दकुमार आज दिन-भर यहाँ से अनुपस्थित ही रहा है।"

"कहाँ रहा है वह ?"

"मुझे इसका ज्ञान नहीं है।"

"इस समय वह कहाँ है ?"

"अभी-अभी आया है और अब भोजन के लिए वस्त्र बदलने के लिए गया हुआ है।"

"अच्छा, उसको आने दो।"

भोजन पर जाने से पूर्व स्कन्द आया तो पण्डितजी ने उससे पूछा, "स्कन्द ! दिन-भर कहाँ थे ?"

"पण्डितजी ! एक परमावश्यक कार्य पर लगा हुआ था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या कार्य था वह ? क्या वह मुझे बताने का नहीं है ?"

"आप तो मेरे गुरु हैं और मैं जानता हूँ कि आपकी सहायता के बिना वह कार्य सम्पन्न भी होने वाला नहीं है। इसलिये आपसे गुप्त रखने का तो हो ही नहीं सकता।"

"हाँ तो बताओ, कहाँ रहे दिन-भर ? मैंने तो तुमको नीतिबोध पढ़ने का कार्य सौंपा था, किन्तु देखता हूँ कि तुमने तो पुस्तक को स्पर्श तक नहीं किया।"

"गुरुजी ! मैं अपनी बात पृथक् में बताऊँगा।"

"क्यों, क्या किसी कन्या से दुराचार किया है ?"

पण्डित शिवकुमार समझ तो रहा था कि हो न हो बात कुछ राजकुमारी से सम्बन्धित हो सकती है।

पण्डितजी ने जब सीधे इस प्रकार प्रश्न किया तो स्कन्द कुछ विचार करता हुआ-सा भूमि की ओर देखने लगा। शिवकुमार ने भी आँखें मूँदकर विचार करना आरम्भ किया। कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त शिवकुमार ने कहा, "तुम नहीं बताते तो मैं तुमको बताता हूँ। तुम मध्याह्न का आहार करके राजप्रासाद के सेवकों के घरों की ओर चले गये थे। वहाँ जाकर तुमने यह जानने का यत्न किया कि कौन-कौन सेविका राजकुमारी की सेवा में नियुक्त है। तुमने एक सेवक को एक स्वर्ण देकर राजकुमारी की सेविकाओं और उनके निवास का पता विदित कर लिया।

"उसके बाद तुम यहाँ अतिथिगृह में आये और फिर वस्त्र बदलकर उस सेविका के निवासस्थान पर चले गये। तुम्हें वह सेविका अपने स्थान पर मिल गयी। तुमने उस सेविका से परिचय बढ़ाया और उसको भी एक स्वर्ण देकर राजकुमारी से भेंट का प्रबन्ध किया। वह भेंट मध्याह्नोत्तर चौथे प्रहर हुई।

"मैं यह भली-भाँति कह सकता हूँ कि यदि राजकुमारी भी इस भेंट के लिए उत्सुक न होती तो यह भेंट होना सम्भव नहीं था।

"राजकुमारी ने तुमको बताया कि उसकी तथा पुरु नाम के एक अन्य पुरुष की कुण्डली नगर के प्रख्यात ज्योतिषाचार्य के पास विचारार्थ गयी हुई है। राजकुमारी ने आग्रह किया कि आप भी अपनी जन्मकुण्डली उस ज्योतिषी के पास ले जाइये। वहाँ यदि कुण्डली मिल जाए तो हम दोनों के विवाह में सुविधा हो जायेगी।

"यह जानकर तुम उस ज्योतिषी का मकान ढूंढ़ने के लिए निकल पड़े। तुमको जब उसका स्थान मिल गया और राजज्योतिषी विश्वम्भरप्रसाद से तुम्हारी भेंट हो गयी और कुछ वार्तालाप भी हो गया तो तुमने राजज्योतिषी को एक सौ स्वर्ण देने का वचन दिया है। इसके लिये उसको यह करना होगा कि पुरु की कुण्डली की अपेक्षा वह तुम्हारी कुण्डली राजकुमारी की कुण्डली से ठीक-ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला दे।

"ज्योतिषी को एक सौ स्वर्ण सुनकर लोभ आ गया। उसने तुम्हारी कुण्डली माँगी। किन्तु कुण्डली तुम्हारे पास थी नहीं। वह तुम्हारी माताजी के पास है। अब तुम उसको लाना चाहते हो और उसको लाने जाने के लिए तुम किसी बहाने मुझसे दस दिन का अवकाश चाहते हो।

"यही सहायता तुम मुझसे चाह रहे हो।"

स्कन्द को पण्डितजी की विद्वत्ता और सामर्थ्य का इतना-सा ही भास हुआ था, किन्तु यह भी उस जैसे व्यक्ति के लिए पर्याप्त से अधिक ही था। जिस समय पण्डितजी उसके दिन-भर के कार्य की गतिविधि पर प्रकाश डाल रहे थे, उसे सुन-सुनकर उसके पसीना छूट रहा था। स्कन्द ने जब अपने सम्पूर्ण दिन के क्रियाकलाप को यथातथ्य पाया तो उसके होश उड़ गये। उसका मुख सूखने लगा था और शरीर से पसीना छूट रहा था।

पण्डितजी ने ही आगे कहा, "मैं तुमको इस कार्य के लिए तुम्हारी इतनी सहायता तो कर सकता हूँ कि तुम अपनी कुण्डली लेने के लिए जाओ तो उसके लिए मैं तुमको अवकाश दे दूँ, किन्तु इससे अधिक मैं और कुछ सहायता नहीं कर सकता।

"स्कन्द! भोजन के उपरान्त तुम यात्रा के लिए तैयार हो जाओ। इस यात्रा में तुम्हें राज्य का भी एक कार्य करना होगा। यदि वह कार्य तुमने कुशलतापूर्वक कर दिया तो तुम महाराजाधिराज के प्रिय हो जाओगे। उस स्थिति में तुम्हारा युवराज बनना सहज हो जायेगा।"

इस प्रकार गुरुजी को अपने पक्ष में होते देखकर स्कन्द को ढाढ़स बँधा। उसने कहा, "गुरुजी! बताइये, मुझे कौन-सा राज-कार्य करना होगा?"

"तुम्हारे साथ यहाँ से एक अन्य व्यक्ति भी जायेगा। उसके साथ तुम्हें सामान्य नागरिक के समान जाना है। तुम्हें किसी प्रकार भी यह प्रकट करना नहीं होगा कि तुम महाराजाधिराज के सुपुत्र हो।

"इतना ही नहीं, तुम्हें उसके साथ जासूसी भी करनी होगी। यदि वह कहीं भागने का यत्न करे तो उसे बन्दी बनाकर अपने साथ ले जाना होगा। इस कार्य में तुम्हारी सहायता के लिए तुम्हारे साथ छः अश्वारोही भी भेजे जायेंगे। प्रत्यक्ष रूप में तो वे उस विशिष्ट व्यक्ति के अनुचर होंगे, किन्तु यदि तुम्हारा साथी भागना चाहेगा तो वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे।

"अधिक सम्भावना तो यही है कि इस प्रकार की कोई बात होगी नहीं। तदपि आपात्स्थिति के लिए सब प्रकार की तैयारी रखना आवश्यक है, और वे सैनिक तुम्हारी सहायता के लिए तत्पर रहेंगे।

"मैं तुम्हारे हाथ महाराजाधिराज के लिए एक पत्र भी दूँगा। तुम्हें उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर लेकर शीघ्रातिशीघ्र लौटना होगा। तुम्हारे स्वयं के लिए भी कदाचित् यही उत्तम होगा।"

यह प्रबन्ध सुनकर स्कन्द का चित्त प्रसन्न हो गया। वह सोचने लगा था कि पण्डितजी उसकी परीक्षा ले रहे हैं। वह समझता था कि वह इस परीक्षा में उत्तीर्ण होगा।

तदुपरान्त पण्डितजी अपने शिष्यों को लेकर भोजन के लिए चले गये। भोजन के समय इन तीनों के अतिरिक्त महाराज और उनकी महारानी भी भोजन कक्ष में विद्यमान थे। भोजन करते हुए उस यात्रा के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई बात नहीं हुई। परन्तु भोजनोपरान्त महाराज सुरेन्द्रमणि और पण्डित शिवकुमार विचार-विमर्श के लिए पृथक् आगार में चले गये। महारानीजी वहाँ बैठी हुई रमाकान्त और स्कन्द से परिचय बढ़ाने लगीं।

महारानी जब इस प्रकार उन लोगों का परिचय प्राप्त कर रही थीं तो स्कन्द को कुछ ऐसा आभास हुआ कि राजकुमारी ने कदाचित् उसके विषय में कोई संकेत दिया है, इसी कारण महारानी इस समय कुछ अधिक जानने का यत्न कर रही हैं।

पण्डित शिवकुमार और महाराज की बातचीत में अधिक समय नहीं लगा। जब दोनों गोष्ठी समाप्त कर लौटे तो पण्डितजी अपने शिष्यों को लेकर अतिथिगृह को चल दिये। वहाँ पहुँच पण्डितजी ने स्कन्द से कहा, "स्कन्द! तुम दो घड़ी आराम कर लो। उसके बाद तुम्हारा एक व्यक्ति से परिचय कराया जायेगा। उस व्यक्ति को तुम्हें अपने साथ ले जाना होगा और यह यात्रा बड़ी सतर्कता तथा सावधानी से करनी होगी। उस व्यक्ति की प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखनी होगी। उसके साथ किसी प्रकार का विवाद न तो करना होगा और न किसी प्रकार का विवाद ही उठने देना होगा। उसके कार्य में हस्तक्षेप तो तब ही करना होगा जब वह पाटलिपुत्र के मार्ग से विचलित होने लगे।"

इस प्रकार पाटलिपुत्र जाने की प्रसन्नता में वह अपने आगार में चला तो गया किन्तु उसको नींद नहीं आई। वह समझ रहा था कि शीघ्र ही उसकी मनोकामना पूर्ण होने वाली है। इसी उत्कण्ठा में वह सो नहीं पाया।

ठीक दो घड़ी बीतने पर पण्डितजी ने उसके आगार के द्वार पर आकर उसको आवाज दी तो वह बाहर निकल आया। जाने की तैयारी तो वह इससे पूर्व ही कर चुका था।

अतिथिगृह के बाहर सदाशिव के लिए रथ खड़ा था। उसके साथ ही साधारण वेश में अश्वों पर दस सैनिक आरूढ़ थे और स्कन्द के लिए भी एक अश्व सजा हुआ खड़ा था। पण्डितजी ने एक पत्र रथ पर बैठे हुए पण्डित सदाशिव को दिया और एक पत्र उन्होंने स्कन्द को भी दिया। उन्होंने स्कन्द से कहा, "देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक ! तुम्हें पाँच दिन वहाँ पहुँचने में लगेंगे। दो दिन तुम वहाँ विश्राम करना और फिर पाँच दिन तुम्हारे वापस लौटने में लगेंगे। इस प्रकार बारह दिन के बाद अर्थात् बारहवें दिन ही मुझे इन पत्रों का उत्तर यहाँ मिल जाना चाहिये।"

पण्डितजी का आदेश पाकर यात्रा आरम्भ कर दी गयी।

पण्डितजी जब अपने आगार में वापस आये तो उन्होंने रमाकान्त को प्रतीक्षा करता पाया। पण्डितजी के पहुँचने पर उसने उनके हाथ में एक पत्र देते हुए कहा, "गुरुजी ! अभी-अभी एक स्त्री स्कन्द के लिए यह पत्र लेकर आई थी। पत्र मैंने उससे ले लिया था। आपको दिखाये बिना मैं इसको स्कन्द को नहीं देना चाहता था।"

"तुमने ठीक किया। मेरे साथ रहने वालों के पत्र-व्यवहार का मुझे ज्ञान होना ही चाहिये।"

रमाकान्त अपने शयनागार में चला गया और पण्डित शिवकुमार अपने शयनागार में। वहाँ जाकर पण्डितजी ने उस पत्र को खोलकर देखा। पत्र राजकुमारी का था और उसमें स्कन्द को 'युवराज' पद से सम्बोधित किया गया था। राजकुमारी ने अपने पत्र में लिखा था कि उसने उसके विषय में महारानीजी से बात की है। महारानीजी ने प्रस्ताव को अस्वीकार तो नहीं किया, किन्तु ज्योतिषी के निर्णय पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

राजकुमारी ने संकेत दिया था कि स्कन्द को चाहिये कि वह ज्योतिषां से बात कर ले।

रात्रि के भोजनोपरान्त जब महाराज पण्डित शिवकुमार को पृथक् आगार में ले गये तो उस समय उन्होंने बताया, "मैंने जब सदाशिव को पाटलिपुत्र जाने के लिए कहा तो वह कहने लगा कि जब तक युद्ध के विषय में निर्णय नहीं हो जाता तब तक उसको राजधानी से बाहर नहीं जाना चाहिये।

"मैंने उसको बताया कि पाटलिपुत्र वालों ने धन की सहायता देने में कुछ ढील कर दी है। हमारा युद्ध में सम्मिलित होना अथवा न होना इस धन पर अत्यधिक निर्भर करता है। हमें लगता है कि यदि पाटलिपुत्र से धन न मिला तो निश्चय ही हम इस युद्ध से बाहर रह जायेंगे।

"उसने जब यह सुना तो वह पाटलिपुत्र जाने के लिए तैयार हो गया।"

"यह ठीक ही हुआ है। अब वह युद्ध-समाप्ति से पूर्व कौशाम्बी नहीं लौट पायेगा।"

रात्रि को सदाशिव को पाटलिपुत्र के लिए विदा कर अगले दिन जब शिवकुमार महाराज से मिला तो महाराज ने कहा, "आपके शिष्य स्कन्द ने राजकुमारी से सम्पर्क स्थापित कर उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव किया है।"

"मुझे इसका ज्ञान है। इस निमित्त वह अपनी माँ से अपनी जन्मकुण्डली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने के लिए पाटलिपुत्र गया है। वह आपके ज्योतिषी से भी मिला है और उसको एक सौ स्वर्ण का लोभ देकर उसकी सम्मति अपने अनुकूल करने का प्रबन्ध कर चुका है।"

"बड़ा दुष्ट है वह।"

"जी हाँ, आपका ज्योतिषी बड़ा दुष्ट है। आपकी प्रजा होने पर भी वह आपसे छलना करने के लिए तैयार हो गया है।"

"मैं तो राजकुमार के लिए कह रहा था। वह बड़ा ही दुष्ट है।"

"उसके विषय में तो तब कहेंगे जब उसकी कुण्डली राजकुमारी की कुण्डली से साम्य नहीं होगी और वह उसको साम्य करने के लिए ज्योतिषी को एक सौ स्वर्ण देगा। किन्तु आपके ज्योतिषी ने तो बिना कुण्डली देखे ही किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ राजकुमारी की कुण्डली मिलाना स्वीकार कर लिया है ?"

"यह मैं देखूंगा कि वह इस कुण्डली के विषय में मुझसे बात करता है अथवा कि नहीं। अभी तक तो इस विषय में मुझे राजकुमारी का ही अपनी माता के माध्यम से सन्देश मिला है।"

"ठीक है, प्रतीक्षा कीजिये।"

: ८ :

मार्ग में चलते हुए स्कन्द ने कौशाम्बी के एक मन्त्री सदाशिव को जब अपना परिचय राजकुमार के रूप में दिया तो सदाशिव को बड़ा विस्मय हुआ कि युवराज होकर साधारण व्यक्ति की भाँति विचरण कर रहा है। स्कन्द ने उसका समाधान करने का यत्न किया।

स्कन्द ने कहा, "मैं आजकल पण्डित शिवकुमारजी से नीतिशास्त्र की शिक्षा-ग्रहण कर रहा हूँ। इस समय मैं उनके पास उनके शिष्य के रूप में हूँ, राजकुमार के रूप में नहीं। युवराज को इस प्रकार शिक्षा नहीं दी जा सकती, उसकी औपचारिकता कुछ भिन्न होती है। अतः मैं साधारण नागरिक की भाँति उनसे शिक्षा प्राप्त कर रहा हूँ।

"मेरे विषय में कौशाम्बी-नरेश जानते हैं। इसलिये वे मुझसे उसके अनुरूप ही व्यवहार भी करते हैं।"

सदाशिव यह बताना नहीं चाहता था कि वह किस प्रयोजन से पाटलिपुत्र जा रहा है। न ही वह यह बताना चाहता था कि कौशाम्बी-नरेश पाटलिपुत्र से अपने सम्बन्धविच्छेद करना चाहते हैं।

उसी प्रकार स्कन्द भी यह बताना नहीं चाहता था कि उसको सदाशिव की गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए उसके साथ भेजा गया है।

स्कन्द स्वयं नहीं जानता था कि सदाशिव को किस प्रयोजन से पाटलिपुत्र भेजा जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार दोनों एक-दूसरे से साधारण बातें करते हुए पाँच दिन में पाटलिपुत्र जा पहुँचे।

कुमारगुप्त को जब इन दोनों के सहसा आने का समाचार मिला तो वह तुरन्त ही इनको राजभवन के बैठकगृह में मिलने गया। दोनों ने महाराज को अपने-अपने पत्र दिये। कुमारगुप्त दोनों को देखकर मुस्करा दिया।

वास्तव में कुमारगुप्त उन दोनों के प्रति अपने व्यवहार के विषय में ही विचार करने लगा था।

राजकुमार स्कन्द की अनुपस्थिति को पन्द्रह दिन हो गये थे। इन पन्द्रह दिनों में ही पाटलिपुत्र में परिवर्तन हो गया था। कुमारगुप्त सोच रहा था कि उस परिवर्तन के विषय में स्कन्द को कब और किस प्रकार सूचित करे।

इसके साथ ही पण्डित शिवकुमार ने कौशाम्बी के मन्त्री सदाशिव के प्रति किये जाने वाले व्यवहार के विषय में कुछ संकेत अपने पत्र में किया था। कुमारगुप्त उससे बात करने के विषय में भी विचार कर रहा था।

कुमार को इस प्रकार विचारमग्न देख स्कन्द ने कहा, "मैं तो महारानीजी से मिलने के लिए ही इतनी लम्बी यात्रा करके आया हूँ।"

इससे महाराज को मार्ग मिल गया। उन्होंने कहा, "हाँ, ठीक है। प्रथम तुम अपनी माता से मिल लो। उन्हें भी तुम्हें मिलने की उत्सुकता है। तुम्हें बताने के लिए उनके पास बहुत कुछ है।"

"तो इस समय मुझे आज्ञा है?"

"हाँ, जा सकते हो।"

इस प्रकार जब स्कन्द वहाँ से चला गया तो महाराज कुमारगुप्त ने सदाशिव से कहा, "अभी तो आप विश्राम कीजिये। आपके विश्राम की व्यवस्था के आदेश दिये जा चुके हैं। महाराज सुरेन्द्रमणि का पत्र हम अपने मन्त्रिमण्डल में विचारार्थ उपस्थित करेंगे। उसके उपरान्त ही उसका उत्तर देना सम्भव होगा।"

सदाशिव बोला, "कृपया मन्त्रिमण्डल की बैठक तुरन्त ही बुलवाकर इसका निर्णय करवा दीजिये, जिससे कि मैं यथाशीघ्र कौशाम्बी लौट सकूँ। कौशाम्बी में बड़ी उत्सुकता से मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी।"

"आपका कहना तो उचित है, किन्तु आपके महाराज ने कुछ समस्या ही ऐसी उत्पन्न कर दी है कि इस संकट की घड़ी में हम इसकी अपेक्षा नहीं करते थे। तदपि इसका यथोचित उत्तर तो मन्त्रिमण्डल ही देगा।

"इसमें अधिक समय नहीं लगेगा। यदि एक दिन में विचार-विनिमय पूर्ण न हुआ तो अगले दिन हो जायेगा। इस प्रकार दो दिन से अधिक तो लगने नहीं चाहिये।"

अपनी बात समाप्त कर महाराज ने सम्मुख रखी घण्टी बजाई। प्रतिहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया तो महाराज ने कहा, "इन श्रीमान्जी को इनके लिए नियत अतिथिकक्ष में ले जाओ। अतिथिगृह के अध्यक्ष को मेरी ओर से विशेष रूप से कहना कि वह इनका उचित ख्याल रखे।"

अतिथिगृह में पहुँचने पर वहाँ के अध्यक्ष ने उसका स्वागत किया। सदाशिव ने जब उसके साथ आये अन्य व्यक्तियों के विषय में पूछा तो अध्यक्ष ने कहा, "उन सबके विषय में महाराज कुमार ने पहले ही बता दिया था। उनकी यथोचित व्यवस्था हो गयी है। आप इस विषय में निश्चिन्त रहिये।"

"परन्तु उनका जो नायक है उसको मेरे साथ ठहरा दो।"

"जी, बहुत अच्छा। क्या नाम है उन महाशय का?"

"महावीर।"

"उसके पास आपकी सूचना तुरन्त भिजवा देता हूँ।"

सदाशिव को जहाँ ठहराया गया था उसको देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। वह स्थान इतना सुखद था कि इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। उसके वहाँ पहुँचते ही उस आगार के चारों ओर सैनिकों का जमघट दिखाई देने लगा।

सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी। सदाशिव समझ नहीं पाया। यह तो वह समझ सकता था कि उसकी सुरक्षा के लिए यह प्रबन्ध होगा, किन्तु इतनी अधिक संख्या में सैनिकों का होना उसे विचित्र-सा लगा। तदपि अपनी सुख-सुविधा में किसी प्रकार की त्रुटि न देखकर उसे सन्तोष था।

जैसाकि अतिथिगृह के अध्यक्ष ने कहा था, तदनुसार महावीर उसके पास आ गया। उसके आने पर सदाशिव ने पूछा, "आओ महावीर! कुछ जलपान मिला?"

"जी हाँ। किन्तु क्या आपको अभी तक जलपान नहीं मिला?"

"मैं जलपान कर चुका हूँ। मुझे तुम लोगों की चिन्ता थी, इसलिए मैंने पूछा है।"

"महाराज कुमार ने हमारे ठहरने और खाने-पीने की बहुत ही उत्तम व्यवस्था करवाई है।"

"तो महाराज कुमार आपकी अत्यधिक सेवा-सुश्रूषा करवा रहे हैं?"

"उस सम्बन्ध में तो श्रीमान्जी के लिए भी किसी प्रकार कमी मुझे दिखाई नहीं दे रही है।"

"मेरी इच्छा थी कि कौशाम्बी से जो लोग मेरे साथ आये थे, वे सब मेरे साथ ही रहें।"

"हमें तो हमारे नायक की आज्ञा थी कि हमको महाराज कुमार की देख-रेख के लिए भेजा जा रहा है। महाराज कुमार कौशाम्बी के पूज्य स्वीकार होने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।"

"इससे क्या अभिप्राय है ?"

"श्रीमन् ! अभिप्राय के विषय में तो हमें कुछ बताया नहीं गया था। तदपि इतना तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि कोई किसी स्थान पर दो कारणों से ही पूज्य होता है।

"एक यह कि या तो वह उस स्थान का शासक बनने वाला है अथवा वहाँ का जामाता बनने वाला है।

"हमारी राजकुमारी अब विवाहने योग्य तो हो ही गयी हैं।" यह कहकर महावीर मुस्करा दिया।

महावीर की बात सुनकर सदाशिव ने अनुमान लगाया कि स्कन्दकुमार किस निमित्त पाटलिपुत्र आया है और किस कारण आते ही उसने अपनी माता से मिलने की उत्सुकता व्यक्त की है। इससे उसे प्रसन्नता नहीं हुई, क्योंकि इस सम्बन्ध के स्थापित होने से कौशाम्बी और मगध में मित्रता सुदृढ़ हो जायेगी। ऐसी स्थिति में कौशाम्बी के ब्राह्मणों को ब्राह्मण समुदाय के विपरीत युद्ध करना पड़ जायेगा।

सदाशिव ने महावीर से कहा, "तुम तो यहाँ मेरे साथ ही रहो।"

"जैसी आपकी आज्ञा। वैसे अपने महाराज की आज्ञा थी कि हमको महाराज कुमार स्कन्द के साथ भेजा जा रहा है। तदपि उन्होंने यह नहीं कहा था कि हम आपकी आज्ञा की अवहेलना करें।"

"ठीक है, तुम बाहर ड्योढ़ी में जाकर अपने रहने की व्यवस्था कर लो।"

यद्यपि महावीर को यह प्रबन्ध रुचिकर नहीं लगा। तदपि वह इस आज्ञा को अमान्य नहीं कर सका।

महावीर ने सदाशिव से कहा, "तो फिर मैं अपना सामान ले आता हूँ।"

"हाँ, ले आओ।"

इस प्रकार यह व्यवस्था हो गयी।

महाराज से बात करके जब स्कन्द अपनी माताजी से मिलने के लिए गया तो सदा से विपरीत राजमाता ने आज उससे मिलने में बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने अपने पुत्र को आसन दिलवाया और फिर वहाँ का समाचार सुनाते हुए कहा, "तुम्हारी पत्नी तो बच्चे को लेकर यहाँ से भाग गयी है। महाराज ने उन दोनों को ढूँढ़ने के लिए गुप्तचर भेजे हैं किन्तु अभी तक उनकी खोज नहीं हो पायी है।

"मुझे उस स्त्री की तो इतनी चिन्ता नहीं है, किन्तु अपने पौत्र के विषय में बड़ी चिन्ता बनी हुई है। बालक बड़ा ही प्रिय था। मुझे तो वह उतना ही प्रिय हो गया था जितना कि तुम अपने बाल्यकाल में थे।"

यह सुनकर स्कन्द को आश्चर्य हुआ। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा विचार करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी ने कहा, "जिस दिन तुम लोग यहाँ से गये थे उसी प्रातःकाल मैंने बालक को अपने पास मँगवाया था। दिन-भर वह यहाँ रहा। वह बड़ा प्रसन्न था। सायंकाल भगवती ने आकर कहा कि बच्चे के बिना उसकी माँ उदास है। यह कह-कर वह उसे यहाँ से ले गयी।

"अगले दिन प्रातःकाल मैंने अपनी सेविका को कहा कि वह जाकर बालक को यहाँ ले आये। थोड़ी देर में सेविका और भगवती मेरे पास आ गयी। भगवती ने बताया कि प्रातःकाल वह उन लोगों को जगाने के लिए उनके शयनागार में गयी तो वह खाली था। उसने इधर-उधर देखा किन्तु वह कहीं दिखायी नहीं दी।

"भगवती उसके लौटने की प्रतीक्षा में वहीं बैठी रही। जब वह नहीं लौटी और इधर से मेरी सेविका गयी तो वह समाचार देने उसके साथ ही मेरे पास आ गयी।

"मुझे यह सुनकर विस्मय और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरन्त महाराज को इसकी सूचना दी। उन्होंने कहा कि वे चारों ओर अपने गुप्तचर भेजकर उनकी खोज करवाते हैं।

"स्कन्द! मैंने उस स्त्री को तुम्हारे उपयुक्त कभी समझा ही नहीं। परन्तु बालक तो बड़ा ही सुन्दर और मेधावी था। मैं तो उसके लिए लालायित हो रही हूँ।"

यह समाचार सुनकर स्कन्द को परेशानी तो हुई, किन्तु उसके भाव से ऐसा नहीं झलकता था कि वह किसी प्रकार से दुःखी है। उसने इस विषय में कोई बात की भी नहीं।

उसने महारानी से कहा, "माँ! मैं एक अन्य प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"वह क्या?"

"कौशाम्बी की राजकुमारी बहुत ही सुन्दर है। वह मुझे भा गयी है। मैंने उससे मिलने का यत्न किया और इसमें मुझे सफलता मिल गयी है। उसने भी मुझ में रुचि व्यक्त की है। किन्तु कौशाम्बी की महारानी का कहना है कि जिस राज-कुमार से उनकी राजकुमारी की कुण्डली मिलेगी वे उसके साथ ही अपनी राज-कुमारी का विवाह करेंगी।

"इतनी लम्बी यात्रा मैंने अपनी जन्मकुण्डली ले जाने के उद्देश्य से ही की है।

"पण्डित शिवकुमारजी का आशीर्वाद भी मुझे प्राप्त हो गया है। वहाँ के महाराज ने भी इस यात्रा के लिए वहाँ के दस सैनिकों को मेरी सुरक्षा के लिए मेरे साथ भेजा है।"

"ठीक है। तुम्हारी कुण्डली महाराजाधिराज के पास रखी है। मैं उनसे लेकर वह तुम्हें दे दूँगी। पण्डितजी की भाँति मैं भी तुम्हें अपना आशीर्वाद देती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द को जब महारानी ने ग्राशीर्वाद दिया तो इससे वह ग्राश्वस्त हो गया। उसने कहा, "माँ! मैं शीघ्रातिशीघ्र कौशाम्बी लौटना चाहता हूँ, क्योंकि वहाँ एक ग्रन्य व्यक्ति भी इसमें मेरा प्रतिस्पर्धी है।"

"कौन है वह?"

"हस्तिनापुर की सेना का नायक है।"

"उसकी कुण्डली पहुँच गयी है?"

"हाँ, उसकी कुण्डली पहले से ही महाराज कौशाम्बी के पास पहुँची हुई है।"

"किन्तु वह वहाँ पहुँच कैसे गया?"

"ग्राजकल राजधानी के दो कोस ग्रन्तर पर हस्तिनापुर की सेना का शिविर स्थापित किया गया है। यह शिविर मगध साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से स्थापित है।"

"ठीक है। मैं समझती हूँ कि कल तक तुम यहाँ से विदा हो जाग्रोगे।"

इस वार्तालाप के उपरान्त स्कन्द वहाँ से उठा ही था कि तभी महाराजाधिराज उधर ग्राते दिखायी दिये। वह ठिठक गया। महाराज ने उसे निकलते देखा तो हाथ से संकेत कर उसको वहाँ रुकने के लिए कहा। इस प्रकार स्कन्द को वहाँ रुकना पड़ गया।

महाराज ने यथास्थान बैठते हुए कहा, "सीमा से समाचार मिला है कि एक ग्रोर से ब्राह्मण सेना ग्रौर दूसरी ग्रोर से ग्रंग की सेना मगध में प्रविष्ट हो गयी है। दोनों स्थानों पर घमासान युद्ध हो रहा है। हम दोनों, ग्रर्थात् मुझे ग्रौर राजकुमार को ग्रपनी सेना में पहुँच जाना चाहिये।"

यह सुनकर तो महारानी बड़ी गम्भीर हो गयीं। उन्होंने स्थिति का ग्रनुमान लगाकर कहा, "स्कन्द बेटा! जाग्रो। ग्राज इस विपत्ति की घड़ी में तुम ग्रपने पिता की सहायता करो। मगध बच गया तो समझो सब कुछ बच गया। एक-से-एक बढ़कर राजकुमारी तुम्हारे लिये ग्रारती का थाल लिये खड़ी दिखायी देगी।

"युद्ध से पलायन करना ग्रथवा शत्रु को पीठ दिखाना मगध की परम्परा में नहीं है। इसका भी तुमको ध्यान रखना होगा।"

इतना कहकर महारानी ने पुत्र की पीठ पर प्यार का हाथ फेरकर उसको ग्राशीर्वाद दिया ग्रौर पति के चरणस्पर्श कर बोली, "भगवान् ग्राप दोनों की रक्षा करेंगे।"

राजाज्ञा से समस्त पाटलिपुत्र में ढोल, नगाड़े ग्रौर तुरही ग्रादि युद्ध के बाजे बजने लगे। मगध के सैनिक राजमार्ग पर से जाते हुए दक्षिण-पूर्व की सीमा की ग्रोर कूच करने लगे।

नगर में जब इस प्रकार की हलचल हुई ग्रौर चारों ग्रोर से ढोल, नगाड़े ग्रादि का निनाद गूँजने लगा तो ग्रतिथिगृह में भी इसकी ध्वनि पहुँची। वहाँ सबके कान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़े हो गये। सदाशिव अपने आगार से निकलकर बाहर आ गया।

उसने देखा कि उसका सेनानायक महावीर उस समय मगध के सैनिकों के मध्य खड़ा उनसे वार्तालाप कर रहा है। उसने संकेत से महावीर को अपने पास बुलाया।

महावीर आया तो सदाशिव ने पूछा, "यह क्या हो रहा है?"

"पण्डितजी ! युद्ध-स्थिति की घोषणा हो रही है।"

"क्या युद्ध आरम्भ हो गया है?"

"जी। समाचार मिला है कि मगध पर दो ओर से आक्रमण हो गया है। एक ओर से तो विदिशा ने कौशाम्बी और हस्तिनापुर के मार्ग से आक्रमण कर दिया है और दूसरी ओर अंगराज की सेना मगध की सीमा में प्रविष्ट हो गयी है।"

"तब तो हमें तुरन्त कौशाम्बी लौट जाना चाहिये।"

"किन्तु आप अब जा नहीं सकेंगे।"

"क्यों?"

"वह इसलिये कि आप ब्राह्मण हैं। राज्य से सम्बन्ध रखने वाले सब ब्राह्मण बन्दी माने जा रहे हैं।"

"पर हम तो मित्र राज्य के मन्त्री हैं।"

"सुना है कि अपने देश में भी यही आज्ञा प्रसारित कर दी गयी है।"

"परन्तु मैं तो अभी अपने देश को वापस जा रहा हूँ।"

यह सुनकर महावीर को कुछ परेशानी-सी हुई। वह सदाशिव के मुख की ओर देख रहा था। वह कुछ बोला नहीं।

उसे ऐसे देखते पाकर सदाशिव ने कहा, "मेरा मुख क्या देख रहे हो?"

महावीर ने संकेत से बाहर खड़े बीस से भी अधिक सैनिकों की टुकड़ी दिखा दी।

सदाशिव ने पूछा, "ये लोग ऐसा कह रहे थे?"

"जी हाँ। मैंने भी उनसे यहाँ से चल देने के विषय में बात की थी। उनका नायक बोला कि तुम तो स्वतन्त्र हो, किन्तु हमें आज्ञा है कि महाराज के अतिथि को महाराज के समर से लौटने तक इन आगारों से बाहर न जाने दिया जाए। हमें उनकी सुरक्षा का ध्यान रखना है।"

सदाशिव आँखें मूँदकर कुछ विचार करने लगा। उसने कहा, "महावीर! एक काम करो।"

"आज्ञा कीजिये।"

"तुम एक शीघ्रगामी अश्व लेकर तुरन्त कौशाम्बी के लिए प्रस्थान कर जाओ। वहाँ महाराज के सम्मुख मेरी स्थिति का वर्णन कर उनसे कहना कि वे मुझे इन मूर्खों के पंजे से तुरन्त निकालने की व्यवस्था करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप कुछ लिखकर देंगे अथवा कि मौखिक ही कहना होगा ?"

"मैं यदि लिखकर दूँगा तो सम्भवतया वह लेख तुमसे ले लिया जाए। इसलिये जो कुछ तुमने यहाँ देखा है उसका ही वर्णन महाराज के सम्मुख कर देना।"

महावीर ने सदाशिव को नमस्कार किया और अतिथिगृह से बाहर चला गया।

महाराज कुमारगुप्त स्वयं तो पश्चिमी सीमा की युद्धभूमि पर चले गये और स्कन्द को उन्होंने दक्षिण-पूर्वी सीमा पर भेज दिया। उन्होंने वहाँ के सेनापति के नाम उसका परिचय-पत्र दे दिया था।

युद्ध की घोषणा के बीस दिन बाद महावीर कौशाम्बी से लौटा। वह आया तो सदाशिव को प्रसन्नता हुई। उसने उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा।

महावीर जब भीतर आया तो अतिथिगृह के संरक्षकों में से एक सैनिक उसके साथ भीतर आ गया था। महावीर ने ही उससे पूछा, "कहिये, आप कैसे आकर खड़े हो गये हैं ?"

"इसलिये कि मैं जानना चाहता हूँ कि आप कहाँ से आये हैं ? पण्डितजी के लिये क्या सन्देश लाये हैं ?"

"पहले तो इस प्रकार नहीं किया करते थे ?"

"पहले की बात और थी।"

"और अब ?"

"अब पण्डितजी हमारे बन्दी हैं।"

"हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो। मैं यहाँ से जाने से पूर्व ही यह जान गया था। किन्तु तुम्हें पता होना चाहिये कि ये कौशाम्बी राज्य के मन्त्री हैं। मैं इनका सन्देश लेकर अपने महाराज के पास गया था। आज इनके लिये उनका सन्देश लेकर लौटा हूँ, वही मैं इनको सुनाने के लिए आया हूँ।

"हमारे महाराज तो मगध की ओर से ही युद्ध लड़ रहे हैं।"

"हाँ, यह हमें मालूम है। हम यह भी जानते हैं कि कौशाम्बी हमारे मित्र राज्यों में है। किन्तु यह कैसे पता चले कि आप वहीं से आ रहे हैं, किसी अन्य स्थान से नहीं।"

"मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं कौशाम्बी-महाराज का सन्देश लेकर आया हूँ।"

"अच्छा, अगर यह बात है तो ठहरो, मैं अपने नायक से पूछकर बताता हूँ।"

मगध के सैनिक ने वहीं से ताली बजायी। उसकी ताली सुनकर मगध का एक अन्य सैनिक वहाँ आ गया। उसके आने पर पहले सैनिक ने कहा, "तनिक नायकजी को तो यहाँ भेजो।"

वह सैनिक बाहर गया और उसने नायक को भीतर भेज दिया। नायक आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो महावीर ने सीधे उससे बात करते हुए कहा, "सुनिये, मैं अपने महाराज के पास यहाँ की स्थिति बताने के लिए गया था। वहाँ से मैं अपने मन्त्री महोदय के लिए एक सन्देश लेकर आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि मित्र देश के राजा का उनके अपने मन्त्री के नाम जो सन्देश है, उसे गुप्त रूप से देने की स्वीकृति मिलनी चाहिये।"

नायक ने कुछ विचार कर कहा, "हमको यह आज्ञा है कि पण्डित सदाशिवजी को इन आगारों से बाहर न जाने दिया जाए। ये किससे क्या बात करते हैं इस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

"जहाँ तक मौखिक सन्देश की बात है, वह आप इनको दे सकते हैं, किन्तु आपको अपनी तलाशी देनी होगी।"

महावीर को इससे सन्तोष हो गया।

उन सैनिकों के वहाँ से चले जाने पर उसने अपने मंत्री को कौशाम्बी का सन्देश दे दिया। सन्देश देते हुए उसने कहा, "पण्डितजी! कौशाम्बी में तो आपके विरुद्ध राजद्रोह का अभियोग प्रस्तुत किया गया है। आपके वहाँ पहुँचते ही आपको बन्दी-गृह में डाल दिया जायेगा। आप पर कार्यवाही तो युद्ध के उपरान्त ही सम्भव होगी। इस कारण महाराज का कहना था कि यहाँ आप यदि अतिथिगृह में बन्दी हैं तो भी अच्छा ही है, आप यहीं रहिये, क्योंकि वहाँ के बन्दीगृह में आपको ये सुविधायें नहीं मिल सकतीं।"

"महावीर! तुमने दिन तो बहुत लगाये लौटने में? तुमको तो यहाँ से गये पन्द्रह दिन से भी अधिक हो गये हैं। जबकि तुमको दस दिन तक वापस आ जाना चाहिए था।"

"हाँ पण्डितजी! महाराज तब तक युद्धभूमि पर जा चुके थे। उस अवस्था में उन तक आपका सन्देश पहुँचाने के लिए मुझे युद्धभूमि पर जाना पड़ा।"

"युद्धभूमि की स्थिति कैसी थी?"

"मेरे वहाँ से चलने तक युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था। हमारी सेना वहाँ तैयार खड़ी थी और विदिशा की सेना के दो दिन में पहुँचने की सम्भावना थी।"

सदाशिव बोला, "विदिशा की तो ढाई लाख सेना होगी। उसके सामने हमारी छोटी-सी सेना क्या कर पायेगी?"

"यह सब तो मैं जानता नहीं। यद्यपि मैंने महाराज से कहा था कि युद्ध में मुझे भी अपने दो-दो हाथ दिखाने का अवसर प्रदान कीजिये, परन्तु उन्होंने कह दिया कि इस समय मैं जो कार्य कर रहा हूँ वह युद्धभूमि पर दो-दो हाथ दिखाने से कम महत्त्व का नहीं है।

"महाराज की इस बात ने मेरा उत्साह ठण्डा कर दिया और मैं उनका आदेश पालन करता हुआ पाटलिपुत्र चला आया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाशिव समझ गया कि युद्ध के समय सैनिक युक्ति अथवा तर्क नहीं किया करते। सेना को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे अपने अधिकारी के किसी भी प्रकार के, सही अथवा गलत, आदेश का पालन करें।

महावीर ने सदाशिव को महाराज का सन्देश दिया और उनसे आज्ञा लेकर अपने साथियों में जा मिला।

युद्ध लम्बा होता गया। उसका कारण यह था कि पूर्वी मोर्चे पर तो अंगराज की सेना ब्राह्मणों की सेना की सहायता कर रही थी। ब्राह्मणों की युद्धनीति यह थी कि वे खुलकर युद्ध करना नहीं चाहते थे। उनकी योजना छापामार युद्ध करके मगध सेना को वंचिका दे-देकर थका देने की थी।

मगध की नीति यह थी कि जो भी मगध प्रदेश में प्रविष्ट होता था उसके साथ युद्ध करके उसको अपने राज्य से बाहर खदेड़ देना। इस प्रकार मगध राज्य अपना जन-बल और धन-बल हूणों के आक्रमण से बचने के लिए सुरक्षित रख रहा था।

मगध के सैनिक ब्राह्मणों का मान करते थे और ब्रह्महत्या के पाप से बचने का यत्न करते रहते थे।

पश्चिमी मोर्चे पर भी विदिशा वाले खुलकर युद्ध नहीं कर रहे थे। वे चाहते थे कि पूर्वी मोर्चे पर निर्णायक युद्ध हो जाए तो उनके द्वारा अर्जित विजय पर लूट में भाग लेने के लिए वे आगे बढ़कर अपना भाग बटोर लेंगे।

विदिशा की सेना ने जब देखा कि सामने कौशाम्बी की सेना खड़ी है तो उन्होंने कौशाम्बी सैनिक-शिविर के एक कोस के अन्तर पर ही अपनी गति रोक-कर डेरे डाल दिये। और फिर उन्होंने पीछे हस्तिनापुर की सेना को खड़ा देखा तो वे समझ गये कि उनको दो ओर से घेर लिया गया है। वे परेशानी अनुभव करने लगे। इसलिए उन्होंने बातचीत से समस्या का समाधान करना चाहा।

हस्तिनापुर की सेना ने कह दिया कि यदि सेना युद्ध छोड़ना चाहे तो अपने शस्त्रास्त्र सौंपकर वह वापस जा सकती है।

विदिशा के सैनिकों को यह अपमानजनक प्रतीत हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि तीनों ही सेनायें आमने-सामने पड़ी रहीं। कुछ समय यों ही बीतने के बाद विदिशा की सेना को खाद्य-सामग्री की कठिनाई होने लगी। तब विदिशा के सैनिक आसपास के ग्रामों में छापे मारने लगे। इसके लिए वे रात के समय अपने चालीस-पचास सैनिकों को समीप के किसी ग्राम में भेज देते और वे वहाँ से जो कुछ भी लूट सकते थे, लूटकर अपने शिविर में ले आते।

रात को होने वाली इन झड़पों में एक रात को सिपाहियों ने कुमारगुप्त के शिविर पर ही धावा बोल दिया। कुमारगुप्त का शिविर उन दोनों शिविरों से पृथक् था। वे दोनों सेनाओं से सम्पर्क रखना चाहते थे।

विदिशा के सैनिकों ने महाराजाधिराज के शिविर को देखा तो रात के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर आक्रमण कर दिया। महाराज कुमारगुप्त सेना की एक टुकड़ी लेकर स्वयं युद्धभूमि पर गया और उसने छापामारों का सामना किया, किन्तु इस झड़प में वह मार डाला गया।

प्रातःकाल यह समाचार सैनिक शिविर में पहुँच गया। वहाँ से यह समाचार कौशाम्वी में भी पहुँचा तो पुरु स्वयं अपनी सेना लेकर युद्धभूमि में उतर गया। महाराज सुरेन्द्रमणि पहले से ही युद्धभूमि में विद्यमान था।

सुरेन्द्रमणि ने जब महाराज कुमारगुप्त के युद्ध में काम आने का समाचार सुना तो उसने पुरु को अस्थायी रूप से मगध सम्राट के रूप में अभिषिक्त कर दिया और उसके साथ अपनी राजकुमारी वत्सला के विवाह की उसने घोषणा भी कर दी।

इस समय शिवकुमार स्वयं तीव्रगामी रथ पर सवार होकर युद्धभूमि पर आ पहुँचा।

शिवकुमार समझता था कि यदि स्कन्द को महाराज के निधन का और पुरु के अभिषिक्त होने का समाचार मिला तो वह भी स्वयं को महाराज घोषित कर देगा। इस अवस्था में पुष्यमित्रों के साथ होने वाला युद्ध मगध सिंहासन के दो भागीदारों के युद्ध में परिणत हो जायेगा।

उसने महाराज सुरेन्द्रमणि के सम्मुख समस्या रखी और वह इसको समझाने में सफल हो गया कि पुरु के अभिषेक की बात को अभी गुप्त ही रखा जाए। सुरेन्द्रमणि ने पण्डितजी का आग्रह स्वीकार कर लिया।

इस पर भी पुरु और वत्सला का विवाह हो चुका था और दोनों सुहागरात मना चुके थे। अतः इस विवाह को तो टालने की बात ही नहीं थी। हाँ, अभिषेक की घोषणा को कुछ समय के लिए टाल दिया गया।

सुरेन्द्रमणि ने जब अपने जामाता के विषय में पण्डित शिवकुमार की बात को सुनकर उसे स्वीकार कर लिया तो उसने कहा, "यह तो ठीक है कि हम इस समय इस बात को गुप्त रखते हैं, किन्तु एक समय वह आयेगा कि जब यह बात खुलेगी। उस समय हमें आशा है कि पण्डित शिवकुमार महाराज पुरु का पक्ष लेंगे।"

शिवकुमार ने कहा, "मेरी सहानुभूति पुरु के साथ है। मैं पुरु को स्कन्द की अपेक्षा अधिक योग्य और धीर-वीर समझता हूँ।

"परन्तु महाराज! मैं परमात्मा तो हूँ नहीं। परमात्मा ने तो मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता दी हुई है। परमात्मा अधिक-से-अधिक यह करता है कि वह अधिकारी को वर देता है।

"मैं भी ऐसा ही करूँगा। मुझमें और परमात्मा में भी अन्तर है। तदपि मैं पुरु को आशीर्वाद देता हूँ और अपने वचन का पालन करूँगा।"

इस प्रकार युद्ध के समय होने वाला विवाद टल गया। पण्डित शिवकुमार ने पुरु को आशीर्वाद दिया और अपने रथ पर आरूढ़ होकर अंग की सीमा की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल दिया।

पण्डितजी ने इस बार भी मार्ग में किसी प्रकार विश्राम नहीं किया। वे स्वयं तो रथ में ही सो लिया करते थे। स्थान-स्थान पर अश्व और रथवान बदलते हुए वे पाँचवें दिन पूर्वी युद्धभूमि पर जा पहुँचे।

वहाँ भी ब्राह्मणों की नीति के अनुरूप सेनायें आमने-सामने खड़ी थीं। छुट-पुट झड़पें तो हो जाया करती थीं किन्तु खुलकर युद्ध नहीं हो रहा था।

पण्डित शिवकुमार स्कन्द के सम्मुख गया। स्कन्द ने उनको आया देखकर उन के चरणस्पर्श किये। पण्डितजी ने उसको उठाकर अपने सीने से लगाया और बोले, "मैं एक महान् दु:खद समाचार लेकर आया हूँ।"

स्कन्द पण्डितजी के मुख की ओर देखने लगा।

पण्डितजी ने फिर कहा, "मैं समझता हूँ कि इस युद्ध को लम्बा नहीं करना चाहिये।"

स्कन्द ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "समाचार क्या है?"

स्कन्द का अनुमान था कि पश्चिमी युद्धभूमि पर महाराज की पराजय हो गयी होगी।

इसके विपरीत पण्डितजी ने उसको महाराज के निधन का समाचार सुनाया। स्कन्द इससे किंकर्तव्यविमूढ़-सा मौन खड़ा रहा।

पण्डितजी बोले, "मैं समझता हूँ कि यह युद्ध एक सप्ताह में समाप्त कर दिया जाना चाहिये।"

स्कन्द बोला, "पण्डितजी! मैं अकारण और अनावश्यक हत्यायें करने के पक्ष में नहीं हूँ। इस कारण मैंने इनका घेरा डाल दिया है और इनको भूखा रख-कर शस्त्रास्त्र सौंपने के लिए विवश कर रहा था। परन्तु अब तो मुझे यहाँ से तुरन्त अवकाश पाकर राज्यसिंहासन की सुधि लेनी चाहिये।"

"स्कन्द! जहाँ तक इनके ब्राह्मण होने का प्रश्न है, मैं तो इनको ब्राह्मण मानता नहीं हूँ। इस समय ये क्षत्रिय के रूप में युद्ध कर रहे हैं और शत्रु का पता ले रहे हैं। अतः ये वध्य हैं।"

"आपका कहना ठीक हो सकता है परन्तु हमारे सैनिक तो इनको ब्राह्मण ही समझते हैं और वे इनको मारने में ब्रह्म-हत्या का पाप समझते हैं।"

"तो ऐसा करो। आज सायंकाल सारे सेनानायकों को यहाँ पर एकत्रित करो। मैं उनका उसी प्रकार मोह दूर करने का यत्न करूँगा जिस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन का किया था।"

स्कन्द की समझ में यह युक्ति समा गयी।

रात के समय सारे सेनापति और सेनानायक एक स्थान पर एकत्रित हो गये। उस मोर्चे पर लगभग बीस सहस्र सैनिक युद्ध कर रहे थे। सेनापति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनानायकों की यह संख्या भी लगभग पाँच सौ से कम नहीं होगी ।

इनके सम्मुख प्रथम तो पण्डितजी ने अपने ओजस्वी भाषण में इस युद्ध की आवश्यकता तथा अनिवार्यता पर प्रकाश डाला । उन्होंने कहा कि म्लेच्छ हूण इस समय गान्धार के मार्ग से भारतभूमि में घुस आये हैं और अब वह समय भी दूर नहीं है कि वे हमारे निकट आकर हमारे राज्य में लूटपाट आरम्भ कर दें । इसको एक वर्ष से भी कम समय लग सकता है ।

पण्डितजी ने बताया कि पुष्यमित्र इस बात को जानते हैं, किन्तु उनका विचार है कि भारत की शक्ति को इस समय यहाँ पर रोक रखने से हूण उन पुष्यमित्रों पर प्रसन्न हो जायेंगे और मगध का राज्य वे उनको सौंप देंगे ।

किन्तु ये मूर्ख लोग उनके स्वभाव से परिचित नहीं हैं । वे लोग तो निरे वन्य प्राणी के समान व्यवहार करते हैं । उनके यहाँ तो भाई भाई को मारकर राज्य पर अधिकार कर लेता है । पुत्र पिता की हत्या कर देता है और पिता भी पुत्र की हत्या करने में संकोच नहीं करता ।

जो लोग इस प्रकार के स्वभाव के हैं, क्या वे पुष्यमित्रों को यों ही राजपाट सौंप देंगे, कदापि नहीं ।

इस समय मुख्य बात समझने को यह है कि पुष्यमित्र किसी प्रकार भी ब्राह्मणोचित कार्य नहीं कर रहे हैं । विपरीत इसके ये देशद्रोह कर रहे हैं । जब विदेशी शत्रु काली घटाओं की भाँति हमारे देश के आकाश पर मण्डरा रहा है तो ये मूर्ख व्यर्थ में अपने ही देश के शूरवीरों का रक्त बहाने के लिए युद्धभूमि पर उतर आये हैं ।

हमारे बन्धु-बान्धव अपनी रक्षा के लिए पुकार कर रहे हैं । वे जब हूणों की क्रूरता की बातें सुनते हैं तो उनके रोंगटे खड़े होने लगते हैं । इससे आज सारा देश भयभीत हो रहा है । गान्धार देश को वे नर-रक्त से रंग चुके हैं । और यदि उनके पर्वतों से उतरने से पूर्व हम वहाँ नहीं पहुँच सके तो पंचनद क्षेत्र में हमारी माताओं की लाज लूट ली जायेगी, मानव शिशुओं की बलि दे दी जायेगी ।

अतः मेरा सुझाव है कि इस समय इन मूर्खों की बाधा को पार कर अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए उस मोर्चे पर पहुँच जाना चाहिये । इसके लिये मेरे वीरो ! मेरा तो आपसे यही आह्वान है कि आज सूर्यास्त से पूर्व ही इन मूर्खों को, जो हमारे शत्रु के रूप में हमारे सामने खड़े हैं, इनको यहाँ से भगा देना चाहिये अन्यथा पल-पल का विलम्ब होता जायेगा और उसी मात्रा में हमारा संकट बढ़ता जायेगा तथा निकट भी आता जायेगा ।

वीरो ! यह भगवान् का आदेश है । उसने ही यह कार्य आप लोगों को सौंपा है । मैं समझता हूँ कि वही भगवान् कल आप लोगों में बैठा हुआ इन शत्रुओं को घास-फूस के समान स्वाह कर आपका मार्ग प्रशस्त कर देगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितजी के इस ओजस्वी भाषण के बाद बजरंगबली की जय का घोष हुआ और इस प्रकार यह सभा विसर्जित हो गयी। उसका परिणाम यह हुआ कि अगले दिन की अपेक्षा उसी रात आक्रमण की योजना बन गयी।

: ६ :

अगले दिन सूर्योदय से पूर्व पुष्यमित्र अपने नित्य कर्म से भी निवृत्त नहीं हुए थे कि मागधों ने उन पर धावा बोल दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि मध्याह्न से पूर्व उनके बहुत-से सैनिक मारे गये और जो बच गये वे भाग खड़े हुए। पुष्य-मित्र शिव का घोष करते थे तो मगध की सेना नरसिंह का घोष कर उन पर टूट पड़ती थी। इस प्रकार उनका एक के बाद दूसरा और तीसरा मोर्चा टूटता चला गया।

अंगराज की सेना मगध की सेना का मार्ग रोके खड़ी थी। अब उसने स्वयं को घिरा हुआ समझा तो वह भी बिना युद्ध किये वहाँ से भाग खड़ी हुई। परिणाम यह हुआ कि एक सप्ताह के भीतर ही अंग की राजधानी पर मगध की विजय-पताका फहराने लगी।

शिवकुमार जिस दिन युद्ध के पश्चिमी मोर्चे से पूर्वी मोर्चे की ओर चला था उसी दिन महाराज सुरेन्द्रमणि और उसके जामाता पुरु में परस्पर विचार-विमर्श हुआ।

पुरु ने कहा, "महाराज! मैं इस युद्ध में अपने किसी निजी लाभ के लिये सम्मिलित नहीं हुआ था। नेपाल में अत्यन्त सुख का जीवन व्यतीत कर रहा था। वहाँ मुझे सम्मान और सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त थे। शीघ्र ही मैं वहाँ की सेना का अध्यक्ष बनने वाला था। तदपि मैं भारत आया तो उसका एकमात्र कारण यही था कि हूणों के आक्रमण के विरुद्ध मैं भारत की सेना को सहयोग दूँ।

"संयोग से भारत में मेरी भेंट वैरागी आनन्द से हो गयी और उन्होंने मुझे हस्तिनापुर महाराज के समीप भेज दिया। वैरागीजी की प्रेरणा से हस्तिनापुर-नरेश ने मुझे अपनी सेना का सेनापति नियुक्त कर लिया। उन्होंने मुझे कहा था कि वे वचनबद्ध हैं कि हूणों के आक्रमण के समय वे मगध का पूरा-पूरा साथ देंगे।

"महाराज मणिपाल ने मुझे भारत की राजनीति के विषय में भी बहुत कुछ बताया। मैंने भी यही उचित समझा कि यदि हूणों पर विजय प्राप्त करनी है तो भारत की दूषित राजनीति को पहले समाप्त करना होगा। उसके बिना विदेशियों से लोहा नहीं लिया जा सकता।

"यह सोच-विचार करके ही मैं हस्तिनापुर की सेना के माध्यम से युद्ध करने के लिये इस शिविर में आया था।

"मेरा यह संकल्प है कि इस युद्ध में यदि मैं जीवित रहा तो नेपाल वापस जाकर शेष जीवन वहीं शान्ति से व्यतीत करूँगा। मेरे मन में सम्राट बनने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंचित् भी लालसा नहीं है।"

पुरु के इस प्रकार के उद्गार सुनकर महाराज सुरेन्द्रमणि को अपनी कन्या के भविष्य के विषय में चिन्ता होने लगी। उसके मन में एक बात आई तो उसने कहा, "कुमार! जैसा कि महाराजाधिराज के पुरोहितजी ने कहा है कि सम्राट बनने की बात को तो इस समय समाप्त कर युद्ध को सर्वप्रथम समाप्त करना चाहिये।

"मैं भी यही चाहता हूँ कि हूणों पर विजय प्राप्त करने से पूर्व मगध के भावी सम्राट का राज्याभिषेक न किया जाए। मैं इस विषय में यत्न करना चाहता हूँ। उस अवधि तक न जाने कौन जीवित रहता है, कौन परमात्मा को प्रिय होकर वैकुण्ठ का राज्य प्राप्त करता है। हूणों से युद्ध कर उन्हें यहाँ से खदेड़ने के लिये मैं भी प्रतिज्ञाबद्ध हूं।

"अतः इस समय यही उपयुक्त होगा कि इस विषय पर वार्तालाप को बन्द कर सामने खड़ी देशद्रोहियों की इस सेना को परास्त कर शीघ्रातिशीघ्र इस पर विजय प्राप्त की जाए।"

इसके बाद इस विषय पर पुनः किसी प्रकार का वार्तालाप नहीं हुआ। दूसरे दिन दोनों ओर से विदिशा की सेना को घेर लिया गया।

इस मोर्चे पर तो उतनी भी देर नहीं लगी जितनी कि अंग राज्य को विजय करने में लगी थी। विदिशा की सेना को पीठ दिखाने के लिए विवश करने में केवल तीन दिन ही लगे थे।

सुरेन्द्रमणि का निश्चय था कि विदिशा की सेना का चिह्न तक अवशेष न रखा जाए। ऐसा ही किया गया। कौशाम्बी और हस्तिनापुर की सेनाएँ विदिशा की सेना के पीछे चलती हुई दुर्ग तक पहुँच गयीं और वहाँ पर मगध की ध्वजा फहराने लगी।

महाराज सुरेन्द्रमणि ने पुरु को विदिशा में छोड़ा और स्वयं पाटलिपुत्र के लिये चल दिये। अंग पर भी मगध का अधिकार हो गया है, यह समाचार सुरेन्द्रमणि को पाटलिपुत्र जाकर ही मिला था।

स्कन्द की माता को महाराज के निधन का समाचार मिल चुका था। उसने अपने पुत्र के राज्याभिषेक की तिथि की भी घोषणा करवा दी।

सुरेन्द्रमणि ने पाटलिपुत्र पहुँचते ही पूर्वी मोर्चे पर पुरु के शौर्य की गाथा का प्रचार-प्रसार करना आरम्भ कर दिया। उसने यह भी प्रस्ताव रख दिया कि पुरु के लिये भी राज्य की व्यवस्था की जाए।

पाटलिपुत्र में जब यह विवाद उठा तो महारानी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने पण्डित शिवकुमार जी के पास पूर्वी मोर्चे पर सन्देश भेजा कि वे यथाशीघ्र राजधानी में लौट आयें।

स्कन्द और पण्डित शिवकुमार साथ ही आये थे। पण्डित शिवकुमार ने जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विवादास्पद स्थिति देखी तो पहले तो उन्होंने यही सुझाव दिया कि एक पारिवारिक गोष्ठी की जाए, उसमें इस विषय को सुलझाने का यत्न किया जाए।

यह संयोग की ही बात थी कि उस पारिवारिक गोष्ठी के अवसर पर आनन्द वैरागी भी पाटलिपुत्र पहुँच गया था।

आनन्द वैरागी यह सूचना लेकर आया था कि गान्धार पर हूणों ने अधिकार कर लिया है। न केवल इतना अपितु वहाँ पर बड़े जोर-शोर से भारत पर आक्रमण की तैयारी की जा रही है। इस तैयारी को देखकर कश्मीर में आतंक छा गया है। वहाँ के निवासी अपने स्थानों से भाग-भागकर पांचाल या नेपाल की ओर जा रहे हैं। किन्तु यदि भारत ने उसको सक्रिय सहयोग नहीं दिया तो वह हूणों का विरोध करने में समर्थ नहीं होगा।

आनन्द वैरागी का पाटलिपुत्र आने का यही अभिप्राय था कि वह उन्हें हूणों के विरुद्ध युद्ध का आह्वान करने की प्रेरणा दे। परन्तु वहाँ महाराज कुमारगुप्त के निधन के कारण उत्तराधिकारी की घोषणा पर विवाद उत्पन्न हो गया था।

राज्य-परिवार की गोष्ठी के पूर्व ही आनन्द के वहाँ पहुँच जाने की सूचना मिलने पर पण्डित शिवकुमार ने उसको अपने कक्ष में बुलवा लिया। दोनों पिता-पुत्र देश की परिस्थिति पर विचार-विमर्श करते रहे। इसके बाद मगध राज के सिंहासन की बात भी हुई।

आनन्द ने कहा, "गुरुजी! पुरु से राजसिंहासन के विषय पर मेरी बात हुई थी। उसको सिंहासन की लालसा नहीं है।"

"उसकी स्वयं की लालसा न हो, किन्तु कौशाम्बी के महाराज ने उसको अपनी कन्या दे दी है और अब वे ही उसमें यह लालसा जागृत कर रहे हैं।"

"यहाँ की स्थिति क्या है?"

"यहाँ स्कन्द की माताजी हठ कर रही हैं कि हूणों से किये जाने वाले युद्ध से पूर्व ही स्कन्द का राज्याभिषेक हो जाना चाहिये।

"पुरु के विषय में यहाँ दो प्रबल कठिनाइयाँ हैं। एक तो यहाँ उसको कोई जानता नहीं; दूसरे, स्कन्द महाराज का ज्येष्ठ पुत्र है। ये दो बातें जिस प्रकार पुरु के विपरीत हैं उसी प्रकार ये स्कन्द के प्रबल पक्ष में सिद्ध होती हैं।

"कौशाम्बी महाराज का कथन है कि स्कन्द की माँ साधारण नागरिक की पुत्री है और साथ ही स्कन्द ने अपना विवाह एक गँवार युवती से किया है, इस कारण उसे राज्य नहीं मिलना चाहिये।

"पुरु की माता नेपाल के राज्यपरिवार की कन्या है। पुरु का स्वयं का विवाह भारत के प्रमुख राज्य कौशाम्बी की राजकुमारी से हुआ है।

"वैसे भी पुरु स्कन्द की अपेक्षा शूरवीर और सुयोग्य युवक है।"

आनन्द का कहना था, "इससे तो समस्या और बढ़ जायेगी। मैं समझता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह विवाद बाहर प्रजा में विख्यात हो, उससे पूर्व परिवार में ही इसका निपटारा कर लिया जाए तो उत्तम होगा।"

"आज इस विषय पर पारिवारिक गोष्ठी हो रही है। मैं तो उसमें सम्मिलित हूँगा ही। मैं चाहता हूँ कि तुम भी उसमें उपस्थित हो जाओ और यदि सम्भव हो तो इस गुत्थी को सुलझाने में कुछ सहायता करो।"

"यह गोष्ठी किसने आमन्त्रित की है ?"

"मैंने ही आमन्त्रित की है। मैं ही तुमको भी निमन्त्रण दे रहा हूँ।"

उस गोष्ठी में स्कन्द की माता, स्कन्द स्वयं तथा राजपरिवार के तीन सदस्य, जो महाराज समुद्रगुप्त से गुजारेदार समझे जाते थे, वे उपस्थित थे। शिवकुमार और आनन्द वैरागी भी इसमें उपस्थित थे। मध्याह्नोत्तर यह पारिवारिक गोष्ठी आरम्भ हुई। उस समय स्कन्द की माँ ने पूछा, "पुरु कौन है और उसका सिंहासन पर अब किस प्रकार अधिकार माना जा रहा है ?"

पण्डित शिवकुमार ने इसके उत्तर में कहा, "महाराज कुमारगुप्त ने दो विवाह किये थे। उनकी द्वितीय पत्नी नेपाल के राजपरिवार की कन्या है। उसका एक पुत्र है जो इस युद्ध में पश्चिमी युद्धस्थल में सेनापति का कार्य करता रहा है। उसका विवाह कौशाम्बी के महाराज सुरेन्द्रमणि की राजकुमारी के साथ हुआ है।"

महारानी बोली, "हाँ, यह सत्य है कि महाराजाधिराज ने दूसरा विवाह किया था। उस विवाह से उनकी एक सन्तान भी थी। परन्तु वह बालक तीन वर्ष का भी नहीं हुआ था कि महाराज की वह पत्नी उसको लेकर यहाँ से चली गयी थी। उसके उपरान्त उसका कहीं कोई समाचार मिला ही नहीं।

"मैं समझती हूँ कि उसका राज्यसिंहासन पर बैठने का कोई अधिकार नहीं है।"

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "महारानीजी ! इस राजपरिवार में आज तक अधिकांशतया छोटी महारानी के पुत्र को ही राज्याधिकार प्राप्त होता रहा है। यहाँ तक कि इस राजपरिवार में सर्वाधिक विख्यात सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं भी द्वितीय महारानी के ही सुपुत्र थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय भी द्वितीय पत्नी के ही पुत्र थे।

"न केवल इतना अपितु कुमारगुप्त स्वयं उस रानी के पुत्र थे जिनके विषय में यह विख्यात है कि वह विवाह धर्मानुसार नहीं हुआ था। धर्माचार्य उस विवाह के पक्ष में कभी नहीं रहे थे।

"इससे यह सिद्ध हुआ कि ये अधिकार राजा-रानी से नहीं अपितु योग्यता से बनते हैं। इस कारण मेरा आग्रह है कि इस साम्राज्य के राज्य के अधिकार के लिये राज्य करने की योग्यता ही मापदण्ड हो। हम कुछ भी निश्चय क्यों न कर लें, अन्त में होगा वही जिसकी ओर मैंने संकेत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अर्थात् महाराजाधिराज वही होगा जो शत्रु को पराजित करने की योग्यता रखने वाला होगा। प्रजा जिसको ओजस्वी और धर्मात्मा समझेगी।"

"इस सबकी परीक्षा किस प्रकार हो सकेगी?" महारानी ने ही यह प्रश्न किया।

पण्डित शिवकुमार ने इस प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा स्कन्दकुमार से प्रति-प्रश्न किया, "बोलो कुमार! इसकी परीक्षा किस प्रकार सम्भव है?"

स्कन्दकुमार अभी उत्तर देने का विचार कर ही रहा था कि उसी समय प्रति-हार ने द्वार पर उपस्थित होकर कहा, "कौशाम्बी-नरेश महाराज सुरेन्द्रमणि ने तुरन्त पण्डित शिवकुमारजी से मिलने का आग्रह किया है।"

इस अवसर पर सुरेन्द्रमणि का उपस्थित होना शिवकुमार को उचित तो प्रतीत नहीं हुआ, परन्तु विदिशा के विरुद्ध जिस कुशलता से उन्होंने युद्ध-संचालन किया था उसको अभी बहुत समय नहीं बीता था, अतः वह बात भुलाई नहीं जा सकती थी।

शिवकुमार ने उठते हुए कहा, "महारानीजी! क्षमा करें। महाराज सुरेन्द्र ने पिछले दो सौ वर्ष से इस परिवार से युद्ध करने के लिए तत्पर रहने वाले विदिशा को निःशेष कर दिया है, इस कारण उनके आग्रह की उपेक्षा करना उचित नहीं है। मैं उनसे मिलकर अभी वापस आता हूँ।"

स्कन्द ने कहा, "पण्डितजी! क्यों न उनको भी इस गोष्ठी में बुला लिया जाए। वे भी सुन लें कि मैं क्या कहना चाहता हूँ।"

महारानी ने इसका समर्थन करते हुए कहा, "ठीक है, उनको भी बुला लीजिये और यहीं उनकी बात सुन लीजिये। मैं चाहती यही हूँ कि विचार-विनिमय तो हम परिवार के लोग ही करें, उनकी बात सुन लेने में कोई हानि नहीं है। वह अपनी बात बताकर चले जाएँ और गोष्ठी में राजपरिवार और उसके पुरोहित ही रहें।"

माता-पुत्र का यह विचार जानकर पण्डित शिवकुमार ने प्रतिहार को कहा, "महाराज सुरेन्द्रमणि को आदर सहित यहाँ ले आओ।"

प्रतिहार तुरन्त गया और महाराज सुरेन्द्रमणि तथा राजकुमार पुरु को लेकर भीतर आ गया।

पण्डित शिवकुमार ने उठकर उन दोनों का स्वागत किया और उन्हें अपने समीप बैठाकर कहा, "महाराज! कहिये, कैसे आगमन हुआ है?"

"मुझे यह विदित हुआ कि महाराज कुमारगुप्त के परिवार की गोष्ठी हो रही है। इस गोष्ठी में बैठने का जो अन्य अधिकारी था उसको यहाँ पर बुलाया नहीं गया है। मैं उसको यहाँ इस गोष्ठी में बैठाने के लिये अपने साथ लाया हूँ।

"यह कुमार जो मेरे साथ आया है, स्वर्गीय महाराज कुमारगुप्त की द्वितीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी मृदुला का सुपुत्र है। इसका नाम पुरु है। मैं समझता हूँ कि इस पारिवारिक गोष्ठी में इसको भी बैठने का अधिकार है।"

सब लोग जो वहाँ पर बैठे थे, पुरु के ओजस्वी मुख की ओर देख रहे थे। सबसे विचित्र बात यह थी कि स्कन्द की अपेक्षा पुरु की रूपरेखा स्वर्गीय कुमारगुप्त से अधिक मिलती थी। स्कन्द की रूपरेखा अपनी माता से मिलती-जुलती थी।

यह सुनकर स्कन्द की माता ने कहा, "हाँ, यह कुमार वहीं प्रतीत होता है जो आज से पच्चीस वर्ष पूर्व इस प्रासाद में उत्पन्न हुआ था। मैं भी यह ठीक समझती हूँ कि यह यहाँ बैठ सकता है और राज्य के उत्तराधिकारी के लिये होने वाली गोष्ठी में भाग ले सकता है।"

पुरु ने महारानी की ओर झुककर नमस्कार किया और फिर बोला, "मैं समझता हूँ कि महाराज कौशाम्बी मेरी पत्नी के पिता हैं। इस कारण ये अब इस परिवार का ही अंग हैं। उस आधार पर इनको भी इस गोष्ठी में बैठने का अधिकार है। अत: इस विचार-विनिमय में इनको भी भाग लेने की स्वीकृति मिलनी चाहिए।"

इसी समय आनन्द ने अपना मुख खोला। उसने पण्डित शिवकुमार की ओर मुख करके कहा, "मैं समझता हूँ कि महाराज सुरेन्द्रमणि को भी इस गोष्ठी में सम्मिलित होने का अधिकार दे दिया जाए तो इससे हानि होने की अपेक्षा लाभ ही होगा।

"मेरा महारानीजी से आग्रह है कि हमें इनकी सम्मति से लाभान्वित होने का अवसर मिलना चाहिये।"

यह सुनकर पण्डित शिवकुमार ने कहा, "परन्तु एक बात है। यह ध्यान में रखना होगा कि यह गोष्ठी गुप्त है। इसके अध्यक्ष की स्वीकृति के बिना इसमें किये जाने वाले निश्चय के विषय में किसी अन्य को बताना नहीं होगा। और यह भी मानना होगा कि इस गोष्ठी में बहुमत जो निर्णय करेगा वह सर्वसम्मत मत माना जायेगा।"

कौशाम्बी-नरेश इस वाग्जाल को समझने में असमर्थ रहा। उसे तो पण्डित शिवकुमार पर पूर्ण श्रद्धा और आस्था थी। अत: उसने इस विषय पर कोई विवाद नहीं किया।

महारानी ने इसको सर्वसम्मत निश्चय मानकर कहा, "स्कन्दकुमार कुछ कहने लगा था। वह जो कुछ कहना चाहता है, वह कहे।"

स्कन्द ने कहा, "अब परिस्थिति बदल गयी है। मैं उस समय जो कुछ कहने वाला था उस पर मेरी सम्मति भी बदल गयी है।"

महारानी बोली, "हम तो उसी को सुनने की इच्छा करते हैं।"

माँ-पुत्र के इस वार्तालाप से शिवकुमार ने अनुमान लगाया था कि उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द वह बात कहने वाला था जो उसकी माता ने उसको सिखायी थी। और अब महारानी को सन्देह हो गया है कि वह पुरु को देखकर कुछ अन्य ही बात कहने वाला है।

पूर्व इसके कि इस समस्या पर पण्डित शिवकुमार कुछ कहता, स्कन्द ने अपनी माता से कहा, "जी हाँ। मैं वह बात भी कहूँगा, परन्तु उससे पूर्व एक बात और कह देना उपयुक्त समझता हूँ। वह बात मैंने अपने भाई को कहनी है। किन्तु उससे भी पूर्व मैं अपने भाई के साथ एक बात पृथक् में करना चाहता हूँ। मुझे इसकी स्वीकृति दी जाए। उसके बाद मैं वह बात कहूँगा जो मैं इनके आने से पूर्व कहने वाला था।"

शिवकुमार को लगा कि समस्या सुलझने वाली है। उन्होंने कह दिया, "स्वीकृति देने से पूर्व पुरुकुमार की इच्छा भी तो जानना आवश्यक है। बोलो पुरु! तुम्हें इसमें कोई आपत्ति तो नहीं?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

दोनों कुमार वहाँ से उठकर साथ वाले कक्ष में चले गये।

दो पल में ही दोनों कुमार लौटकर आ गये। दोनों के मुख पर प्रसन्नता थी। दोनों आकर साथ-साथ बैठ गये।

स्कन्द ने कहा, "हमने निश्चय कर लिया है कि सम्राट-पद का निर्णय हूणों से युद्ध के उपरान्त किया जाए। तब तक हम दोनों साम्राज्य का कार्यभार बाँट-कर सम्पन्न करेंगे।

"इस निश्चय से पूर्व मैं स्वयं को सम्राट घोषित किये जाने का आग्रह करना चाहता था, परन्तु अब यह निश्चय युद्ध के उपरान्त होगा।

"मैं समझता हूँ कि युद्ध में दो-तीन वर्ष, कदाचित् उससे भी अधिक समय लग सकता है तथा इस भयंकर युद्ध में कौन जीवित बचेगा और कौन नहीं बचेगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

"इस कारण मेरा यह निर्णय है कि अभी मुझे युवराज घोषित कर दिया जाए। युद्ध के उपरान्त, युद्ध का कार्य देखकर देश के नरेश का निश्चय किया जाए।

"भाई पुरु और मैं अपना-अपना कार्य निश्चय करके राज्य का भार वहन करेंगे। कौन किस प्रकार की सेवा करे इसका निश्चय हमारे राजपुरोहित करेंगे।"

शिवकुमार को विस्मय हो रहा था कि इस विपत्ति के समय में इस प्रकार की सद्बुद्धि स्कन्दकुमार में किस प्रकार आ गयी है। कौन है जिसने उसको इस सुमार्ग पर लगाया है? उसने सोचा कि कदाचित् गुप्त वंश के अच्छे दिन अभी शेष हैं।

इस प्रकार यह गोष्ठी लगभग समाप्त हो रही थी। पण्डित शिवकुमार ने महारानी पद्मावती को सम्बोधित कर कहा, "मैं यह व्यवस्था देता हूँ कि एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास के भीतर भारत के समस्त नरेशों का एक सम्मेलन यहाँ आयोजित किया जाए। उसमें दो कार्य होंगे। एक तो राजकुमार स्कन्द को भारत की विशाल सेना का सेनापति नियुक्त किया जायेगा। उस अवसर पर सब राजाओं को अपने सेनापतियों को स्कन्द की सहायता के लिए प्रेरणा देने की बात करनी होगी। और दूसरी बात यह कि पुरु को राज्य-प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया जायेगा।

"शरद् ऋतु आरम्भ होते ही सेनायें सीमा की ओर प्रस्थान कर देंगी।"

स्कन्द ने आवरण से अपना खड्ग बाहर निकालकर शपथ लेते हुए कहा, "मैं परमात्मा को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह खड्ग अब तभी कोष में वापस जायेगा जब मैं म्लेच्छ हूणों को सिन्धु पार कर दूंगा।"

महारानी पद्मावती को यह निर्णय अपनी इच्छा के अनुकूल नहीं लगा, परन्तु उसको सन्तोष था कि स्कन्द को सेना का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया गया है और वह स्वयं भी युद्ध में जाने को उद्यत है।

गोष्ठी समाप्त हुई तो शिवकुमार आनन्द को साथ लेकर अपने आगार में चला गया। महाराज सुरेन्द्र और पुरु भी उनके साथ हो गये।

मार्ग में चलते हुए शिवकुमार ने पुरु से कहा, "भाई-भाई में क्या मन्त्रणा हुई कि यह निरंकुश कुमार सुमार्ग पर आ गया?"

"पण्डितजी! मैंने उससे एक बात पूछी थी, 'भैया! जानते हो, मृत्यु कितनी दूर है?'

" 'यह कौन जान सकता है?' उसका प्रतिप्रश्न था।

" 'तो देश को तुरन्त राज्याभिषेक की तैयारी के लिए क्यों बाध्य करते हो? हमें चाहिये कि पहले देश पर आये संकट के निवारण का यत्न करें।'

"ऐसा प्रतीत होता है कि भैया के मन में भी कुछ ऐसी ही योजना थी। बस, इतनी बात पर सहमति हुई और हम दोनों वापस आ गये।"

अब पण्डितजी महाराज ने सुरेन्द्रमणि से पूछा, "आपको इस परिवर्तित परिस्थिति में कैसा लगा?"

"मुझे लग रहा है कि यह परिवर्तित परिस्थिति कुमार पुरु को सम्राट-पद के निकट ले जा रही है।"

"विदिशा का क्या करेंगे?"

"भारत में अब विदिशा नाम का राज्य नहीं रहेगा। वह हस्तिनापुर और कौशाम्बी में बँट जायेगा।"

"मैं समझता हूँ कि अब आप लोगों को विदिशा-नरेश से किसी प्रकार की सन्धि नहीं करनी चाहिये। आप लोगों का सीधा सम्बन्ध प्रजा से होना अच्छा रहेगा। वहाँ की प्रजा को सुखी रखने का यत्न किया जाना चाहिये। वहाँ के निवासियों को अधिकाधिक संख्या में कौशाम्बी और हस्तिनापुर में बसा देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये और हस्तिनापुर तथा कौशाम्बी के नागरिक वहाँ जाकर बसाये जाने चाहिये।

"किन्तु इस बदला-बदली में इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि किसी की इच्छा के विपरीत कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिये। जो नहीं जाना चाहता है, वह वहीं रहे। हाँ, उचित यही है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देनी चाहिये कि लोग स्वेच्छा से विदिशा छोड़ने के लिए उद्यत हो जाएँ।"

पण्डितजी के आगार में पहुँचकर महाराज सुरेन्द्रमणि ने कहा, "मैं तो आज सायंकाल ही कौशाम्बी लौट जाऊँगा। पुरु भी मेरे साथ ही जायेगा। दस दिन में यह परिवार सहित पाटलिपुत्र वापस आयेगा। उसके उपरान्त यह यहीं रहेगा और राजकुमार स्कन्द के साथ मिलकर राज्य-कार्य में सहायक होगा।"

शिवकुमार ने कहा, "मैं समझता हूँ कि राजकुमार पुरु को अब यहाँ से जाना ही नहीं चाहिये। इनको कल से ही राज्य-कार्य में सहायता करनी चाहिये। पुरु की पत्नी को आप योग्य सेवक-सेविकाओं के साथ तुरन्त पाटलिपुत्र भेज दीजिये।"

सुरेन्द्रमणि ने यह सुनकर पुरु की ओर देखा।

पुरु बोला, "पण्डितजी ठीक ही कह रहे हैं। मैं यहीं रहूँगा और राजप्रासाद में अपने रहने की व्यवस्था करूँगा। आप वत्सला को सुरक्षा के साथ यहाँ भेजने की व्यवस्था कर दीजिये।"

इस प्रकार यह प्रकरण, जो एक बार बड़ा जटिल प्रतीत हो रहा था, बड़ी सुगमता से सुलझ गया।

: १० :

आनन्द ने अपने पिता को बताया, "गुरुदेव ! आपको एक बात बताता हूँ।"

"क्या ?"

"वह नजरथ वाला बालक मुझे एक साधु के वेश में कश्मीर में दिखायी दिया था।"

"अच्छा ?"

"जी हाँ। उसे फाँसी पर चढ़ा दिया गया था, परन्तु वह वहाँ से बच निकला है। वह वहाँ श्रीनगर के एक मन्दिर में रहता है। यहाँ भी उसकी पूजा हो रही है।"

शिवकुमार ने पूछा, "किन्तु उसे फाँसी क्यों चढ़ाया गया था ?"

"उसने स्वयं तो कुछ बताया नहीं, किन्तु मैं उसके समीप बैठकर उसके मन की सारी बात जान गया हूँ।

"हुआ यह कि मेरे वहाँ से चले आने के उपरान्त वह दस वर्ष तक उसी गाँव में रहा। उसकी माँ ने उसके विवाह का प्रबन्ध करना चाहा, किन्तु उसको यह स्वीकार नहीं था। इस कारण वह घर से भाग निकला। वह पहले यवन देश गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वहाँ से भारत चला आया। मेरी खोज में वह भारत में घूमता रहा है।

"योग द्वारा जो सामर्थ्य मैंने उपलब्ध की है, उसका चमत्कार वह देख चुका था। उसकी इच्छा भी योग-विद्या सीखने की थी। जिस समय वह भारत में आया उस समय मैं वैरागियों का संगठन कर रहा था। वह किसी बौद्ध भिक्षु के साथ नेपाल चला गया। वहाँ उसने किसी से समाधि लगाने का ढंग सीखा। इस प्रकार वह बारह वर्ष तक नेपाल में रहा। वहाँ से वह फिर अपने देश चला गया।

"उसकी इच्छा अपने देश में बौद्ध धर्म का प्रचार करने की थी। उसके इस कृत्य से उसके अपने धर्मगुरु उससे रुष्ट हो गये। उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया और वे धर्मगुरु राजा की ओर से उसको धर्मद्रोह के अपराध में मृत्यु-दण्ड दिलाने में सफल हो गये।

"जिस समय उसको शूली पर चढ़ाया गया, उस समय उसने समाधि लगा ली। उसका परिणाम यह हुआ कि वह शूली पर लटकने के बाद भी मरा नहीं। किन्तु उसको मृत समझकर नीचे उतारा गया और फिर एक सन्दूक में बन्द करके उसको दबा दिया गया।

"उसके एक शिष्य को उसके समाधिस्थ होने के विषय में विदित था। उसने उसके परिवार को लिया और रात्रि के समय उस स्थान पर गया जहाँ उसको दफना दिया गया था। उन्होंने उसको वहाँ से निकाला और उसको वहाँ से भाग जाने के लिए कहा। उसको भागने में उन लोगों ने सहायता की और वह पुनः भारत चला आया।

"मैंने उसको यह नहीं बताया कि मैं उसके जन्म से उसकी पाँच वर्ष की अवस्था तक उसके पास रहा था। यह रहस्योद्घाटन मैं किसी अन्य समय पर करने का विचार करता हूँ। उस समय मुझे भी भारत लौटने की त्वरा थी। म्लेच्छों का आक्रमण होने वाला था। इसलिये मैं इधर चला आया हूँ।"

यह सुनकर शिवकुमार ने कहा, "मैं कश्मीर जाने वाला हूँ। मैं वहाँ उससे मिलकर उसे सन्मार्ग दिलाने का यत्न करूँगा। बौद्ध धर्म में जहाँ अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र रखने पर बल दिया जाता है वहाँ उस मत में सामाजिक समन्वय की प्रेरणा नहीं है।"

अगले दिन स्कन्द और पुरु के मध्य राज्य-कार्यों का बँटवारा हो गया। इस कार्य में किसी प्रकार कोई मतभेद परस्पर नहीं हुआ। पुरु को सम्राट बनने की लालसा आरम्भ से ही नहीं थी। इसलिए उसने अपने बड़े भाई से कहा, "भैया! मुझमें सम्राट बनने की तनिक भी आकांक्षा नहीं है। भारत में आने का मेरा एक-मात्र उद्देश्य था साम्राज्य की विदेशियों से सुरक्षा के लिए युद्ध करना।"

"पुरु! मैं सेनापति बनकर युद्धभूमि में जा रहा हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि म्लेच्छों के साथ इस युद्ध में नरबलि चढ़ेगी। अतः यह कह सकना कठिन है कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धभूमि से जीवित लौटूंगा अथवा कि नहीं। इसलिए मैं अपना स्थानापन्न यहाँ रखना चाहता हूँ। यदि जीवित लौट आया तो हम दोनों राज्य को बाँटकर भोग करेंगे और यदि परमात्मा की कुदृष्टि ही हुई तो फिर यह तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम गुप्त परिवार की परम्परा का पालन करते हुए इस राज्य को शिखर पर पहुँचाओ।"

वास्तव में स्कन्द हूण-विजय का श्रेय पुरु को प्रदान करने के पक्ष में नहीं था। अत: वह इसके लिए पुरु को तनिक-सा भी अवसर देना नहीं चाहता था। उधर पुरु अपनी पत्नी वत्सला की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर राज-काज करना स्वीकार कर रहा था।

शिवकुमार ने आनन्द को आक्रमण का विरोध करने के लिए भारत-भर के नरेशों को एक होकर युद्ध करने की प्रेरणा देने के लिए भारत में छोड़कर वह स्वयं कश्मीर के लिए चल दिया। वहाँ जाने का उसका उद्देश्य भी हूण-आक्रमण से ही सम्बन्धित था। वह वहाँ की उपयुक्त युद्धभूमि के विषय में भूमि के जानकारों से विचार-विमर्श करना चाहता था।

इस अवधि में स्कन्द पाटलिपुत्र में होने वाले भारत के नरेशों के सम्मेलन की तैयारी में पाटलिपुत्र में ही व्यस्त रहा।

इसी प्रकार आनन्द भी उस सम्मेलन में आने वाले नरेशों के स्वागत तथा उनको युद्ध में एकजुट होकर कार्य करने की प्रेरणा देने के विचार से पाटलिपुत्र से बाहर नहीं गया।

इसी प्रकार दिन व्यतीत हो रहे थे कि एक दिन स्कन्दकुमार आनन्द वैरागी के कक्ष में जा पहुँचा। उस समय आनन्द पुरु से राज्य के प्रबन्ध के विषय में वार्तालाप कर रहा था।

स्कन्द को आया देख आनन्द ने ही कहा, "युवराज! आपका यह छोटा भाई राज्य-प्रबन्ध में भी उतना ही कुशल है जितना कि युद्धभूमि पर सैन्य संचालन में।"

स्कन्द बोला, "मैं राज्य-प्रबन्ध में तो सर्वथा अनाड़ी हूँ। मैंने पिताजी के जीवनकाल में उनसे लड़ने-झगड़ने के अतिरिक्त अन्य कुछ सीखा ही नहीं। यदि युद्धभूमि से लौटने का सौभाग्य प्राप्त हो गया तो फिर मैं भी भैया से राज्य-प्रबन्ध सीख लूँगा।"

आनन्द मुस्करा दिया। पुरु मौन रहा।

स्कन्द ने पुरु से पूछा, "पुरु! तुम्हारी पत्नी कब तक आने वाली है?"

"मुझे समाचार मिला है कि वह अपने दास-दासियों के साथ तीन-चार दिन में यहाँ पहुँच जायेगी।"

"ठीक है, तुम इसी प्रासाद में रहना। किन्तु तुम्हें मैं एक बात से पहले ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधान करना चाहता हूँ। वह यह कि तुम अपनी पत्नी को राजमाता से सदा बचाकर रखना।"

"राजमाता का तो मेरे प्रति अपार स्नेह दिखाई देता है।"

"यह तुम जानो। मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता। मेरा कार्य तुम्हें सावधान करना था, वह मैंने कर दिया है। वह भली स्त्री नहीं है।"

आनन्द को इससे विस्मय हुआ। उसने ध्यान से स्कन्द के मुख पर देखा और फिर बोला, "स्कन्द! वे तो तुम्हारी माता हैं?"

"योगिराज! यह मैं भली-भाँति जानता हूँ, किन्तु अभी-अभी मुझे कुछ सूचना मिली है और उसके आधार पर मैं पुरु को सावधान करने के लिए चला आया हूँ।"

आनन्द ने इस विषय पर आगे बात नहीं की। भारत के नरेशों के सम्मेलन में एक सप्ताह का ही समय रह गया था। उस विषय पर चर्चा होने लगी। इस सम्मेलन का पूर्ण प्रबन्ध आनन्द के अधीन था।

आनन्द ने अब तक की तैयारी का सारा विवरण दोनों भाइयों को सुनाया। उसके बाद स्कन्द किसी अन्य कार्य से उठा और वहाँ से चला गया।

स्कन्द के जाने के उपरान्त पुरु ने पूछा, "योगिराज! भैया का इस चेतावनी देने से क्या अभिप्राय हो सकता है?"

"जहाँ तक मैं समझता हूँ कि इसकी स्वयं की पत्नी सरल ग्रामीण युवती थी। वह यह देखकर कि महारानीजी उसके पुत्र के प्रति स्नेह भाव रखने लगी हैं, उसे उनके पास भेजकर स्वयं अपनी शिक्षा को उन्नत करने का यत्न करने लगी थी। स्कन्द पुरोहितजी से शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त उनके साथ ही कौशाम्बी गया हुआ था।

"एक दिन सायंकाल के समय स्कन्द का पुत्र महारानीजी से मिलने के लिये गया था, किन्तु समय पर जब वह वापस नहीं लौटा तो स्कन्द की पत्नी स्वयं अपने पुत्र के विषय में यह पता करने के लिए महारानी के पास गई। वहाँ उसको अपमानित किया गया और उसको राजप्रासाद से भी निकाल दिया गया। उस दिन के उपरान्त न तो स्कन्द के पुत्र का किसी को पता चला और न पत्नी का ही।

"स्कन्द को आज पता चला है कि दोनों को ही संसार से उठवा दिया गया है। आज ही उसको इसका ज्ञान हुआ तो उसको भय लगने लग गया है कि उसकी माता उसके मोह में तुम्हारे साथ भी वही व्यवहार कर सकती है जो उसने उसकी पत्नी और पुत्र के साथ किया है।"

पुरु ने यह कथा सुनी तो वह स्तब्ध रह गया। उसने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "योगिराज! आपको यह कथा किसने बताई है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों पूछ रहे हो ?"

"यह असत्य भी तो हो सकता है ?"

"नहीं, यह असत्य नहीं है। मुझे किसी ने यह कथा नहीं बताई है। स्कन्द के यहाँ बैठे हुए मैंने उसके मन को पढ़ा है। स्कन्द को इस घटना का ज्ञान तीन-चार दिन पूर्व ही हो गया था। इन दिनों तक वह उसकी जाँच-पड़ताल करता रहा था। आज उसको इस बात का निश्चय हो गया है। इसलिये वह तुम्हें सावधान करने आ गया है, जिससे कि तुम उस स्त्री की ईर्ष्याग्नि में दग्ध होने से बच सको।

"मुझे वहाँ देखकर वह सारी बात स्पष्ट नहीं कर पाया, परन्तु मुझमें तो सामर्थ्य है कि मैं सामने बैठे मनुष्य के मन के भावों को इस प्रकार इतना पढ़ लेता हूँ जिस प्रकार कोई भी सामने रखी पुस्तक अथवा पाटी को पढ़ लेता है। स्कन्द की जाँच का परिणाम ठीक निकला है। वह महारानी भली स्त्री नहीं है। तुम्हारी माता को यहाँ से भगा देने का यही कारण था। उसका अनुमान है कि अपने पुत्र के हित में वह कभी तुम्हें अथवा तुम्हारी पत्नी को विष देकर भी मार सकती है।"

पुरु अवाक् योगिराज का मुख देखता रह गया। उसको इस प्रकार विस्मय करते देख आनन्द ने कहा, "पुरु ! विचलित होने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु असावधान भी नहीं रहना चाहिये। तुम्हें चाहिये कि अपने भोजन का प्रबन्ध तुम अपने विश्वस्त सेवक-सेविकाओं के हाथ में रखो।

"राजमाता के प्रति प्रत्यक्ष सभ्य और मृदुल व्यवहार रखते हुए सचेत और सतर्क रहने की भी आवश्यकता है। इस प्रकार रहने से तुम किसी भी षड्यन्त्र से बच सकते हो। वैसे तो जब से भारत में विष्णुगुप्त चाणक्य की नीति का प्रसार हुआ है तब से इस प्रकार कुटिल व्यवहार की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है। इस कारण सदा ही सावधान रहने की आवश्यकता होती है।

"राज्यपरिवार वालों को तो विशेष रूप से सावधान रहने की आवश्यकता होती है। परन्तु सावधानी को सफल करने के लिए यह भी आवश्यक है कि उस सावधानी का ज्ञान सम्बन्धित व्यक्ति को नहीं होने पाये। यदि सावधानी में उठाये गये पगों का रहस्य खुल गया तो फिर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं हो पायेगा।"

"स्वामीजी ! मैं सावधान रहूँगा और अब जब यहाँ पर कुटिलता का संकेत मिल गया है तो यह सावधानी धर्म बन गई है।"

नरेशों का आना आरम्भ हुआ तो आनन्द को उनसे पृथक्-पृथक् मिलने का अवसर प्राप्त हो गया। आनन्द उनको युद्ध की भूमिका से अवगत कराता और फिर उनको परस्पर सहायता एवं सहयोग के लिए प्रेरित करता रहता।

समारोह के पूर्व ही पुरु की पत्नी भी आ गई थी। इस बीच पुरु ने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन आदि की सुव्यवस्था कर ली थी। उसके संरक्षक तथा पाचक आदि राज्य से बाहर के व्यक्ति थे। पुरु ने अपने निवास-कक्ष में या तो हस्तिनापुर के सुभट्टों को नियुक्त किया था या फिर कौशाम्बी के। मगध का कोई भी कर्मचारी उसकी सेवा में नियुक्त नहीं था।

पहले ही दिन जब वत्सला अपने आगारों का निरीक्षण-परीक्षण कर रही थी तो संयोग से उसी समय स्कन्द अपने भाई पुरु से मिलने के लिए उसके कक्ष की ओर आया तो उसकी दृष्टि वत्सला पर पड़ गई। उसे वहाँ देख प्रथम तो वत्सला को लज्जा-सी आई। उसने मुख नीचे कर लिया, किन्तु तुरन्त सम्भलकर पूछने लगी, "आपको किससे मिलना है?"

स्कन्द जानता था कि उससे इस प्रकार का प्रश्न पूछा जा सकता है। उसने उत्तर दिया—"भाभी! मिलने तो आपसे ही आया हूँ, परन्तु मैं चाहता यही था कि आपके पति के सम्मुख ही भेंट होती तो अच्छा था।"

"आप बैठक में पधारिये। मैं आपके भाई को सूचित करती हूँ। मैं भी उनके साथ ही आने का यत्न करूँगी।"

स्कन्द वहाँ से उस ओर चला गया जहाँ बैठकघर था। पुरु ने राजप्रासाद के आगारों के प्रयोग में कुछ परिवर्तन कर दिया था। स्कन्द इसके कारण पर विचार करता हुआ बैठकगृह की ओर जा रहा था। वत्सला ने अपनी एक सेविका उसके साथ कर दी थी जो उसको परिवर्तित बैठकघर में पहुँचाने आई थी।

सेविका स्कन्द को वहाँ बैठाकर कहने लगी, "आप विराजिये। मैं श्रीमान् राजकुमार को आपके आने की सूचना देती हूँ।"

"क्या सूचना दोगी?"

"यही कि रानीजी से मिलने के लिए एक भद्र पुरुष पधारे हैं। वे राजा साहब की उपस्थिति में ही उनसे मिलना चाहते हैं।"

स्कन्द यह सुनकर मुस्करा दिया।

स्कन्द समझता था कि पुरु की पत्नी उसको देखकर उससे छिपने का यत्न करेगी किन्तु उसके विपरीत वत्सला ने ऐसा व्यवहार किया मानो वह कोई सामान्य व्यक्ति हो। सेविका ने भी जब इसी प्रकार कुछ कहा तो उसका विस्मय और भी बढ़ गया।

उसी समय एक अन्य सेविका राजकुमार के लिये पेय लेकर उपस्थित हो गई। स्कन्द ने पूछा, "यह क्या है?"

"श्रीमान्‌जी के लिए शीतल पेय है। राजकुमार राज्यमन्त्री से किसी विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, इस कारण रानीजी ने कहा है कि तब तक आप इसे पान कीजिये। उनको सूचना भेज दी गई है और अवकाश पाते ही वे उपस्थित हो जायेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वही सेविका थी जिसने कौशाम्बी में स्कन्द और वत्सला की भेंट की व्यवस्था की थी। उस समय स्कन्द ने उसकी सेवा के लिये एक स्वर्ण पुरस्कार में दिया था।

स्कन्द ने पेय का पात्र हाथ में लिया और बोला, "मुझे पहचाना ?"

"जी हाँ। आपसे मिला स्वर्ण स्मरण है।"

"ओह !" स्कन्द के मुख से अकस्मात् निकल गया।

सेविका बोली, "आपके एक स्वर्ण के पुरस्कार पर रानीजी ने दो स्वर्ण दिये थे। भला उस पुरस्कार को किस प्रकार भूल सकती हूं।"

"बहुत स्मरण रखती हो।"

"जी। विस्मरण करना हम कौशाम्बी वालों के स्वभाव में नहीं है।"

"परन्तु अब तो मेरा विचार किसी प्रकार का पुरस्कार देने का नहीं है।" स्कन्द ने पेय के पात्र को हाथ में लिये ही यह कहा।

"ठीक है महाराज ! अब पुरस्कार देने से किसी प्रकार के लाभ की आशा भी तो नहीं की जा सकती। आप इस दौड़ में पिछड़ गये हैं।"

स्कन्द समझ गया कि यह सेविका वत्सला की विश्वस्त सेविका है और इसको भली-भाँति विदित है कि वत्सला उससे विवाह के लिये उत्सुक थी। उसने पेय का गिलास तो वैसे ही रख दिया और उसने सेविका से पूछा, "अच्छा, अब तुम यह बताओ कि जब मैं अपनी जन्म-कुण्डली लेकर समय पर कौशाम्बी नहीं पहुँचा था तो राजकुमारी को प्रसन्नता हुई थी अथवा निराशा ?"

"महाराज ! इसमें तो सन्देह नहीं कि राजकुमारी आपके कुण्डली लेकर लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी।"

"तो फिर उसने यह विवाह स्वीकार क्यों किया ?"

"इसका ठीक-ठीक उत्तर तो राजकुमारी ही दे सकती हैं। मैं उनके मन की बात नहीं बता सकती। किन्तु मेरे हाथ यह पेय भेजकर वे कदाचित् आपको यह सूचित करना चाहती हैं कि उन्होंने मुझे आपसे दुगुना पुरस्कार दिया था।"

"विवाहोपरान्त भी कभी उन्होंने मुझे स्मरण किया है ?"

"सेविका को कौन अपने मन की बात बताता है। यह तो हम सेविका हैं कि अपने स्वामी अथवा स्वामिनी के व्यवहार से सहज ही उनकी मनोवृत्ति का अनुमान लगा लिया करती हैं। अन्यथा न हम उनका रहस्य पूछ सकती हैं और न वे हमें बता ही सकती हैं।"

"ठीक है। तुम्हारी स्वामिनी की बात तो मैं भी नहीं समझ सका तदपि तुम्हारे विषय में मुझे बहुत कुछ ज्ञान हो गया है।"

"श्रीमान् क्या समझ पाये हैं ?"

"तुम बहुत ही चतुर और कार्यकुशल सेविका हो, यह तो मैं कौशाम्बी में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान गया था। तुम्हारी बुद्धिमत्ता का परिचय भी आज मिल गया है।

"अच्छा, यह बताओ, यह सुगन्धित पेय मेरे यहाँ आने पर विशेष रूप से तैयार किया गया है अथवा कि यह नित्य ही तैयार रहता है?"

"सदा तैयार नहीं रहता है। यद्यपि रानीजी का यह विशिष्ट पेय है। आपके पधारने की सूचना भी नहीं मिली थी कि हम रानी और राजकुमार साहब के लिए यह पेय तैयार कर रही थीं। उसी समय आपके आने की सूचना मिली। इसीलिये उसमें से उन्होंने आपके लिए भी भेज दिया है। वे चाहती थीं कि अब आप आये हैं तो राजकुमारजी से मिलकर ही जायें। यही कारण है कि उन्होंने मुझे यहाँ आपकी सेवा में उपस्थित रहने की भी आज्ञा दी है।"

"किन्तु मुझे यह सन्देह है कि इसमें कोई अनिच्छित पदार्थ न मिला हो अतः मैं इसको अकेले नहीं पीना चाहता।"

"अनिच्छित से आपका क्या अभिप्राय है? हमारे यहाँ मद्य का सेवन तो होता ही नहीं।"

"मद्य नहीं, राजाओं के यहाँ तो विष का भी प्रयोग होता रहता है।"

"यहाँ ऐसा भी होता है?"

"मैं समझता हूँ, सभी राजप्रासादों में इसका प्रयोग होता है।"

सेविका भयभीत स्कन्द का मुख देखती रह गई। कुछ क्षणोपरान्त उसने कहा, "महाराज! यह प्रथा हमारे यहाँ नहीं है। यदि आपको किसी प्रकार का सन्देह है तो इसकी परीक्षा की जा सकती है।"

यह कहकर सेविका ने ताली बजाई। उसकी ताली सुनकर वह सेविका आ गई जो स्कन्द को बैठक में बैठाकर गई थी।

सेविका ने कहा, "जाकर एक भाण्ड में और पेय लेकर आओ।"

स्कन्द इस सेविका के व्यवहार को देखकर विस्मय कर रहा था। सेविका गई और कुछ ही क्षण में एक भाण्ड में पेय पदार्थ ले आई। पहली सेविका ने प्याले का पेय उसी भाण्ड में उलट दिया। दोनों को उसने मिलाया और फिर बोली, "अब देखिये, मैं आपके सम्मुख इसमें से पेय लेकर पी रही हूँ।"

सेविका ने भाण्ड से थोड़ा पेय प्याले में उड़ेला और फिर उसको उठाकर पी गई।

वह स्वस्थ रही।

स्कन्द ने कहा, "तुमने परीक्षण करके यह तो सिद्ध कर दिया है कि इसमें विष नहीं था। तदपि मैं इसको अभी भी नहीं पीयूंगा।"

"वह क्यों?"

"सम्भवतया इसका प्रभाव धीरे-धीरे हो। जब तक मैं यह न देख लूँ कि तुम दो घड़ी तक भी जीवित हो तभी यह सिद्ध हो सकता है कि इसमें कुछ ऐसी वस्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली नहीं थी। एक राजकुमार के जीवन के लिए दो सेविकाओं का सरलता से बलिदान किया जा सकता है।"

"इस विषय में मैं तो अब कुछ भी नहीं कह सकती हूँ, परन्तु मुझे तो यही आज्ञा है कि जब तक राजकुमार नहीं आ जाते मैं तब तक आपकी सेवा में रहूँ।"

दोनों कुछ क्षण मौन रहे। फिर कुछ सोचकर सेविका ने कहा, "महाराज, मैंने सुना है कि आपकी पत्नी अपने पुत्र को लेकर कहीं चली गई हैं। क्या यह सत्य है?"

"यह तुम्हें किसने बताया है ?"

"महाराज! हमारे संस्कार आप लोगों के संस्कारों से सर्वथा भिन्न हैं। मैं जब इस राजप्रासाद में आई ही थी तो यहाँ की एक सेविका मुझे मिल गई। हम लोगों को देखकर परिचय बढ़ाने की दृष्टि से उसने मुझसे बात करना आरम्भ कर दिया।

"मैंने उसको अपना परिचय दिया तो उसने यहाँ आये अन्यान्य सभी का परिचय जानना चाहा। मैंने वह भी उसको दिया। उसके बाद मेरी जिज्ञासा बढ़ी तो मैंने भी यहाँ के निवासियों के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। उसमें मैंने आपके तथा आपके परिवार के विषय में पूर्ण परिचय बताने के लिए कहा।

"आपका परिचय देते हुए उसने कहा कि आप कई वर्ष तक राजप्रासाद से बाहर रहे थे। जब आप लौटे तो आपके साथ आपकी पत्नी और पुत्र भी थे। आप के रहने के लिए पृथक् आगार दे दिया गया। आपका पुत्र अन्तःपुर में आता-जाता रहता था। आप कौशाम्बी गये हुए थे कि उन्हीं दिनों आपकी पत्नी आपके पुत्र को लेकर लुप्त हो गई।"

स्कन्दगुप्त चुप रहा। तब सेविका ने सन्देह व्यक्त करते हुए पूछा, "क्या आपकी पत्नी आपके नवीन विवाह की सम्भावना से यहाँ से भाग गई है ?"

स्कन्द मुस्करा दिया। कहने लगा, "तुम तो बहुत ही समझदार और चतुर हो। अब यदि मैंने विवाह किया तो मैं तुम्हारी स्वामिनी से याचना करके तुम्हें अपनी सेवा में नियुक्त कर लूँगा।"

"मेरा क्या है। जो अपनी सेवा में रखेगा अथवा जिसके पास रहने के लिये हमारी रानीजी कहेंगी, मैं उसकी ही सेवा करने लग जाऊँगी।"

तब तक पुरु आ गया। उसके साथ रानी वत्सला भी थी। उन दोनों के आते ही सेविका उठकर जाने लगी। तभी वत्सला की दृष्टि प्याले में पड़े पेय की ओर गई। उसने स्कन्द से पूछा, "क्या बात है, आपने यह पेय पिया नहीं ? क्या स्वादिष्ट नहीं था ?"

इसका उत्तर सेविका ने दिया। वह रानी का प्रश्न सुनकर जाते-जाते रुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थी। उसने कहा, "रानीजी! महाराज समझते थे कि कहीं इसमें विष न मिला हो इसलिये यह पिया नहीं है। यद्यपि मैंने इनका समाधान करने के लिये स्वयं इसको पीकर दिखाया था किन्तु इनको विश्वास नहीं हुआ। इनका कहना था कि इसका प्रभाव दो घड़ी बाद तक भी हो सकता है। इनको सन्देह है कि कहीं इसमें मन्द विष का मिश्रण न किया गया हो।"

पुरु हँस पड़ा। उसने कहा, "अच्छा, ठीक है। तुम इसको ले जाओ। अब महाराज-कुमार हमारे साथ मध्याह्नोत्तर का अल्पाहार करेंगे।"

सेविका ने पेय के बर्तन उठाये और लेकर वहाँ से चली गई।

उसके जाने के उपरान्त पुरु ने कहा, "भैया! वत्सला कहती है कि आप इससे मिलने के लिये यहाँ आये हैं। किन्तु मेरे सामने ही मिलना चाहते हैं। इसलिये मैंने एकान्त भेंट के लिये साथ वाले कक्ष में अल्पाहार की व्यवस्था करने के लिए कहा है। अल्पाहार परोसे जाने पर हम वहाँ चलकर वार्तालाप करेंगे।"

स्कन्द ने बात बदलकर पूछा, "महामात्य से क्या बातचीत हो रही थी?"

"अंगराज के विषय में बातचीत हो रही थी। अंगराज इन दिनों वार्ता के लिये आया हुआ है।

"मैंने महामात्य को कहा है कि वह उन विषयों की एक सूची बनाकर दे दे।

"वस्तुस्थिति यह है कि जिस समय पुष्यमित्रों से युद्ध हो रहा था उस समय अंगराज भागकर बंग देश को चले गये थे। इस अवधि में हमने उनके देश पर अधिकार कर लिया है। अब वे चाहते हैं कि किसी प्रकार की परस्पर सन्धि हो जाए और उनको राज्य वापस मिल जाए।"

स्कन्द बोला, "मैं तो यही उचित समझता हूँ, इस काँटे को सदा-सदा के लिये निकाल दिया जाना चाहिये।"

"मैंने अपनी ओर से अभी कुछ कहा नहीं है। मैंने तो अभी उससे ही पुछवाया है कि वह क्या चाहता है। जब उसकी याचिका आयेगी तब उस समय विचार कर लिया जायेगा। अभी तक तो वही स्थिति है जो विदिशा में थी।"

स्कन्द ने कहा, "सुना है, विदिशा का राजकुमार भी इस महासम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये आ रहा है?"

"यह आपको किसने कहा है?"

"कौशाम्बी-नरेश पाटलिपुत्र आ गये हैं और वे ही यह समाचार लाये हैं। उनका कहना था कि विदुरकुमार दो दिन तक यहाँ पहुँचने वाला है।"

तब तक अल्पाहार लग गया था। सूचना मिलते ही पुरु अपने भाई को लेकर भोजन कक्ष में चला गया।

: ११ :

जब वे लोग अल्पाहार करने लगे तो बात का सिलसिला जारी रखते हुए पुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कहा, "दादा ! अब बोलिये, आप क्या कहना चाहते थे वत्सला से ?"

उस समय वहाँ पर वे केवल तीन ही व्यक्ति थे। सेवकों को बता दिया गया था कि अल्पाहार परोसने के उपरान्त वे लोग तब तक कोई वहाँ न आये जब तक कि किसी को बुलाया न जाए।

स्कन्द ने कहा, "पुरु ! तुम्हें विदित है कि तुम्हारी पत्नी से विवाह से पूर्व मेरा क्या वचन हुआ था ?"

"हाँ भैया ! मैं जानता हूँ। वत्सला ने विवाहोपरान्त वह सब मुझे बताया था। इसने कहा कि तुमको अपनी कुण्डली लेकर राज-ज्योतिषी के पास जाने के लिये कहा गया। यह भी कहा गया था कि यदि दोनों की कुण्डली मिल गई तो विवाह सम्भव होगा अन्यथा नहीं।

"आप कुण्डली लेने के लिये पाटलिपुत्र आये, किन्तु जब पर्याप्त समय तक लौटकर वापस कौशाम्बी नहीं पहुँचे तो ज्योतिषी ने मेरी और इसकी कुण्डली का मिलान किया। उसमें ज्योतिषी ने बताया कि हम दोनों की कुण्डलियों में कुछ ऐसी बात है कि जो आज नहीं परन्तु विवाह के पन्द्रह-सोलह वर्ष उपरान्त विघ्न-कारक सिद्ध हो सकती है।

"ज्योतिषी ने उसके निवारण के लिये एक पूजा विधि बताई है। तब से हम वह पूजा निरन्तर कर रहे हैं।"

"परन्तु पुरु ! मैंने भी उसको अपनी कुण्डली दिखाई थी। उसका कहना था कि यदि हमारा विवाह हो जाए तो एक सौ वर्ष तक जीवन निर्वाध चलेगा।"

"कब दिखाई थी ?"

"दो दिन पूर्व ही दिखाई थी। उसने कहा कि हमारे विवाह का संयोग बहुत ही सुखकारक है।"

"तो आप क्या चाहते हैं ?"

"मैं कुछ ऐसा अनुभव करने लगा हूँ कि किसी व्यक्ति ने मेरी अनुपस्थिति में मेरी अति प्रिय वस्तु उठा ली है।"

"तब ?"

"तब यह कि मैं अपनी वस्तु वापस चाहता हूँ।"

पुरु ने पूछा, "वह ज्योतिषी आपको कहाँ मिला ?"

"वह यहीं पाटलिपुत्र में ही है। कहो तो उसको साक्षी के रूप में उपस्थित कर दूं ?"

"इसकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु भैया ! एक बात है, यह जो रानी वत्सला आपके सम्मुख बैठी है, यह कोई वस्तु नहीं। यह किसी भाण्ड, उपकरण अथवा चौकी, तकिये की भाँति निर्जीव वस्तु नहीं है। यह एक प्राणी है, जिसमें एक आत्मा विराजमान होती है। अतः आत्मवान होने के कारण यह अपने विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्वतन्त्र है। अपने व्यवहार के लिये स्वतन्त्र है।

"जो यह व्यवहार करेगी उसका अच्छा या बुरा फल भी होगा और उस फल को भोगने वाली भी यही है।

"वर्तमान परिस्थिति में मैं वत्सलादेवी को ही इसका निर्णय करने के लिये कहता हूँ। यह इसकी इच्छा है कि मेरे साथ रहना चाहती है अथवा आपके साथ।

"इसमें मेरी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। अतः मैं वत्सला पर ही इसके निर्णय का भार छोड़ता हूँ।"

वत्सला दोनों भाइयों में होने वाले वार्तालाप को सुन रही थी। वह मौन रूप से उस पर विचार करती हुई अल्पाहार कर रही थी।

पुरु की बात समाप्त होते ही स्कन्द कहने लगा, "मैं वत्सला से यही कहना चाहता हूँ कि विधाता ने हम दोनों को एक-दूसरे के लिये बनाया है, इसलिये इनको यही उचित है कि ये मेरे साथ चलकर रहें।"

वत्सला उस समय ग्रास उठाकर मुख में डालने वाली थी कि स्कन्द ने यह बात कही। उसने हाथ का ग्रास मुख में ले जाने की अपेक्षा थाल में वापस रख दिया और बोली, "यदि मैं न जाऊँ तो आप क्या करेंगे?"

स्कन्दगुप्त को वत्सला से इस प्रकार के प्रश्न की आशा नहीं थी। अभी थोड़े समय पूर्व वत्सला की विश्वस्त सेविका ने जो कुछ कहा था और ज्योतिषी ने कुण्डली के आधार पर जो कुछ बताया था, उस परिपेक्ष्य में स्कन्द समझता था कि वत्सला सहज ही स्वीकार कर लेगी।

वह कुछ विचार करने लगा, "करूँगा क्या? कुछ नहीं। हाँ, मैं आजन्म प्रतीक्षा अवश्य करता रहूँगा। मैं आशा करूँगा कि वत्सलादेवी विधाता का विधान पूर्ण करने में ही मेरी और अपनी भलाई को समझकर तदनुसार व्यवहार करें।"

वत्सला ने इसका उत्तर देते हुए कहा, "भैया! मैंने अग्नि को साक्षी मानकर इनको वचन दिया है कि मैं आजीवन इनकी सती-साध्वी पत्नी बनकर रहूँगी। अतः इस जीवन में तो मैं उस व्रत को भंग कर नहीं सकती। अपना व्रत पालन करने के लिये यह जीवनकाल कोई बहुत लम्बा भी नहीं है। उस लम्बे जीवन की तुलना में, जो मैं अपना समझती हूँ, ये सत्तर-अस्सी वर्ष की कुछ भी गणना नहीं है।

"यदि आप उचित समझें तो मेरी एक सम्मति मान लीजिये। कल प्रातःकाल हम आपकी माताजी के समक्ष मिलें और उस समय मैं उनके सम्मुख आपको अपना बड़ा भाई स्वीकार कर आपके हाथ में राखी बाँध दूँगी। वह बन्धन भी केवल इसी जीवन के लिये होगा। यह उसी प्रकार होगा जिस प्रकार इस जीवन के लिये मैंने अग्नि के सम्मुख इनकी निष्ठावान पत्नी बनने का संकल्प लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं अपना वचन भंग नहीं करूँगी।"

"इसका तो यह अभिप्राय हुआ कि देवी विधाता के विधान का भी उल्लंघन करेंगी। आप अपने वचन को परमात्मा के विधान से भी प्रबल मानती हैं।"

"जी हाँ। यह उस विधाता ने ही स्वतन्त्रता प्रदान की हुई है कि हम अपने-अपने कर्म में स्वतन्त्र हैं। फल तो मनुष्य को उसके कर्म का ही मिलता है। इसको भी वह रोक नहीं सकता।

"वचन पालन करना मेरा कर्म और कर्तव्य है। मैं अपने उस कर्म का फल भी चाहती हूँ। यदि इसमें विधि के किसी विधान को मैंने भंग किया है तो इसका उत्तरदायित्व उस पर ही है, मुझ पर नहीं। मैंने आपसे तो यही कहा था कि आप की और मेरी कुण्डली का मिलान हो जायेगा तो हम दोनों का परस्पर विवाह हो सकता है। समय पर यह मिलान हुआ नहीं।

"एक बात यह भी कि मिलान करने में भी बाधा उत्पन्न हो गई। मैं समझती हूँ कि यह भी परमात्मा का ही विधान था। यदि ऐसा न होता तो युद्ध आरम्भ होने में कुछ दिन का विलम्ब हो जाता और आप अपनी कुण्डली लेकर ज्योतिषी के पास समय पर पहुँच जाते।

"भैया! अब आप इसे परमात्मा का विधान मानकर स्वीकार कर लीजिये। यही ठीक भी है। मैं परमात्मा को साक्षी मानकर वचन दे चुकी हूँ। उसको भंग करना महापाप होगा।"

पुरु इस पूर्ण वार्तालाप में चुप रहा।

वत्सला की बात का उत्तर देते हुए स्कन्द ने कहा, "ठीक है। कल मैं और माताजी इस आगार में आयेंगे। उनके सम्मुख तुम रक्षाबन्धन करना और वे हमें आशीर्वाद दे जायेंगी।"

यों इस समय यह वार्तालाप समाप्त हो गया। उसके बाद तीनों चुपचाप अल्पाहार करते रहे।

पुरु की आँखों से आँसू टपक रहे थे, इस ओर उन दोनों में से किसी का ध्यान नहीं गया। जब तीनों अल्पाहार कर चुके तो तीनों ने थाल पर से अपने मुख उठाकर ऊपर किये।

स्कन्द की दृष्टि पुरु पर पड़ी। उसे उस अवस्था में देख उसने पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

"भैया! ये प्रसन्नता के आँसू हैं। मैं अपने भाग्य की श्रेष्ठता पर प्रसन्न हो रहा हूँ। आज के उपरान्त मैं यह अनुभव करूँगा कि मानो कृपांक देकर मुझको परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया है।"

दोनों भाइयों ने हाथ धोये और फिर साथ ही दोनों भोजनालय से बाहर निकल आये। वत्सला उनको जाते हुए देख रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन ही नरेशों का सम्मेलन आरम्भ होने वाला था।

सम्मेलन से पूर्व स्कन्द अपनी माता को लेकर पुरु के आगार में गया और वहाँ पर अपनी माता के सम्मुख वत्सला से रक्षाबन्धन करवा, उसने उसके गले में एक रत्नजटित माला डाल दी और उन दोनों को महारानी ने आशीर्वाद दे दिया।

राजप्रासाद के सभा-भवन में नरेशों की भीड़ एकत्रित थी। सभी नरेश अपने सेनापतियों तथा उच्चाधिकारियों के साथ वहाँ उपस्थित थे। वहाँ पर आनन्द वैरागी का ओजस्वी भाषण हुआ। उसने हूणों की ओर से होने वाले आक्रमण की विस्तार से चर्चा की। उनकी युद्ध-कला का वर्णन किया और उससे किस प्रकार बचा जा सकता है, उसका उपाय सुझाया और अन्त में उसने कहा कि उचित यही है कि भारत की सीमा में प्रविष्ट होने से पूर्व ही उनको पराजित कर दिया जाए।

इसके बाद स्कन्द ने अपनी बात कही और फिर अन्त में उसने सबके सम्मुख शपथ ली कि इस युद्ध में हूणों को पराजित करने के उपरान्त ही वह अपना राज्याभिषेक करायेगा।

इस प्रकार उस दिन का सम्मेलन समाप्त हुआ। सभी नरेश अपने-अपने खेमे में जाकर अपने-अपने सेनापतियों से विचार-विमर्श करने लगे कि इस युद्ध के लिये वे कितनी-कितनी सेना भेज सकते हैं।

दूसरे दिन निर्धारित समय पर पुनः सम्मेलन आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन में प्रत्येक नरेश ने अपनी ओर से दी जाने वाली सेना तथा आर्थिक सहयोग आदि-आदि का उल्लेख किया। सबकी ओर से सहयोग का आश्वासन प्राप्त हो जाने पर युद्ध के संचालन के लिए एक केन्द्रीय समिति गठित कर दी गई।

स्कन्दकुमार को उस केन्द्रीय युद्ध समिति का अध्यक्ष बनाया गया। उस दिन से ही उस समिति ने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी।

स्कन्द नरेशों के सम्मेलन में व्यस्त रहा। उधर दूसरी ओर पुरु साम्राज्य के विशाल सूत्रों को हस्तगत करने में लगा रहा। इस अवधि में स्कन्द की माता वत्सला से अपना मेल-जोल बढ़ाने का यत्न करती रही।

इस सम्मेलन के एक मास के भीतर ही समस्त भारत से सेनायें एकत्रित हो कर देश की सीमा की ओर प्रस्थान करने लगीं। स्कन्द पाटलिपुत्र से प्रस्थान करने वाला था कि उसी दिन उसकी माँ ने उसको सूचना दी कि पुरु की पत्नी गर्भवती है।

स्कन्द ने प्रसन्नता से पूछा, "सत्य माँ ?"

"हाँ।"

"फिर तो शीघ्र ही राजप्रासाद में चहल-पहल होने की आशा बलवती हो गई है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे तुम्हारे बच्चे के लुप्त हो जाने का बड़ा दुःख है।"

"सत्य ?"

"तो क्या मैं तुम्हारे सामने झूठ बोलूँगी !"

"परन्तु माँ ! एक बात तो तुम असत्य बोल ही रही हो।"

"कौन-सी बात असत्य कही मैंने ?"

"तुम स्वयं ही समझ लो। मैं अपने मुख से क्या कहूँ। हाँ, इतना मैं बता सकता हूँ कि तुम्हारे पोते के विषय में मुझे सबकुछ ज्ञान हो गया है।"

"कहाँ है वह ?"

"यह तुम पण्डित शिवकुमारजी से पता कर लेना। वे सबकुछ ठीक-ठीक बता देंगे। कश्मीर जाने से पूर्व उन्होंने मुझे सबकुछ बता दिया था।"

"जाने से पूर्व वे मिले तो मुझसे भी थे, किन्तु मुझे तो उन्होंने कुछ बताया नहीं ?"

"उसका कारण यह है कि वे हमारे इस संसार को तुच्छ समझकर यह स्थान सदा के लिये छोड़ गये हैं। जाते समय उन्होंने कहा था कि वे तो पुष्यमित्रों के परिवार वालों से युद्ध से पूर्व ही इस पाप की नगरी को छोड़ना चाहते थे, परन्तु फिर भी इस पंक में रहते हुए भी वे अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि के कल्याण के कार्य को अपूर्ण छोड़कर जाना नहीं चाहते थे।

"युद्ध समाप्त होते ही वे कश्मीर चले गये हैं। जाते समय वे मुझसे कह गये हैं कि इस पापमयी नगरी में वे अब पुनः कभी पग नहीं रखेंगे।"

"स्कन्द ! तुम कह क्या रहे हो ! मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ ?"

"माँ ! समय तुमको सब समझा देगा। एकान्त में बैठकर अपने जीवन-कार्यों का अवलोकन करोगी तो सबकुछ तुम्हें स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। तब तुम समझ जाओगी।

"अब तो मैं दो-तीन वर्ष के लिये पाटलिपुत्र से जा रहा हूँ। आज से भी यदि तुम अपनी मनोवृत्ति पर नियन्त्रण रखकर सज्जनता का जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दोगी तो सुख पाओगी अन्यथा भगवान् ही हम सबका रक्षक है।"

पद्मावती यह सब सुनकर स्तब्ध उसका मुख देखती रही।

उसी दिन स्कन्दगुप्त अपनी सेना लेकर सीमा की ओर प्रस्थान कर गया। उस समय उसके साथ केवल सौ शूरवीर थे, सेना तो उससे पूर्व ही वहाँ से कूच कर गई थी।

स्कन्द के जाने के दूसरे दिन ही राजमाता वत्सला से मिलने के लिये आई। सेविका ने उसको आदर से बैठकघर में बैठाया और बोली, "राजकुमार और देवी दोनों ही भीतर हैं। मैं उनको आपके आने की सूचना दे देती हूँ। आप तब तक बैठिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेविका ने दूसरी सेविका के द्वारा भीतर सूचना भिजवा दी, किन्तु वह स्वयं वहीं रही।

इस बीच राजमाता सेविका से उसके परिवार और बच्चों के विषय में पूछती रही थी।

सूचना देने वाली सेविका भीतर जाकर सूचना दे आई और वत्सला के कहने पर उसने राजमाता को शीतल पेय बना दिया। जब वह शीतल पेय लेकर गई तो राजमाता ने पूछा, "तुमने मेरे आने की सूचना दी?"

"जी हाँ।"

"रानीजी तब क्या कर रही थीं?"

"महाराज की सेवा में थीं।"

"इस समय कैसी सेवा?"

"महाराज उच्चासन पर बैठे थे और रानीजी उनके पैर दबा रही थीं। मेरे आवाज देने पर उन्होंने मुझे भीतर बुला लिया। मैंने आपके आने की सूचना दी तो उन्होंने कहा कि मैं तब तक आपको शीतल पेय दूं. वे अपने पति की सेवा से निवृत्त होकर तुरन्त आती हैं।"

"तुम लोग बिना रोक-टोक अन्तःपुर में चले जाते हो?"

"महारानीजी की हम पर कृपा रहती है। और उनका जीवन भी बड़ा प्रेम-मय और सुखद है।"

"कभी ईश्वराधना भी करती हो?"

"जी माताजी! नित्य प्रातःकाल मैं भगवद्-भजन करती हूँ।"

पद्मावती ने अनुभव किया कि वत्सला की दोनों ही सेविकायें एक से एक अधिकर चतुर है।

पद्मावती कहने लगी, "मैं तो इस समय इस कारण आयी थी कि तुम्हारे राजकुमार राज-कार्य पर होंगे। अतः मैं वत्सला का सुख-समाचार जानने के लिए आ गयी थी।"

"माताजी! बस, वे आती ही होंगी। राजा साहब प्रातःकाल सेना का निरीक्षण करने के लिए गये हुए थे। वहाँ उनको अधिक पदयात्रा करनी पड़ी होगी। इस कारण वे अपनी थकावट मिटा रहे हैं और रानीजी इसमें उनकी सहायता कर रही हैं। बस, अब तो वे आने ही वाली होंगी।"

"ठीक है, मैं प्रतीक्षा में बैठी हूँ। तुम दोनों की बातें भी बड़ी रोचक हैं।"

इसका दोनों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पद्मावती ने भगवती से पूछा, "तुम कुछ पढ़ी-लिखी भी हो?"

"जी, मैं कौशाम्बी के वृहद् विश्वविद्यालय की स्नातिका हूँ। जिस समय मैं उस विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण कर उत्तीर्ण हो निकली थी उस समय राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारीजी विद्यालय की छोटी श्रेणियों में पढ़ा करती थीं। मैं तब से ही राजकुमारीजी से स्नेह करने लगी थी। राजकुमारजी की माताजी को जब मेरे स्नेह का ज्ञान हुआ तो उन्होंने मुझे अपनी सेवा में नियुक्त कर लिया था।

"राजकुमारीजी अपनी शिक्षा पूर्ण कर विश्वविद्यालय से घर पर आयीं तो तब उन्होंने मुझे उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया था।

"यह नीला तो राजकुमारीजी की सहपाठिनी रह चुकी है।"

उनकी बातें चल रही थीं कि उसी समय वत्सला वहाँ आ गयी। उसने आते ही राजमाता के चरणस्पर्श किये। पद्मावती ने उसको आशीर्वाद दिया।

"तुम्हारी सेविकाओं से मैं तुम्हारे विषय में ही पूछ रही थी।"

"क्या कहती हैं ये ?"

"बहुत कुछ कहा है। यह तुम इनसे ही पूछ लेना। मैं तो यह कहने के लिए आयी थी कि पुरु जब राज-कार्य के लिए चला जाए तो तुम मेरे पास आ जाया करो। वहाँ मन बहल जाया करेगा।"

"माताजी, मेरा मन कभी उचाट नहीं होता। वह यहाँ भी बहलता ही रहता है। ये भगवती और नीला विदुषी महिलायें हैं। इनके साथ समय-समय पर साहित्य-चर्चा भी होती रहती है। यदि आप यहाँ आने का कष्ट करें तो मैं समझती हूँ कि आपको उस चर्चा में हम सम्मिलित कर लेंगी। उससे हमको लाभ होगा और आपका मन बहल जायेगा।"

पद्मावती मुस्करा दी और फिर कहने लगी, "यह नीला कह रही थी कि जब यह परमात्मा की पूजा कर रही होती है और जब यह अपने पति की सेवा में संलग्न होती है, उन दोनों अवस्थाओं में इसके मन में एक जैसी अनुभूति रहती है। यह उन दोनों अवस्थाओं को समान ही पाती है।

"इसका कहना था कि उन दोनों समय पर यह अपने शरीर का विस्मरण कर आत्मा में आत्मा को लीन कर देती है और इसलिए समान सुख का अनुभव करती है।"

वत्सला बोली, "माताजी! इसकी अनुभूति अति श्रेष्ठ है। हाँ, भक्ति जहाँ उत्कृष्ट होती है वहाँ इस प्रकार की अनुभूति का होना स्वाभाविक ही है। उस अवस्था में आत्मा शरीर की पुकार और पहुँच से बहुत दूर चली जाती है।"

"तो यह बात है!" पद्मावती ने हँसते हुए कहा, "नीला ने बताया कि कभी-कभी यह अन्तःपुर में उस समय भी चली जाती है जब पुरु तुम्हारी संगति में होता है। इसका कहना था कि यह उस समय भी ऐसा ही अनुभव करती है मानो कि तुम ईश्वर-भक्ति में लीन हो।"

यह सुन वत्सला को हँसी आ गयी। वह बोली, "अच्छा, ऐसी बात भी इसने आपको बता दी है। एक दिन ऐसी घटना हो गयी थी। उस समय गर्मी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक पड़ रही थी। राजकुमार कहने लगे कि यदि शीतल पेय पीने को मिले तो कुछ उतावली कम हो जायेगी।

"यह सुनकर मैंने ताली बजा दी। नीला शयनागार के बाहर ही बैठी थी। यह तुरन्त भीतर आ गयी। मैंने इसको कह दिया कि यह तुरन्त दो प्याले शीतल सुगन्धित पेय ले आये।

"न जाने क्या हुआ कि मैं इसको कहकर भूल गयी। जब यह पेय लेकर आयी तो हम दोनों पति-पत्नी प्रेमरत थे।

"उस समय यह पेय रखकर चली गयी। किन्तु दूसरे दिन इसने मुझसे पूछा कि हम दोनों को उस अवस्था में इसके द्वारा देख लिये जाने पर मुझे कैसा लगा था। मैंने कह दिया कि मैं तो उस समय अपने प्रभु में विलीन थी। मैं अपने शरीर को विस्मरण कर आत्मा के संयोग की अवस्था में अनुभव कर रही थी।"

पद्मावती विषय बदलकर बोली, "इसका अभिप्राय यह है कि तुम लोगों की इसी प्रकार की साहित्य गोष्ठी होती होगी ?"

"जी नहीं। यदि आपको जाने की त्वरा न हो तो हम अपनी गोष्ठी आरम्भ करते हैं। भगवती आपको कुछ पढ़कर सुनायेगी। फिर उस पर चर्चा होगी।"

"क्या सुनायेगी ?"

"आजकल बाबा के नवरत्नों में से एक रत्न की अनुपम कृति 'मेघदूत' का पाठ किया जा रहा है। यदि आपकी रुचि हो तो उसे आरम्भ करें ?"

"तुम्हें उसके ग्रन्थों में रुचि रहती है ?"

"क्यों, वे रुचिकर नहीं हैं ? आप सुनकर देखिये तो सही। कदाचित् आपकी रुचि भी बन जाए।"

"ठीक है। रुचि न भी बनी तो मेरी इच्छा तुम्हारी संगति में रहने की थी, वह तो मिल ही रही है।"

पद्मावती की स्वीकृति मिलने पर गोष्ठी की तैयारी होने लगी।

: १२ :

वत्सला ने भगवती को कहा, "क्यों, कुछ विलम्ब है ?"

भगवती उठती हुई बोली, "जी नहीं। मैं अभी पुस्तक लेकर आ रही हूँ।"

कुछ ही क्षणों में वह दूसरे आगार से कौशेय वस्त्र में लिपटी एक पुस्तक उठा लाई।

भगवती यथास्थान बैठी और पुस्तक खोलकर पढ़ने लगी—

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पमासं
खद्योतालीविलसितनिभां विन्दुन्मेषदृष्टिम्॥
तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकित हरिणीप्रेक्षणा निम्नकामिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु: ।।

भगवती पढ़ती जाती थी और मन में उसका भाव विचार करती हुई मुस्करा रही थी। पद्मावती उसका पढ़ना और मुस्कराना देख रही थी।

भगवती ने जब दोनों श्लोक पूर्ण कर गर्दन ऊँची की तो पद्मावती ने उससे पूछा, "पढ़ते हुए मुस्करा किसलिये रही थीं ?"

भगवती बोली, "माताजी ! कवि ने आदर्श सुन्दरी का चित्रण किया है।। यद्यपि उसके विषय में यह विख्यात था कि वह आजीवन अविवाहित ही रहा था मेरे मुस्कराने का कारण यह था कि कवि के द्वारा नारी का यह सुन्दर चित्रण उसकी कल्पना की ही उड़ान हो सकती है। उसने किसी रूपवती को इस प्रकार की अवस्था में देखकर उसका चित्रण किया हो, ऐसा नहीं लगता।"

"परन्तु उसने कोई ऐसी सुन्दरी देखी होगी तभी तो उसकी कल्पना कर सका होगा। और यह भी तो असम्भव ही है कि एक ही सुन्दरी में उसने यह सब देख लिया हो। किसी एक स्त्री में इतने सब लक्षण एक साथ ही होना सम्भव नहीं है।

"ऐसा लगता है कि उसने अनेक स्त्रियों के सौन्दर्य को परखकर उसका एक स्त्री में समावेश करके उसका चित्रण कर दिया है।" यह कहकर पद्मावती भी मुस्करा पड़ी।

"परन्तु मैं तो इन सब लक्षणों से युक्त स्त्री को देख चुकी हूँ।"

"कहाँ देखी तुमने ?"

"यदि रानीजी आज्ञा दें तो मैं उसका नाम भी बता सकती हूँ।"

वत्सला यह सुनकर मुस्करा दी। उसने कुछ कहा नहीं। पद्मावती की उत्सुकता बढ़ रही थी। उसने वत्सला से कहा, "क्यों वत्सला ! आज्ञा क्यों नहीं देतीं ? हम भी तो उस स्वर्णिम अप्सरा का नाम सुनकर अपने कानों को तृप्त कर लें।"

वत्सला बोली, "माताजी ! नाम जान लेने से क्या होगा ?"

"सुन्दर वस्तु को देखकर जो मन में होता है वह मेरे मन में भी होगा।

"सुन्दर स्थान देखकर वहाँ निवास की इच्छा होती है। स्वादिष्ट भोजन देखकर उसे खाने की इच्छा होती है। सुगन्धित पुष्प को सूँघने की इच्छा होती है...।"

"परन्तु माताजी ! एक सुन्दर स्त्री को देखकर दूसरी स्त्री के मन में क्या भाव उठ सकते हैं ?" भगवती ने बीच में ही पद्मावती को रोककर पूछ लिया था।

तभी नीला बोल पड़ी। उसने कहा, "पुरुष यदि किसी स्त्री को देखे तो वह उसके भोग की इच्छा करने लगेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वत्सला ने पूछा, "और स्त्री ही स्त्री को देखे तो ?"

"तो जल-भुनकर उससे ईर्ष्या करने लगती है।"

भगवती ने कहा, "परन्तु वह देखने वाली स्त्री भी यदि स्वयं सुन्दर हो तो दूसरी सुन्दरी के कुरूप हो जाने की इच्छा करेगी।"

"मैंने भी तो यही कहा है। मैंने इसको ईर्ष्या का नाम दिया था। तुमने इसको दूसरी प्रकार कह दिया है।"

उन दोनों का विवाद समाप्त करती हुई पद्मावती ने कहा, "मैं समझती हूँ कि तुम दोनों को ही इसका अनुभव नहीं है। वास्तव में तो सुन्दर स्त्री दूसरी सुन्दर स्त्री को देखकर प्रसन्नता और उल्लास का अनुभव करेगी।

"हाँ, यदि कोई असुन्दर स्त्री देखेगी तो वह उसे उसी प्रकार देखेगी जैसे कोई किसी सुन्दर स्थल को देखकर अनुभव करता है। यदि स्थान सुन्दर हो तो उसे बार-बार देखने को मन करता है, अथवा वहीं बैठे रहने को मन करता है।"

"परन्तु माताजी! यदि देखने वाला यौवन पार कर चुका हो तो उसके मन में अपने अतीत सौन्दर्य पर क्षोभ और दुःख होगा। तब वह या तो अपना माथा फोड़ लेगी या सामने खड़ी सुन्दरी की हत्या कर देगी।"

यह नीला की धारणा थी।

पद्मावती ने प्रश्न किया, "किन्तु क्यों ?"

"इसलिए कि उसका कुछ खो गया है और उसे पुनः प्राप्त करने की आशा भी नहीं रही। अतः वही वस्तु किसी अन्य के पास देखकर उसे ईर्ष्या होगी, उसका दुःख होगा।"

"मैं समझती हूँ कि तुम यह किसी मूर्ख स्त्री की कल्पना कर रही हो। मैं तुमको अपने जीवन की एक घटना सुनाती हूँ। मैं सामान्य सैनिक की पुत्री हूँ। परन्तु परमात्मा ने मुझे रूप-लावण्य दिया था। मगध-नरेश की मुझ पर दृष्टि पड़ी तो वे मुझे अपने मन से नहीं निकाल पाये। उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मुझे प्राप्त कर लिया। फिर मैं महारानी-पद पर भी आसीन हो गयी। मैं सदा महाराज की प्रिय रही। परन्तु दो सन्तान को जन्म देने के उपरान्त मेरा सौन्दर्य क्षीण होने लगा।

"उस स्थिति में एक दिन महाराज ने कहा कि जब उनको मेरा वह पहले का सौन्दर्य स्मरण हो आता है तो उनको मुझे देखकर रोना आता है। उन्हें मेरी तब की स्मृति दुःख देने लगती है।

"मैंने उस दिन उनसे कहा कि मैं उनके लिये कोई वैसी ही दूसरी स्त्री ढूँढ़ देती हूँ।

"उन्होंने मुझसे पूछा, 'कहाँ है वह ?'

"मैंने कहा 'मेरी दासी है।' वह दासी रूप में तो मुझसे कुछ अधिक ही थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु रंग में कुछ कम थी।

"यह सुनकर महाराज कहने लगे कि वे तो समझते हैं कि मेरे निर्माण के बाद विधाता बूढ़ा हो गया है और फिर वह ऐसी कोई अन्य स्त्री नहीं रच सका।

"मैंने उनसे कहा कि यदि वे चाहें तो उस रात को ही उनको उस सुन्दरी के दर्शन करा सकती हूँ। किन्तु यह सम्भव है कि वह उनकी भोग्या बनना स्वीकार न करे।

"महाराज ने मुझसे पूछा कि क्या वह विवाहिता है ?

"मैंने कह दिया, नहीं, विवाहिता नहीं है। वह किसी कुमार की प्रतीक्षा कर रही है।

"उस समय महाराज की आयु चालीस वर्ष की थी। उन्होंने कहा कि मैं उन्हें वह स्त्री दिखा दूँ। उन्होंने यह भी कहा कि मैं उनको यह यत्न करने दूँ कि वे उसको अपने अन्तःपुर में ला सकें।

"मैंने उस कुमारी को आश्वासन दिया कि उस पर बलात्कार नहीं होगा। इस प्रकार उसको आश्वस्त कर मैं रात्रि के समय उसको अपने शयनागार में ले आयी और महाराज को दिखा दिया। महाराज ने स्वीकार किया कि उसका सौन्दर्य मेरी अपेक्षा अधिक ही है, कम नहीं। उनका यह भी कहना था कि रंग में जो कमी है वह रूप-लावण्य से आवृत्त हो गयी है।

"महाराज ने उसको अपनी शय्या पर आने की प्रेरणा देना आरम्भ कर दिया। महाराज तो उसको पटरानी बनाने के लिए भी तैयार हो गये थे, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया।

"महाराज ने यथाशक्ति यत्न किया, किन्तु असफल रहे। वह महाराज को अतृप्त ही छोड़कर शयनागार से निकल गयी।"

नीला ने पूछा, "उस रात्रि के उपरान्त आप उस कुमारी से फिर कभी मिली हैं ?"

"हाँ, महाराज की इच्छा पर, उनकी कामना की पूर्ति के लिए मैं उसको निरन्तर प्रेरित करने का यत्न करती रही, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। बाद में उसका एक सेनानायक से विवाह हो गया। आज से दस वर्ष पूर्व विदिशा से जब युद्ध हुआ था तो उसमें वह नायक वीरगति को प्राप्त हुआ। अब वह स्त्री विधवा के रूप में उसके गाँव में ही रहती है।"

वत्सला के मुख से निकल गया, "कहाँ है वह ? उस सुन्दरी के दर्शन करने चाहिये।"

"दर्शन तो हो सकते हैं, परन्तु अब वह अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन नहीं करती। वह उसे तुच्छ मानती है।"

भगवती बोली, "माताजी ! वह तुच्छ माने, परन्तु उसमें जो सौन्दर्य है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके तो दर्शन हो ही जायेंगे।"

"यदि तुम लोगों की यही अभिलाषा है तो मैं उसको बुला देती हूँ। मेरे निमन्त्रण पर वह आ जायेगी। महाराज के निधन का समाचार सुनकर वह मुझसे संवेदना व्यक्त करने के लिए आयी थी।"

वत्सला बोली, "निश्चय ही वह दर्शनीय है। उस देवी के दर्शन करने चाहिये।"

पद्मावती बोली, "उसके दर्शन तो हो जायेंगे, परन्तु मैं तो उस सुन्दरी के दर्शनों की बात कर रही हूँ जो कवि कालिदास की कल्पना द्वारा रचित सुन्दरी के समान है।"

भगवती ने पुनः उसी प्रकार मुस्कराते हुए कह दिया, "हाँ, यदि रानीजी आज्ञा दें तो उसके भी दर्शन हो सकते हैं।"

वत्सला ने भगवती को ताड़ना देते हुए कहा, "भगवती! बिना उसकी रुचि जाने तुम यह कैसे कह सकती हो?"

"उसकी तो स्वीकृति है; परन्तु उसकी एक शर्त रहती है। वही शर्त इस समय भी है।"

"क्या शर्त है?" पद्मावती ने प्रश्न किया।

"वह केवल उसी स्त्री के सम्मुख नग्न हो सकती है जो स्वयं नग्न होकर उसे देखना चाहे।"

"ऐसा क्यों?"

"वह समझती है, इस प्रकार सुन्दर वस्तु को देखने वाली का अपना अभिमान चूर होता है। उसकी दृष्टि में शरीर का सौन्दर्य बहुत ही निम्नकोटि का सौन्दर्य है। अपने से कम सुन्दर वस्तुओं को देखकर उसके मन में विवेक उत्पन्न होता है।"

पद्मावती इस विवेचन को समझ नहीं पाई। वह टुकर-टुकर भगवती का मुख देखने लगी।

वत्सला ने कहा, "यह विचार करना तो उसके अपने लाभ-हानि के कारण है। माताजी को इसमें क्या हानि हो सकती है।"

"हाँ, मुझे देखने वाली यदि वह अकेली हो तो।" पद्मावती ने अपनी बात बताई।

"यह तो उससे पूछकर ही कहा जा सकता है।"

"परन्तु यदि उसने कह दिया कि उसके पति के सम्मुख अपने शरीर का निरीक्षण कराऊँगी तो फिर यह किस प्रकार सम्भव हो पायेगा?" पद्मावती ने आशंका व्यक्त की।

भगवती ने कहा, "माताजी! इसकी सम्भावना नहीं है। वह तो अविवाहिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह बहुत ही सरल स्वभाव की है।"

"फिर तो वह चमत्कार तुम दिखा ही दो।"

वत्सला बोली, "ठीक है। आप लोग मेरे शयनागार में चलिये। आप होंगी, भगवती होगी और वह स्त्री होगी।"

"मुझे स्वीकार है।"

इस प्रकार तय होने पर जब तीनों उठकर वत्सला के शयनागार को गयीं तो नीला भी वहाँ से उठकर अपने आगार को चली गयी।

नीला उनको जाती देखकर मुस्करा रही थी।

इसके एक घड़ी के उपरान्त तीनों महिलायें वत्सला के शयनागार से निकल-कर आईं। तीनों के मुख पर गम्भीरता थी। बैठक में पहुँचकर पद्मावती ने भगवती से कहा, "तनिक एक बार फिर कालिदास की उस कल्पना को तो पढ़ो।"

भगवती ने पुनः मेघदूत का वह पृष्ठ खोला और पढ़ दिया।

भगवती का श्लोक पूरा नहीं हो पाया था कि उसी समय नीला हाथ में वीणा लेकर वहाँ उपस्थित हो गयी। उसे देख तीनों ही हँस पड़ीं।

पद्मावती के मुख से अकस्मात् निकल गया, "तो तुम यह विद्या भी जानती हो?"

"हाँ माताजी! इसे भी सुन लीजिये। जहाँ मेरा नग्न शरीर देखा है वहाँ मेरा नग्न हृदय भी देख लीजिये।"

"तुम्हारा हृदय इस वीणा में बन्द है?"

"इस काष्ठ के पिंजरे में तो वह बन्द हो नहीं सकता। हाँ, इसके स्वरों में है। परन्तु वे स्वर इस काष्ठ के तारों के प्रतीक नहीं हैं। इसमें कारण तो बनाने वाली का हृदय है। बिना उसके इसमें स्वर नहीं निकलते।"

नीला बैठ गयी। अपनी रानी की ओर से मौन स्वीकृति पाकर उसने वीणा-वादन आरम्भ किया।

वहाँ बैठकर पद्मावती अब अनुभव करने लगी थी कि उसने तो अपना जीवन यों ही व्यर्थ गँवा दिया है। एक विशाल साम्राज्य के स्वामी की पत्नी होते हुए भी वह फूहड़ दास-दासियों के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होती रही।

नीला ने कोई गीत नहीं गाया। केवल वीणा पर धुन बजाती रही। सभी श्रोता महिलायें मन्त्रमुग्ध-सी उसका वादन सुनती रहीं।

नीला ने दो घड़ी वीणा-वादन किया। तब तक दिन का तृतीय प्रहर हो गया था। सायंकाल के अल्पाहार का समय हो गया था।

अल्पाहार का प्रबन्ध किया गया। अल्पाहार के समय नीला और भगवती भी उनके साथ ही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मावती नीला के गुणों की प्रशंसा करती हुई कहने लगी, "तुम्हारी यह दासी...।"

"माताजी! दासी नहीं, ये दोनों मेरी सखियाँ हैं। विद्यालय में अध्ययन के दिनों से ही हममें सखी-भाव है। तब से ही हम एकसाथ रह रहे हैं। मैं इनसे दूर नहीं रह सकती।"

"परन्तु वेतन तो पाती ही होंगी?"

"क्या इन्होंने आपको बताया है कि इनको कितना वेतन मिलता है?"

यह सुन पद्मावती परेशानी अनुभव करने लगी। उसने भगवती की ओर देखा। भगवती और नीला दोनों ही अल्पाहार करने में मग्न थीं।

पद्मावती ने जब देखा कि भगवती उसकी ओर नहीं देख रही है तो उसने उससे ही पूछा, "भगवती! यहाँ तुम्हें कितना वेतन मिल जाता है? अथवा तुमको यहाँ क्या मिल जाता है?"

"माताजी! राजकुमारीजी को जो ठीक लगता है वह ये दे देती हैं। उस भेंट से मेरे घर पर मेरे बच्चों का पालन-पोषण हो जाता है। कुछ ये उनकी दादीजी को भी भेजती रहती हैं। इन्होंने किसको क्या भेजा, यह मैंने कभी पूछा नहीं। बच्चों ने अथवा उनकी दादी ने भी कभी नहीं कहा कि उनको किसी वस्तु का कभी अभाव रहा है।"

"कुछ अपनी वृद्धावस्था के लिए भी जोड़ रही हो अथवा कि नहीं?"

भगवती ने पद्मावती से प्रतिप्रश्न कर दिया, "आप कहाँ जमा करके रखती हैं?"

"मेरी बात दूसरी है। मैं तो सदा पूर्ण साम्राज्य के कोष को ही अपना भोग्य मानती हूँ। मेरा आगार भी इस साम्राज्य का एक अंश ही है।"

"जी हाँ, वह तो है ही। मैं भी कुछ ऐसा ही अनुभव करती हूँ। मैं राजकुमार-जी के पूर्ण जीवन का ही स्वयं को एक अंग मानती हूँ।"

"मुझे विस्मय होता है कि तुम जैसी सुन्दरी का भोग किये बिना ही पुरु तुम लोगों को अपने शयनागार में छोड़ देता है।"

"उसका भी कारण है। वे समझते हैं कि जितना उनके भाग्य में है उस पर सन्तोष करना चाहिये। उससे अधिक की लालसा हानिकर सिद्ध हो सकती है।"

"यह राजाओं में महान् अवगुण हैं। कोई भी राजा अथवा राज्य अपने स्वत्व पर सन्तोष करने लगेगा तो वह स्थिर नहीं रह पायेगा।" पद्मावती ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

वत्सला बोली, "विवाह से पूर्व मेरी इस विषय पर उनसे चर्चा हुई थी। जब आपके सुपुत्र यह कहकर कौशाम्बी से चले आये कि वे अपनी माताजी से अपनी कुण्डली लेने जा रहे हैं और जब वे कुण्डली लेकर यथासमय नहीं लौटे तो मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताजी ने कहा कि जो हाथ में है उसे किसी दूरस्थ अथवा अनिश्चित की आशा में नहीं छोड़ना चाहिये।

"उस समय मैंने उनसे वार्तालाप करने की इच्छा व्यक्त की। हम दोनों को वार्तालाप का अवसर दिया गया। मैंने उस समय उनको यही कहा कि मैं उनको अपना प्रथम और सर्वोत्तम चुनाव नहीं मानती। वे उससे किंचिन्मात्र कम ही हैं।

"उनका कहना था कि जो प्रथम चुनाव है वह केवल मुझसे इतना ही अधिक है कि वह युवराज है, इससे उसका पलड़ा कुछ भारी है।

"मैंने उनसे कहा कि मैं युवराज की ओर उस समय आकर्षित हुई थी जब मैं यह जानती भी नहीं थी कि वे मगध सम्राट के बड़े पुत्र हैं। अतः मेरा वह आकर्षण साम्राज्य के भावी उत्तराधिकारी होने के कारण नहीं था।

"उन्होंने कहा, यह उसकी सुन्दर रूपरेखा तथा शारीरिक आकर्षण के कारण होगा। इससे मन की श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता का ज्ञान नहीं होता। उसके मन की अस्वस्थता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण तो उसका एक अनपढ़ ग्रामीण स्त्री से विवाह करके मिल गया है। वह कभी श्रेष्ठ पति नहीं सिद्ध हो सकता।

"तदपि मैं किसी वस्तु का प्रार्थी हूँ। उसको पाने के लिए मैं किसी प्रकार न तो विश्वासघात कर रहा हूँ और न किसी प्रकार का प्रलोभन ही दे रहा हूँ। मैं स्वयं में एक गुण समझता हूँ और उसके बल पर ही आपको अपना बनाने का यत्न कर रहा हूँ।

"उन्होंने कहा कि उनका वह गुण है निष्ठावान और प्रतिभावान पति होने का आश्वासन। विचार और भावना में स्थिरता के आश्रय ही वे मुझसे विवाह के प्रत्याशी हैं।

"उस समय मेरा प्रश्न था कि युद्धोपरान्त क्या और किस प्रकार का जीवन हो सकता है?

"उनका कहना था कि वे ग्रामीण कृषक का कर्म जानते हैं और वह उनको कहीं भी प्राप्त हो सकता है।

"यह सुनकर मैंने उस समय यही कहा कि मुझे विचार करने का अवसर दिया जाए।

"उन्होंने कह दिया कि उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं। वे धैर्य से प्रतीक्षा कर सकते हैं।

"मैं कुछ क्षण तक वहीं पर विचार करती रही। फिर मैंने श्रीमान्‌जी के मुख पर ध्यान से देखा। वे भी मेरी ओर देख रहे थे। हम दोनों ही समान रूप से एक-दूसरे के मनोभावों को जानने का यत्न कर रहे थे।

"यद्यपि इससे पूर्व मैं कह चुकी थी कि मुझे सोचने के लिए समय चाहिये। किन्तु मैंने उसी क्षण कह दिया, 'मुझे स्वीकार है, आज सायंकाल ही हम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विवाह होगा।'

"उन दो-तीन क्षणों में जब मैं उनके मुख की ओर देख रही थी तो उस समय मुझे उनके भाई राजकुमार स्कन्द से भेंट की बात स्मरण हो रही थी।

"भगवती के आग्रह पर मैं उनसे राजकीय उद्यान में मिली थी। जब वे अपनी आकांक्षा बता चुके तो मैंने उनसे कहा था कि किसी अन्य से मेरे पाणिग्रहण का निश्चय होने वाला है। हम दोनों की जन्म-कुण्डलियाँ राज-ज्योतिषी के पास विचारार्थ गयी हुई हैं। अभी तक ज्योतिषीजी ने उन पर अपनी सम्मति नहीं दी है। वे चाहें तो वे भी अपनी जन्म-कुण्डली ज्योतिषी के पास भेज दें, यदि मिल गयी तो विवाह होने की सम्भावना है।

"राजकुमार स्कन्द का कहना था कि यह कार्य तो एक सप्ताह के भीतर हो जायेगा। किन्तु उनका कहना था कि वे मगध साम्राज्य के उत्तराधिकारी हैं।

"मेरा कहना था कि यह मिथ्या माया है। रामगुप्त भी तो युवराज होने के भरोसे सम्राट बनने की लालसा में यमलोक जा पहुँचा था।

"दादा राजकुमार का कहना था कि वे उस नपुंसक से अपनी तुलना उचित नहीं समझते। यदि किसी ने मेरे अधिकार को चुनौती दी तो मैं तो पूर्ण भारत को आग लगा दूँगा।

"मैं यह सुनकर क्या कहती। मैंने केवल कुण्डली मिलाने की बात कह दी। किन्तु अपने श्रीमान्‌जी का उत्तर सुनकर और उनकी भावना की श्रेष्ठता का अनुमान लगाकर मैंने तुरन्त अपना निर्णय कर लिया था।

"माताजी! अब तो आप मेरी भावना को समझ गयी होंगी। आपके सुपुत्र ने भी मेरी भावना का परिचय आपको दिया होगा।

"विवाह एक शारीरिक सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त भी पति-पत्नी में एक सम्बन्ध होता है। यदि वह सम्बन्ध सुदृढ़ हुआ तो फिर वह जीवनान्तर तथा जन्म-जन्मान्तर तक चलता है।

"अपने पति से मुझे कुछ वैसा ही सम्बन्ध प्रतीत होता है। उन्होंने जब नीला को नग्न देखा तो वे हँस दिये थे। उन्होंने उसी समय कहा था कि हम तो जन्म-जन्मान्तर के लिए पति-पत्नी बन चुके हैं। उनका कहना था कि उनके सम्मुख नीला एक स्फटिक की मूर्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

"जब श्रीमान्‌जी मेरी संगति में होते हैं तो नीला हमारे आगार के बाहर बैठकर मधुर वीणा बजाया करती है। वे इसे अपनी छोटी भगिनी की भाँति मानते हैं।"

तब तक अल्पाहार समाप्त हो चुका था। समय बहुत बीत गया था। पद्मावती अपने आगार में जाने के लिए उत्सुक थी।

प्रथम दिन की यह भेंट पद्मावती को बड़ी रसमय प्रतीत हुई थी। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम यह हुआ कि उस दिन के बाद वह नित्य ही वत्सला के आगार में आने लगी।

वत्सला को पुरु ने अपनी विमाता के विषय में बताया हुआ था। वही बात उसने भगवती और नीला को भी बता रखी थी। जब पद्मावती इस प्रकार नित्य उसके पास आने लगी तो वे समझ नहीं पाईं कि पद्मावती वत्सला के पास स्नेह-वश आती है अथवा कि यह उसके षड्यन्त्र का कोई अंग है।

इस परिपेक्ष्य में तीनों सखियाँ पद्मावती से सावधान रहती थीं, किन्तु पद्मावती को वे इसका आभास होने नहीं देती थीं। खाने-पीने तथा अन्यान्य सभी प्रकार के व्यवहार में वे सतर्क रहती थीं।

मगध की सेना को युद्ध के लिए प्रस्थान किये हुए दो मास का समय हो चुका था। भारत की समस्त पश्चिमोत्तरी सीमा युद्धभूमि बनने जा रही थी। सिन्धु नदी के पार हूण टिड्डी दल की भाँति फैल गये थे। सिन्धु के पूर्वी तट पर भारतीय सेना ने अपना शिविर स्थापित कर लिया था। छुटपुट झड़पें भी होने लगी थीं। किन्तु दोनों ही पक्ष पीछे से अधिक कुमुक आने की अपेक्षा रखते थे।

प्रति सप्ताह युद्धभूमि के समाचार आने लगे थे। अभी तक किसी भी स्थान पर कोई निर्णयात्मक मुठभेड़ नहीं हुई थी।

वत्सला का गर्भ भली-भाँति पल रहा था। पद्मावती अनुभव कर रही थी कि इस अवस्था में वत्सला पूर्वापेक्षा अधिक सुन्दर और आकर्षक बनती जा रही है। पद्मावती दिन-भर वत्सला के आगार में ही रहा करती थी। केवल सोने के लिए वह अपने आगार में जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

: १ :

पण्डित शिवकुमार जब पाटलिपुत्र से प्रस्थान करने लगा तो उससे पूर्व उसने स्कन्दकुमार ने कहा, "मैं सीमावर्ती देशों को जा रहा हूँ। वहाँ जाकर मैं वहाँ की जनता का मनोबल दृढ़ करना चाहता हूँ। जनता का मनोबल दृढ़ करने से अपनी विजय और शत्रु की पराजय तो हो नहीं सकती। इस पर भी इससे शत्रु के विजय होने पर पराजय का विनाशकारी प्रभाव नहीं होगा। जनता दासता में फँस जाने पर भी पतित नहीं होगी।

"जहाँ तक भारत की विजय और शत्रु की पराजय का प्रश्न है, उसका निर्णय तो सैन्य-बल ही करेगा। यह कार्य अब तुम्हारा है। मैं चार वर्ष तक यहाँ रह गया हूँ और तुम्हें इस स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है कि तुम देश के नाम पर भारत की जनता से जन, धन और शस्त्रास्त्र की याचना कर सकते हो। इस ब्राह्मण-विद्रोह को परास्त करने के उपरान्त तो निर्विवाद रूप से तुम भारत-सम्राट हो गये हो। अब यह तुम्हारा कार्य है कि तुम विदेशीय म्लेच्छों पर विजय प्राप्त करो।

"जब तक तुम विजयी नहीं होते तब तक प्रजा का मनोबल बना रहे और उनका नैतिक पतन न हो, बस अब यही मेरा प्रयास होगा।"

"गुरुदेव ! विजय के उपरान्त तो आप लौटकर आयेंगे ही। आपको अपने शिष्य के राज्याभिषेक के अवसर पर आशीर्वाद देने के लिए यहाँ आना चाहिये।"

"नहीं स्कन्द ! मैं अब पाटलिपुत्र नहीं आऊँगा। आज मैं तीसरी बार यहाँ से जा रहा हूँ। तीनों ही बार मुझे राज्य-परिवार के उच्छृंखल व्यवहार के कारण जाना पड़ा है।

"पहली बार मैं राजपुरोहित था। उस बार तत्कालीन महाराज को कहा था कि अश्वमेध यज्ञ न करें। यदि करना ही है तो उसकी विधि में आमूलचूल परिवर्तन करके करें। उन्होंने चाटुकार ब्राह्मणों की वाह-वाह में फँसकर रूढ़ि के अनुसार यज्ञ किया। परन्तु तब तक परिस्थिति बदल चुकी थी। उसका परिणाम यह हुआ कि महाराज की हत्या होते-होते बच गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज को चेतना हुई तो मुझे पुनः वापस बुला लिया। दूसरी बार मुझे महामात्य बनाया गया। उस बार भी पाँच वर्ष के सुप्रबन्ध होने पर भी राजकुमार की दूषित मनोवृत्ति के कारण मुझे पकड़कर बन्दी बनाया जाना ही था कि मुझे अवसर मिल गया और मैं यहाँ से पलायन कर गया। उस समय मैंने संकल्प कर लिया था कि मैं पुनः यहाँ नहीं आऊँगा।

"परन्तु देश पर विपत्ति का समय देखकर मैं तुम्हारे पिता महाराजाधिराज कुमारगुप्त का आग्रह स्वीकार कर पुनः पुरोहित-पद को सम्हालने लग गया। परन्तु तुम्हारे पिता स्वयं देख रहे थे कि निर्दोष लोगों की हत्यायें हो रही हैं, किन्तु वे उनको रोकने में असफल रहे, वे उसके मूक दर्शक बने रहे।

"मैं सोचता हूँ कि ऐसे परिवार के साथ स्वयं को सम्बन्धित कर मैं भी स्वयं के लिये नरक का द्वार खोल रहा हूँ। इस कारण अब मैं यहाँ से जा रहा हूँ। तदपि मैं जहाँ भी रहूँगा, यहाँ की प्रजा की यथाशक्ति सहायता करता रहूँगा। युद्ध समाप्त हो जाने पर मैं किसी एकान्त स्थान पर जाकर रहने लगूँगा।"

स्कन्द ने यह सब सुना तो वह स्तब्ध रह गया। उसने पूछा, "गुरुदेव! यहाँ किसकी हत्या हुई है और किसने की है?"

"सुनना चाहते हो?"

"जी गुरुदेव!"

"तुम्हारी पत्नी और तुम्हारे पुत्र को विष देकर उनकी हत्या की गयी है। और यह हत्या तुम्हारे माता-पिता की अनुमति से हुई है।"

यह सुनकर तो स्कन्द स्तब्ध-सा खड़ा रह गया। कुछ विचार कर उसने पूछा, "गुरुजी! इसका प्रमाण?"

पण्डित शिवकुमार ने आँख मूँदकर एक क्षण विचार किया और फिर कहा, "कोई विष्णु कहार भी है?"

"जी हाँ, है।"

"उसको यदि विश्वास में लोगे, उसको क्षमादान दोगे तथा साथ ही पुरस्कार भी दोगे तो तुम्हें सारा विवरण मिल जायेगा।

"मैं किसी को दण्ड दिलाने नहीं आया, मैं तो स्वयं इस पापमय वातावरण से निकल जाना चाहता हूं।

"स्कन्द! परमात्मा का रक्षक हस्त तुम्हारे सिर पर है और तुम विजयी बनकर लौटोगे। तदपि यह पाप की नगरी अब साम्राज्य का केन्द्र नहीं रह सकेगी। यदि तुमने अपना आचरण ठीक रखा तो आजीवन सुख का उपभोग कर सकोगे।"

इतना कहकर शिवकुमार उठ गया। उसने स्कन्द को आशीर्वाद दिया और अपने आगार में आराम करने के लिये चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द ने उसी दिन किसी समय अवसर पाकर विष्णु कहार को बुलवाया। उसने उसको अपने सामने बैठाया और फिर कहा, "तुमने मेरी पत्नी तथा पुत्र की हत्या की है। उसके प्रमाण मेरे पास विद्यमान हैं। हम यह जानते हैं कि यह पाप-कर्म तुमने किसी स्वार्थ के लिये नहीं किया है। यदि तुम ठीक-ठीक बता दो कि किसके संकेत पर तुमने यह कुकृत्य किया है तो तुमको क्षमा कर दिया जायेगा।"

यह सुनकर विष्णु ने पहले तो इस अपराध को स्वीकार ही नहीं किया, किन्तु जब स्कन्द ने उसको भय दिखाया कि उस पर न्यायालय में अभियोग चलाया जायेगा तो वह डर गया। उसे डरता देख स्कन्द ने कहा, "देखो, अभी बात हमारे वश में है। अभी भी यदि तुमने ठीक-ठीक बता दिया तो तुम्हें कुछ नहीं होगा, अन्यथा इसका फल तुम्हें भोगना पड़ जायेगा। हो सकता है, तुम्हारे परिवार को भी इसका फल भोगना पड़े।

विष्णु डर गया और उसने सब बता दिया। उसने कहा कि उसने यह कृत्य महारानी पद्मावती के निर्देश पर किया था। उसने बताया कि उसने दोनों की हत्या करके उनके शव गंगाजी में बहा दिये थे। इस कार्य के लिये उसको महारानी जी ने एक सौ स्वर्ण पुरस्कार दिया था और महाराज ने उसके परिवार को सदा-सदा के लिये निःशुल्क भूमि प्रदान कर दी थी।

यह सुनकर स्कन्द ने उससे कहा, "अब तुम कल ही यहाँ से अपने ग्राम चले जाना। वहाँ तुम महाराज द्वारा निःशुल्क दी गयी भूमि का उपभोग करो। कभी किसी समय किसी सहायता की आवश्यकता पड़ जाए तो हमारे पास आ जाना, हम तुम्हारी सहायता करेंगे। परन्तु अब तुम राजप्रासाद के सेवक के रूप में नहीं रह सकते। इस बात का ध्यान रखना कि अपने इस कुकृत्य की चर्चा किसी से न करना।"

यह थी स्कन्द के पुत्र तथा पत्नी की कथा जो उसने विष्णु से सुनी और फिर उसके आधार पर ही वह पुरु तथा उसकी पत्नी को सचेत करने के लिए गया था। जब वह स्वयं युद्ध पर जाने लगा तो उसने अपनी माँ को संकेत से समझा दिया कि उसके कुकृत्य का उसको ज्ञान है।

पद्मावती को जब यह विदित हुआ तो उसने पुरु की पत्नी वत्सला से घनिष्टता स्थापित कर भावी षड्यन्त्र की योजना का निश्चय कर लिया।

पद्मावती समझती थी कि अपने पुत्र का मार्ग साफ करने का अवसर तो तब आयेगा, जब वह युद्ध से जीवित लौटकर आ जायेगा। उस समय यदि उसके मार्ग में पुरु अथवा उसकी सन्तान बाधक बनेगी तो वह उस काँटे को भी उखाड़कर दूर फेंक देगी।

वत्सला से प्रथम दिन की भेंट और वार्तालाप से उसकी समझ में आ गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उससे तो वत्सला और उसकी सखियाँ ही अधिक चतुर और बुद्धिशील तथा विवेक वाली हैं।

इस समय वह अपनी योजना के लिये समय नहीं समझती थी। इसलिए उसके मन में इस समय कोई षड्यन्त्र की योजना भी नहीं है।

इस कारण वह निश्चिन्त होकर वत्सला से मेल-मिलाप करती रही। वह नित्य-प्रति वत्सला के आगार में आने लगी और वहाँ पर होने वाली साहित्य-चर्चा और संगीत समारोह में अधिकाधिक रस लेने लगी।

स्कन्द को पाटलिपुत्र से गये दो मास से अधिक हो गये थे कि जब उसने पुरु के नाम एक पत्र भेजा। हस्तिनापुर का एक सुभट्ट यह लिखित समाचार लाया था। उसमें लिखा था कि हस्तिनापुर, स्थाणेश्वर, माद्रदेश, सिन्ध, सौवीर तथा कश्मीर वैरागियों के प्रचार से सक्रिय और सजग हो गये हैं। इन देशों में वेग से सेना में भरती हो रही है। शस्त्रास्त्र के निर्माण का कार्य भी जनता के सहयोग से प्रबल वेग से किया जा रहा है। सेना के लिये खाद्यान्न के भण्डार एकत्रित किये जा रहे हैं।

इस सूचना के साथ ही स्कन्द ने यह भी लिखा था कि वह माताजी से सावधान रहकर राज्य-कार्य का संचालन करे।

समस्त भारतवर्ष में जन-जागृति का कार्य आनन्द वैरागी के वैरागियों ने ही किया था। और स्कन्द ने अपनी सेना लेकर सिन्धु नदी के पूर्व तट पर पहुँचने की योजना बना ली थी।

स्कन्द शिवकुमार की खोज में भी लगा रहा। किन्तु न तो उसे वह स्वयं कहीं दिखायी दिया और न ही उसका कोई समाचार मिला।

शिवकुमार पाटलिपुत्र से चलकर त्रिवेणी आश्रम पर पहुँचा। उस समय भारद्वाज ऋषि के आश्रम के मुख्याचार्य महागिरि भारद्वाज नाम के एक संन्यासी थे। शिवकुमार वहाँ पहुँचा तो उसके मन में विचार आया कि इन्हीं महाराजजी से संन्यास की दीक्षा ले लेनी चाहिए।

शिवकुमार उस आश्रम में टिक गया और अगले दिन प्रातःकाल गिरियों के निवास पर जा पहुँचा। आचार्य महोदय कुटिया के बाहर गंगा की ओर मुख किये समाधिस्थ बैठे थे। शिवकुमार उनकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में वहीं उनके पीछे बैठ गया।

दिन का एक प्रहर बीतने के बाद महर्षि की समाधि खुली। समाधि खुलते ही आचार्यजी ने कहा, "भक्त ! सामने आओ।"

शिवकुमार सामने गया और प्रणाम करके बैठ गया।

आचार्यजी ने कहा, "मुझसे संन्यास लेने की इच्छा है ?"

"जी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम तो इस समय एक सौ तीस वर्ष के व्यक्ति हो। मेरी आयु अभी केवल सत्तर वर्ष है। मुझमें तुम्हें दीक्षा देने की योग्यता नहीं है।"

"महाराज! आयु के विषय में तो मैं सब जानता हूँ, परन्तु आप तो ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास में दीक्षित हुए हैं और मैंने पचास वर्ष तक गृहस्थ जीवन का उपभोग किया है। इसी प्रकार पचपन वर्ष वानप्रस्थ आश्रम के भी भोग चुका हूँ। अब संन्यास की इच्छा हुई है तो आपके विषय में जानकर कि आप ही इसके लिए योग्य हैं, इस कारण यहाँ चला आया हूँ।"

"यह कैसे जाना कि मैं आपसे योग्य हूँ?"

"मैंने अपने अन्तर्मन से जाना है कि आपको जन्म-जन्मान्तरों का ज्ञान है। इस प्रकार आप मुझसे बहुत बड़ी आयु के हैं।"

महागिरि को हँसी आ गयी। बोले, "तो चलिये। गंगा-तट पर ही आपको दीक्षा दी जायेगी।"

महागिरि आसन से उठे और आवाज देने लगे, "भृगु!"

साथ की कुटिया से एक ब्रह्मचारी बाहर आया और हाथ जोड़कर महाराज के सम्मुख खड़ा हो गया।

महागिरि भारद्वाज ने कहा, "आश्रमवासियों को सूचित करो कि मैं एक महानुभाव को संन्यास की दीक्षा दे रहा हूँ। सब आश्रमवासी गंगा-तट पर एकत्रित हो जाएँ। ये राजर्षि अपने दीक्षा समारोह के अवसर पर मोहनभोग बाँटेंगे।"

शिवकुमार मुस्करा रहा था। आदेश देकर महागिरि ने शिवकुमार से कहा, "आओ, चलें।"

आगे-आगे आचार्यजी और उनके पीछे शिवकुमार गंगाजी के तट की ओर चल दिये। गंगा-तट अधिक दूर नहीं था। इनके तट पर पहुँचते ही चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड साधु-संन्यासी और गृहस्थ वहाँ पर एकत्रित होने लगे थे।

गंगा-तट पर बैठे नाइयों में से एक को संकेत से बुलवाया गया और उसको पण्डित शिवकुमार का मुण्डन करने के लिये कहा गया।

मुण्डन हो जाने पर पण्डित शिवकुमार को स्नान के लिए कहा गया। गिरि महाराज ने नाई से कहा, "पण्डितजी के वस्त्र ले जाओ, किन्तु ठहरो, इनकी जेबों में देखो, क्या रखा हुआ है।"

नाई ने उत्तरीय की जेब में हाथ डाला तो उसमें से एक वस्त्र में स्वर्ण मुद्राएं बँधी हुई मिलीं। स्वामीजी ने कहा, "यह सब गिनो।"

नाई ने गिनना आरम्भ किया। गिनकर कहा, "महाराज, पाँच सौ ग्यारह स्वर्ण मुद्रायें हैं।"

महाराज ने कहा, "इन्हें तुम ले जाओ। ये तुम्हारी दक्षिणा के हैं।"

नाई ने उन स्वर्ण मुद्राओं को स्वामीजी के चरणों में रखते हुए कहा, "महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज ! ये बहुत अधिक हैं। आश्रम के लिए रख लीजिए।"

"नहीं, ये तुम्हारे हैं, तुम ले जाओ। आश्रम में इनके ढेर लगे हैं।"

इस प्रकार नाई वह स्वर्ण मुद्राएँ और शिवकुमार के वस्त्र लेकर वहाँ से विदा हुआ।

जब शिवकुमार स्नान कर और सूर्य को अर्घ्य देकर गंगा से निकला तो भृगु ब्रह्मचारी उसके लिए भगवे वस्त्र और दण्ड लिये तट पर खड़ा था। आचार्यजी ने उसे बाँधने की विधि बताई।

महागिरि ने शिवकुमार के हाथ में दण्ड और कमण्डलु दिया और सूर्य स्तोत्र का पाठ कराकर उन्हें दीक्षा दे दी।

दीक्षा देने के उपरान्त महागिरि ने कहा, "भिक्षु ! आज से आपका नाम योगेश्वरानन्द गिरि होगा। अब आश्रम में चलकर इन दर्शकों के भोजन की व्यवस्था करो।"

इस प्रकार योगेश्वरानन्द के रूप में वह दो दिन तक उसी आश्रम में रहा और फिर पश्चिम की ओर चल दिया।

योगेश्वरानन्द प्रयागराज से कौशाम्बी जा पहुँचा। वहाँ वह धर्मशाला में जाकर टिक गया। प्रातःकाल वन्दना में बिताकर मध्याह्न के समय वह भिक्षा के लिये नगर को चल दिया। पहले ही गृहस्थ के घर खड़े होकर उसने आवाज लगाई, "नारायण हरि।"

यह सुनकर गृहिणी दो चपाती और उस पर साग रखकर बाहर आ गयी। योगेश्वरानन्द ने अपने दोनों हाथ फैलाकर भोजन ग्रहण किया और वहीं द्वार पर भूमि पर बैठकर एक हाथ में रोटी रख दूसरे हाथ से खाने लगा।

वह स्त्री द्वार पर से हटी नहीं। वह स्वामीजी को देखती रही। स्वामीजी ने समझा कि कदाचित् वह जल अथवा अधिक रोटी पूछने के लिए खड़ी है।

परन्तु वह स्त्री बड़े ध्यान से स्वामीजी को देख रही थी। वास्तव में वह उन्हें पहचानने का यत्न कर रही थी।

जब स्वामीजी ने दो रोटी समाप्त कीं तो स्त्री ने पूछा, "महाराज ! और रोटी लाऊँ ?"

"नहीं भगवती ! बस।"

"महाराज ! पानी ?"

"हाँ, पानी लाकर इस कमण्डलु में डाल दो।"

स्त्री चाँदी के लोटे में जल लेकर आई और उसे कमण्डलु में डालते हुए कहने लगी, "भगवन् ! मध्याह्न के समय यहीं विश्राम करिये। इच्छा हो तो हम तुच्छ जीवों को कुछ उपदेश करिये। इससे हम स्वयं को धन्य समझेंगे।"

योगेश्वरानन्द ने आकाश की ओर देखा। मध्याह्न से दो घड़ी दिन अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढल गया था। उसने कहा, "भगवान् की इच्छा पूर्ण हो।"

"महाराज! भीतर गृहस्वामी की बैठक में पधारिये। वे भी अभी आते ही होंगे और आपके चरणस्पर्श कर कृतार्थ हो जायेंगे।"

"जैसी इच्छा, हरि ओ३म्।"

स्त्री स्वामीजी को भीतर ले गयी और उन्हें एक सुसज्जित आगार में विश्राम करने के लिये बैठा दिया।

इतना करके गृहिणी आगार से निकल गयी। स्वामीजी के मन में सन्देह हो गया कि इस स्त्री ने उसे कहीं देखा है और वह पहचान गयी है। इस विचार पर विस्मय करते हुए वह आसन पर बैठ गया।

स्वामीजी का संशय निवारण होने में अधिक समय नहीं लगा। कुछ क्षणोपरान्त एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति घर में आया। उसने स्वामीजी के चरणस्पर्श किये और हाथ जोड़ सामने बैठकर पूछने लगा, "महाराज! यह बाना कब धारण किया?"

"आप मुझे जानते हैं?"

"जी महाराज!"

"भगवन्! क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?"

"हाँ महाराज! आपसे परिचय छिपाकर क्या करूँगा। यह तो मेरा सौभाग्य है कि शीघ्र ही आपके दर्शन और वह भी संन्यासी के रूप में हो गये हैं।"

योगेश्वरानन्द ने कहा, "हाँ-हाँ, स्मरण आ रहा है। आप इस राज्य के पण्डित सदाशिव तो नहीं हैं? मैंने पहले आपको केवल रात के अन्धकार में ही एक बार देखा था।"

सदाशिव ने पुनः चरणस्पर्श किये और बोला, "जी, मैं वही हूँ जिसे आपने पाटलिपुत्र के बन्दीगृह में डलवा दिया था।"

"क्यों, वहाँ बहुत कष्ट हुआ था?"

"महाराज! उस समय तो उस कष्ट को असह्य समझ रहा था, किन्तु मैं समझता हूँ कि उस समय का वह कष्ट वैसा ही था जैसा कि किसी भ्रूण को माँ के गर्भ में होता है। मैं एक पुण्यकर्मी जीव के माँ के पेट में जाने की भाँति अपने भूत और भविष्य का अवलोकन कर रहा था।

"मैंने एक ब्राह्मण ग्रन्थ में पढ़ा था कि मृत्यु के उपरान्त और नये जन्म के पूर्व, इस बीच के काल में जीव अपने आगे और पीछे के जीवन को देख लेता है। इसी प्रकार उस बन्दीगृह में से मैं भी अपने पूर्व और भविष्य के व्यवहार को देख रहा था।

"महाराज-कुमार के अतिथिगृह में बन्दी के रूप में रहते हुए मुझे किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट तो था नहीं, परन्तु अपने पूर्व के पुण्य कर्मों के अधीन में अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य की योजना बना रहा था।

"यह योजना पहले तो आपके विरुद्ध बदले की भावना से थी, परन्तु समय बीतने के साथ-साथ वह भी बदलती गई। ब्राह्मणों के विद्रोह के शान्त होने तक बदले की भावना के स्थान पर आपसे क्षमा-याचना की भावना उत्पन्न हो गयी।

"युद्ध समाप्त होने पर जब महाराज कौशाम्बी पाटलिपुत्र आये तो युवराज स्कन्द से कहकर मुझे मुक्त कराकर यहाँ ले आये। मुझे ज्ञात था कि यहाँ के न्यायालय में मुझ पर राजद्रोह का अभियोग है। इस कारण मार्ग में ही उस विषय पर बात हो गयी।

"मैंने महाराज से पूछा, 'महाराज! मेरे विरुद्ध क्या अभियोग है?'

" 'आपने विदिशा वालों से धन लेकर कौशाम्बी में राज्य को पलटने का द्रोह किया है। राज्य के गुप्तचर विभाग ने इसकी जाँच की है और उनको इसके प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।'

"मैंने महाराज के चरण पकड़कर उनसे क्षमा-याचना की। साथ ही मैंने उनको यह भी कहा मैं सत्य हृदय से अपनी भूल स्वीकार करता हूँ।

"महाराज बोले कि क्षमा तो किया जा सकता है, किन्तु मन्त्री-पद पर नियुक्ति में कठिनाई है। मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति के बिना मैं स्वयं यह नियुक्ति नहीं कर सकता।

"मैंने महाराज को कह दिया कि उस विषय में जैसी उनकी आज्ञा होगी, मुझे मान्य होगी।

"इस प्रकार भगवन्! अब मैं अभियोग से तो मुक्त हूँ, किन्तु मन्त्रिमण्डल का सदस्य नहीं हूँ। अब मैं अपने व्यवहार से राज्य और मन्त्रिमण्डल में पुनः अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का यत्न कर रहा हूँ। कह नहीं सकता कि कब तक सम्भव होगा।"

"क्यों, स्वतन्त्र जीवन में किसी प्रकार का कष्ट है आपको?"

"केवल इतना ही जितना कि जीवन में अवकाश कष्टप्रद होता है।"

"कुछ शास्त्र भी पढ़े हैं?"

"विद्यार्थी जीवन में पढ़े थे।"

"अब पढ़ना आरम्भ कर दो। इससे जीवन में अवकाश नहीं दिखायी देगा। आप तो ब्राह्मण हैं। राज्य-सेवा तो नरक का द्वार है। ब्राह्मण को इसकी लालसा नहीं करनी चाहिये।"

सदाशिव स्वामीजी का मुख देखता रह गया।

स्वामीजी ने फिर कहा, "ठीक अथवा गलत स्वतन्त्र व्यक्ति अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार कर्म करने में स्वतन्त्र होता है। परन्तु सेवा-कार्य में तो वह अपने सर्वोत्कृष्ट जीवन की उपलब्धि दूसरों के पास बेच डालता है। ब्राह्मण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये यह पाप है। जब तक आपकी विद्या आपके स्वामी के पास बिकती नहीं तब तक उस विद्या में सुधार आपके अधीन रहता है। परन्तु जो सेवक होता है उसका तो विद्या-बुद्धि सबकुछ ही बिका हुआ होता है। इससे वह ब्राह्मण-पद के योग्य नहीं रह जाता।"

शिवकुमार उसे इस प्रकार की बातें समझा ही रहा था कि गृहिणी ने द्वार पर आकर कहा, "महाराज! कौशाम्बी-नरेश आये हैं और भीतर आने की आज्ञा चाहते हैं।"

सदाशिव उठ खड़ा हुआ। योगेश्वरानन्द ने गृहिणी को कहा, "महाराज को आने दीजिये।"

गृहिणी बाहर गयी और महाराज को लिवा लायी। महाराज के साथ उनकी महारानीजी भी थीं।

दोनों ने आगार में स्वामी योगेश्वरानन्द सदृश ओजस्वी तपस्वी को देखा तो क्षणभर के लिए दोनों द्वार पर ही ठिठक गये, किन्तु तुरन्त ही आगे बढ़कर उन्होंने स्वामीजी के चरणस्पर्श कर उनको प्रणाम किया।

स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया और पूछने लगे, "कहिये महाराज! क्या रूप है अब विदिशा का?"

"महाराज हस्तिनापुर-नरेश पूर्वी सीमा की ओर चल दिये हैं और मैं भी एक-दो दिन में जाने वाला हूँ। विदिशा अभी दोनों सेनाओं के अधिकार में है। इस काँटे की चिकित्सा तो युद्ध के उपरान्त ही होगी।"

"ठीक है, निःस्वार्थ भाव से प्रजा की सेवा करोगे तो सदा के लिए सुख की आशा की जा सकती है।"

महाराज सुरेन्द्रमणि ने कहा, "भगवन्! हम दोनों आपको राजप्रासाद में पधारने का निमन्त्रण देने के लिए आये हैं।"

"हाँ, अभी तो चल सकता हूँ, परन्तु रात्रि के समय मैं महावीरजी के मन्दिर में ही जाकर टिकूँगा। मैंने संकल्प लिया है कि सूर्यास्त से आरम्भ कर सूर्योदय की दो घड़ी उपरान्त तक किसी गृहस्थ के घर पर नहीं टिकूँगा।"

"आपको निर्धारित समय पर वहाँ पहुँचा दिया जायेगा।"

"मैं पण्डित सदाशिव की सिफारिश कर रहा हूँ।"

"भगवन्! आप क्या चाहते हैं?"

"इनको राज्य की ओर से क्षमादान किया जाए। इनकी जो सम्पत्ति राज्याधीन हो गयी है, उसे वापस कर दिया जाए। इनके सेवा-मुक्त होने पर इनकी वृद्धावस्था के निर्वाह की व्यवस्था कर दी जाए।"

"मैं तो इनको पुनः मन्त्री-पद पर नियुक्त करने की बात सोच रहा था।"

"वैतनिक सेवा के लिए मैं आग्रह नहीं करता। मैं उसे ब्राह्मण के लिए पाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मूल मानता हूँ। हाँ, समय पर इनकी विद्वत्ता के अनुरूप इनकी सेवा स्वीकार की जा सकती है।"

इस प्रकार पण्डित सदाशिव को कौशाम्बी राज्य की ओर से क्षमादान कर उनकी सारी सम्पत्ति वापस कर दी गयी।

: २ :

महाराज सुरेन्द्रमणि के आग्रह पर स्वामी योगेश्वरानन्द ने महाराज के साथ ही सीमावर्ती प्रदेशों की यात्रा पर चलना स्वीकार कर लिया। मार्ग में स्वामीजी के लिए अलग डेरा बनवाया गया। कौशाम्बी की सेना का मुख्य भाग तो पहले ही पश्चिमी सीमा की ओर प्रस्थान कर चुका था। महाराज स्वयं पाँच सैनिकों को साथ लेकर पुष्पावती नदी की ओर बढ़ रहे थे। सायंकाल जब ये यात्री पड़ाव डालते तो वहाँ पर स्वामी योगेश्वरानन्द का प्रवचन होता। दो घड़ी तक स्वामीजी आध्यात्मिक जीवन, जैसाकि भगवद्गीता में वर्णन किया है, उस पर प्रवचन करते और सैनिकों का मनोबल सुदृढ़ करने का यत्न करते।

महाराज सुरेन्द्रमणि को यात्रा में एक मास का समय लग गया। एक मास बाद वे सिन्धु नदी के तट पर पहुँच गये थे। वहाँ उनको आगे का मार्ग अवरुद्ध मिला।

स्वामी योगेश्वरानन्द ने अपनी यात्रा उत्तर की ओर आरम्भ कर दी। पाँच दिन की निरन्तर यात्रा करने के उपरान्त स्वामीजी कश्यप के द्वार पर जा पहुँचे।

पश्चिमी क्षेत्रों के निवासी पूर्वी क्षेत्रों की ओर जा चुके थे। वह सारा क्षेत्र कश्मीर की सेना के अधिकार में आ गया था। स्वामीजी ने वहाँ केवल निरीक्षण ही किया। कश्मीर की सेना किसी भी दिन म्लेच्छ सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी। उनको आशा थी कि यह युद्ध सिन्धु नदी के तट पर होगा। वे दिन-रात सावधानीपूर्वक सीमा के प्रबन्ध में संलग्न थे।

स्वामीजी का सैनिकों से नहीं अपितु जनता से अधिक सम्पर्क रहता था। स्वामीजी ने अब सिन्धु नदी के तट से पूर्व की ओर मुख कर लिया।

स्वामीजी मन्द गति से पूर्व की ओर बढ़ रहे थे। आगे चलकर उन्हें थोड़ी-थोड़ी संख्या में जनता दिखायी देने लग गयी। उस जनता में वैरागी भी होते थे। वे वैरागी जनता का मनोबल स्थिर रखने का यत्न करते रहते थे। आनन्द के इस कार्य से स्वामी योगेश्वरानन्द को अत्यधिक सन्तोष हो रहा था।

इस प्रकार चलते-चलते स्वामी योगेश्वरानन्द श्रीनगर जा पहुँचे। उनके पहुँचने से पूर्व ही आनन्द वैरागी वहाँ उपस्थित थे। श्रीनगर में सेना नहीं थी, केवल सुभट्ट ही नगर की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे।

स्वामीजी को जब विदित हुआ कि आनन्द वैरागी वहाँ है तो एक दिन वे उसके डेरे पर जा पहुँचे। आनन्द वैरागी ने नगर के मध्य में पहाड़ी की चोटी पर स्थित शंकराचार्य के मन्दिर में डेरा डाला हुआ था। यहाँ वैरागियों की गति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधियों का भी केन्द्र था। वहाँ से वैरागी अपने थैलों में भुने चने और गुड़ भर-भरकर सेना में वितरित करने के लिए ले जाते थे। इस प्रकार वे सेना और जनता का मनोबल स्थिर करने के कार्य में लगे हुए थे।

स्वामी योगेश्वरानन्द शंकराचार्य के मन्दिर के द्वार पर पहुँचे और वहीं से उन्होंने 'हरि ओ३म्, नारायण हरि' का घोष किया तो भीतर से एक वैरागी निकल आया।

अपने सम्मुख एक ओजस्वी संन्यासी को देखकर बड़े विनम्र भाव से उसने स्वामी योगेश्वरानन्द से पूछा, "महाराजजी! आप यहाँ किस निमित्त पधारे हैं?"

योगेश्वरानन्दजी ने कहा, "स्वामी आनन्द वैरागीजी के दर्शन करने के निमित्त आया हूँ।"

"कृपया ठहरिये, मैं अभी सूचना देता हूँ।"

प्रहरी वैरागी भीतर जाने के लिए घूमा ही था कि भीतर से स्वयं आनन्द वैरागी दौड़ता हुआ आता दिखायी दिया। उसने अपने पिताजी की ध्वनि को पहचान लिया था।

दूर से ही उसने देखा कि उसके पिता भगवा वस्त्र धारण किये हुए हैं। वह समझ गया कि उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया है। वह दौड़ता हुआ द्वार पर आ गया।

पिता के सम्मुख पहुँचकर उसने उनके चरणस्पर्श किये और पिता ने उसको गले लगाया। फिर बोले, "संन्यासी किसी संन्यासी के चरणस्पर्श नहीं करता।"

"आप तो मेरे गुरु भी हैं, जनक भी और मार्गदर्शक भी। सब भाँति मेरे पूज्य हैं और अब तो आपने भी संन्यास धारण कर लिया है। यदि पहले योग्य न भी रहा हो तो अब तो वह सब प्रकार से योग्य हो गया है।

"आइये, पधारिये, यह सब आपका ही प्रताप तो है जो मेरे मुख पर और आस-पास के कार्य में दिखायी दे रहा है।"

दोनों संन्यासी भीतर गये। वहाँ आनन्द वैरागी ने स्वामी योगेश्वरानन्द को उच्चासन पर बैठाया और स्वयं उनके चरणों के समीप बैठकर वहाँ की परिस्थिति का वर्णन करने लगा। उसने कहा, "मेरा विचार है कि इस समय तक दक्षिण के मोर्चे पर युद्ध आरम्भ हो गया होगा। यह युद्ध धीरे-धीरे उत्तर की ओर भी तीव्र होता चला जायेगा। जहाँ तक मेरा अनुमान है, शत्रु सेना दस लक्ष से अधिक ही होगी। समाचार यह है कि जहाँ दक्षिण में युद्ध में शत्रु विजयी हो रहा है वहाँ उत्तर में हमारी सेनायें उसका घोर प्रतिरोध कर रही हैं।"

"स्कन्द कहाँ है?"

"वह सिन्धु सौवीर में है। उसके उत्तर में हस्तिनापुर की सेना और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण में वैशाली की सेना शत्रु सेना का विरोध कर रही है।

"कश्मीर को आशा नहीं है कि उसकी सेना आगे बढ़े। मेरा अनुमान है कि अगले मास में इसे आगे बढ़ने के लिए कहा जायेगा। ऐसा आभास मिलता है कि कश्मीर हूणों की पंक्ति को तोड़कर उन्हें पीछे खदेड़ने में सफल हो जायेगा।

"यदि हम शत्रु की पीठ पर पहुँच गये और अपना सम्पर्क तथा भोजन-व्यवस्था आदि ठीक रख सके तो हूण सेना भारतीय सेना से चारों ओर से घिर जायेगी। उस अवस्था में भारत की विजय सुनिश्चित है।

"परन्तु इसमें कितना समय लगेगा, इसका अनुमान लगा पाना कठिन है। पंचनद की सेना कश्मीर की सेना को सहयोग कर रही है।"

"प्रजा की स्थिति कैसी है?"

"अधिकांश युवक तो सेना में प्रविष्ट हो गये हैं। कुमार, वृद्ध और स्त्री वर्ग ही अब प्रजा के नाम पर शेष रह गया है। हम अर्थात् हमारे वैरागी उनको भी सैनिक प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।"

योगेश्वरानन्द को इस प्रबन्ध में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं दिखायी दी। उसे इससे सन्तोष हुआ। तदनन्तर वह एक दिन महाराज प्रवरसेन से मिलने के लिए चला गया।

स्वामी योगेश्वरानन्द राजभवन पर पहुँचे और उन्होंने 'नारायण हरि' का घोष किया तो ड्योढ़ी पर तैनात सुभट्टों का नायक वहाँ उपस्थित हो गया। उस समय तक भोजन की वेला नहीं आयी थी। सुभट्ट ने पूछा, "महाराज! भोजन का तो समय अभी हुआ नहीं, आप क्या चाहते हैं?"

"महाराज के दर्शन।"

"कृपया अपना नाम बता दीजिये। मैं उनके पास सूचना भेज देता हूँ।"

"महाराज मेरा नाम नहीं जानते। उनको बता दो कि कोई संन्यासी द्वार पर खड़ा है।"

नायक ने एक सुभट्ट के द्वारा महाराज के पास संदेश भिजवा दिया। योगेश्वरानन्द विचार कर रहा था कि किसी संन्यासी की महाराज के दरबार में कैसी प्रतिष्ठा होती है। स्वामीजी को यह जानकर सन्तोष हुआ कि संन्यासी कहने मात्र से ही उनको भीतर बुला लिया गया है।

उस समय महाराज प्रवरसेन अपने कार्यालय में बैठे सेनापति से युद्धभूमि का विवरण सुन रहे थे। उन्होंने पहले तो स्वामीजी को पहचाना नहीं। इसलिये अपने स्थान पर बैठे ही महाराज ने दूर से प्रणाम कर कह दिया, "महाराज! विराजिये।"

परन्तु ज्यों ही फिर उधर देखा तो महाराज समझ गये कि यह संन्यासी के वेश में पण्डित शिवकुमार हैं। इतना ज्ञान होते ही वह अपने आसन से उठे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी योगेश्वरानन्दजी के चरणस्पर्श करने लगे।

स्वामीजी ने उन्हें उठाकर गले लगाया और फिर बोले, "मैं यहाँ की प्रजा के सम्बन्ध में आपसे बात करने के लिए आया हूँ।"

"मुझे आज्ञा हुई है कि मैं किसी भी प्रकार आपकी खोज करके आपको यहाँ श्रीनगर में रोककर रखूँ। अब मैं उस आज्ञा का पालन करूँगा।"

"यह किसकी आज्ञा है?"

"संयुक्त सेना के सर्वोच्च सेनाध्यक्ष की। चार दिन पूर्व सेनाध्यक्ष राजकुमार स्कन्द का पत्र लेकर एक सैनिक आया था। उसमें उन्होंने लिखा है कि आप पाटलिपुत्र से रुष्ट होकर चले आये हैं। अतः मैं आपको ससम्मान श्रीनगर में रखूँ।

"मुझे निर्देश दिया गया है कि मैं इस बात का ध्यान रखूँ कि आप किसी भी प्रकार शत्रु के पंजे में न पड़ने पायें। इसके लिए आपको युद्धभूमि से दूर ही रखना होगा।"

"युद्धभूमि से दूर रहने का विचार तो मैं स्वयं ही कर रहा हूँ। मैंने निश्चय किया है कि मैं हिमालय की किसी कन्दरा में गुप्त रूप से रहने लगूँ।"

"भगवन्! आपकी मार्तण्ड वाली कुटिया अभी भी सुरक्षित है। आप आज्ञा कीजिये। एक दिन में ही उसको पुनः रहने योग्य करवा दिया जायेगा।"

"मार्तण्ड मन्दिर के अध्यक्ष स्वामी रामेश्वरानन्दजी वहाँ हैं?"

"स्वामीजी अब नहीं रहे। दो वर्ष पूर्व उनका स्वर्गवास हो गया है।"

"यह भी ठीक ही है। वहाँ मुझे केवल वे ही पहचानते थे। मैं अब पण्डित शिवकुमार तो रहा नहीं। न ही मुझे अब उस दृष्टि से देखा जाए। मैं सर्वथा लुप्त और गुप्त रहना चाहता हूँ।

"सब प्रकार के राजनीतिक विषय से भी मैंने स्वयं को असम्बद्ध कर लिया है। अब मैं विशुद्ध संन्यासी हूँ और मेरा नाम स्वामी योगेश्वरानन्द है। शिवकुमार का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से समाप्त हो गया है।"

"परन्तु भगवन्! मेरी भाँति कोई अन्य भी तो हो सकता है जो आपके पूर्व-जीवन से परिचित हो?"

"होगा। किन्तु यदि स्कन्दकुमार भी कभी इधर आ जाए तो उसे कह दीजिये कि शिवकुमार अब नहीं रहा। यह उसको समझ लेना चाहिये। संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होते ही मेरा नया जन्म हो गया है।"

प्रवरसेन स्वयं भी अब वृद्ध हो चला था। उसने कहा, "स्वामीजी! यहाँ और मार्तण्ड में आपके पूर्व-जीवन से परिचित कोई नहीं होगा। अतः आप भूत-काल से निर्लिप्त होकर वहाँ पधारिये।"

"मैं वहाँ अब नई सृष्टि करना चाहता हूँ।"

"क्या इस आयु में और इस वेश में आप पुनः विवाह करने की लालसा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं ?"

स्वामीजी हँस पड़े। फिर कुछ विचार कर कहने लगे, "सृष्टि का अर्थ सन्तानोत्पत्ति ही नहीं होता। मैं तो अपने कार्य की सृष्टि करने की बात कर रहा हूँ।"

"ऐसे ही एक सज्जन और भी यहाँ हैं जो अपनी सृष्टि करने में संलग्न हैं।"

"कौन है वह ?"

"वह कोई विदेशी है।"

"क्या नाम है ?"

"वह इस समय यशु नाम से विख्यात हो रहा है। वह भी यही कह रहा है कि सामान्य जनों को इस युद्ध में तटस्थ रहना चाहिये। यह परस्पर राज्यों का विवाद है। वे युद्ध करें। प्रजा को चाहिए कि वह अपने कार्य में संलग्न रहे।"

इस विवरण से योगेश्वरानन्द ने यही अनुमान लगाया कि यह नजरथ का वही साधु हो सकता है जिसके विषय में आनन्द वैरागी बताया करता था। स्वामीजी ने कहा, "मैं उससे मिलना चाहता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि वह ऐसा क्यों कहता है। इस संघर्ष में प्रजा को तटस्थ रखने से उसका क्या प्रयोजन है ?"

"हमारे लिये भी वह चिन्ता का विषय बना हुआ है। वह एक ही बात कहता है कि यह राजपाट सब धोखा है, इस पर सब धूर्त और दुराचारी अधिष्ठित होते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कल्याण के लिए यत्न करे।"

"परन्तु महाराज ! आपकी प्रजा में तो भगदड़ मची हुई है। यह तो मैं सीमा पर से देखता चला आ रहा हूँ। सीमा प्रदेश सर्वथा जन-विहीन हो गया है। वहाँ दूर-दूर तक सैनिक शिविर ही दिखायी देते हैं और कुछ भी नहीं।

"यहाँ श्रीनगर में तो कुछ चहल-पहल दिखायी दी है, परन्तु वह भी मैं समझता हूँ कि वह आनन्द वैरागी के कारण है। उनके वैरागियों ने जनता को अपनी सुरक्षा के लिए संगठित करने की योजना चलायी हुई है।"

"हमें और हमारे राज्याधिकारियों को इस विषय में ज्ञात है। राज्याधिकारी उन वैरागियों के प्रचार का समर्थन करते हैं। परन्तु यह विदेशी साधु उसके सर्वथा विपरीत शिक्षा दे रहा है।"

"मैं उससे मिलना चाहता हूँ।"

"वह साधु नगर सरोवर के पूर्वी पार्श्व में राजकीय उद्यान में पत्थर की चोटी पर एक साधारण-सी कुटिया बनाकर रह रहा है।"

"ठीक है, उससे पृथक् में ही मिलूंगा।"

"आज तो आप इस स्थान को पवित्र कीजिये। मेरे पुत्र और पुत्रवधुयें आपके दर्शनों से कृतकृत्य हो जायेंगे।"

"महाराज ! मैं तो अब संन्यासी हूँ। इसलिये मेरी जीवनचर्या बहुत कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल गयी है। पहली बात तो यह है कि दिन-भर मैं भले ही कहीं रह जाऊँ किन्तु रात्रि को मैं केवल किसी मन्दिर में ही रहता हूँ अथवा खुले आकाश के तले रहता हूँ। किसी गृहस्थ के घर में रहना अब मेरे लिये वर्जित है।

"दूसरी बात है कि प्रतिदिन प्रातःकाल के समय मैं अपने दिन-भर का कार्य सुनिश्चित कर लेता हूँ। उससे पहले न तो मैं उस दिन के कार्य के लिए अपने मन में पहले से ही कोई योजना रखता हूँ और न ही अपने कार्यक्रम के विषय में किसी से विचार-विमर्श करता हूँ।"

प्रवरसेन बोला, "स्वामीजी ! मैं तो आज के भोजन का ही आपको निमन्त्रण दे रहा हूँ।"

"उसका समय तो अभी हुआ नहीं। वह मध्याह्न से एक घड़ी उपरान्त होता है।"

"तो महाराज ! मेरी प्रार्थना है कि मध्याह्न भोजन के समय यहाँ पधारकर भिक्षा की याचना करने की कृपा करिये। वह समय भी अब निकट ही है। उपासक का द्वार पवित्र हो जायेगा।"

"मेरे यहाँ रहने से राज्य-कार्य में बाधा उपस्थित हो रही है।"

"ऐसी कोई बात नहीं है महाराज ! मेरा कार्य तो किसी यन्त्र की भाँति चलता रहता है। मैं उस स्वचालित यन्त्र को एक ओर खड़ा रहकर देखता रहता हूँ। मैं उस समय ही केवल हस्तक्षेप करता हूँ जबकि उस यन्त्र में कभी कहीं किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाये।

"महाराज ! आइये, मैं आपको एक द्वार दिखाता हूँ। आप उस द्वार पर खड़े होकर 'नारायण हरि' का घोष करिये तो भोजन प्राप्त हो जायेगा।"

योगेश्वरानन्द को हँसी आ गयी। बोले, "हाँ, किसी गृहस्थ का द्वार दिखा दो, जहाँ दो रोटी प्राप्त हो सकें।"

उठते हुए सेनापति को प्रवरसेन ने कहा, "सायंकाल युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करने से पूर्व मुझसे मिल लीजिये।"

प्रवरसेन उठा और योगेश्वरानन्द से बोला, "महाराज ! इधर पधारिये, मैं आपको गृहस्थ का द्वार दिखाता हूँ।"

स्वामी योगेश्वरानन्द महाराज प्रवरसेन के साथ राजप्रासाद की ओर चल दिये। आज स्वामी योगेश्वरानन्द ने अनुभव किया कि पहले के महाराज प्रवरसेन में और आज के महाराज प्रवरसेन में पर्याप्त अन्तर है। इसलिए स्वामीजी के मन में प्रवरसेन का परिवार देखने की उत्कण्ठा होने लगी। यद्यपि स्वामीजी को विदित था कि प्रवरसेन के दस पुत्र और पौत्र आदि हैं।

महाराज प्रवरसेन स्वामीजी के साथ-साथ चलता हुआ कार्यालय से निकलकर अपने निजी निवास की ओर जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रासाद के द्वार पर सुभट्टों के मध्य से जाता हुआ वह प्रासाद के प्रांगण में पहुँच गया। प्रांगण के मध्य में एक पुष्करिणी थी। उसके तट पर एक चौकी के समीप स्वामीजी को खड़ा कर उसने कहा, "भगवन्! भिक्षा की याचना करिये। देखिये, कदाचित् कोई भक्त यहाँ रहता हो।"

योगेश्वरानन्द को भी हँसी सूझी। उन्होंने पुष्करिणी की ओर मुख करके कहा, "ओ३म् नारायण हरि।"

स्वामीजी को दुबारा कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आवाज सुनते ही पुष्करिणी के दूसरी ओर से एक दासी भागती हुई आयी और हाथ जोड़कर कहने लगी, "भगवन्! इस चौकी पर विराजिये। यह स्वच्छ जल है। इससे हाथ-पाँव धो लीजिये। अभी भोजन उपस्थित होता है।"

योगेश्वरानन्द को यह सब जानकर विस्मय हो रहा था। स्वामीजी ने अपना अंगोछा, दण्ड, कमण्डलु आदि स्फटिक की चौकी पर रखे और फिर कमण्डलु लेकर पुष्करिणी से जल निकाल हाथ-पैर धोने लगे। हाथ-पाँव धोकर वे चौकी के समीप आये ही थे कि स्वर्ण थाल में दो रोटी और मिष्ठान्न आदि लिए दूसरी दासी खड़ी दिखाई दी।

योगेश्वरानन्दजी ने हाथ पसारकर कहा, "इसमें रख दो।"

दासी ने थाल में से रोटी उठाई और स्वामीजी के हाथ में रख दी। उस पर मिष्ठान्न भी रख दिया। फिर सब्जी दिखाकर दासी बोली, "महाराज, इसे कहाँ रखूं?"

"क्यों, रोटी पर ही रख दो।"

"महाराज! इससे तो मिष्ठान्न बिगड़ जायेगा।"

"मिष्ठान्न को कुछ नहीं होगा।"

दासी समीप खड़े महाराज के मुख पर देखने लगी। उसी समय एक सुन्दरी आभूषणों से सुसज्जित सुन्दर श्वेत परिधान में वहाँ उपस्थित होकर बोली, "लीला! यह थाल मुझको दो। महाराज जब मोदक खा लेंगे तो मुख नमकीन करने के लिए साग दे दूंगी। तुम जाकर जल ले आओ।"

स्वामीजी ने प्रश्नभरी दृष्टि से महाराज प्रवरसेन की ओर देखा। महाराज उनका आशय समझ गये थे। उन्होंने कहा, "भगवन्! यह मेरी ज्येष्ठ पुत्रवधू है।"

स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "शतायु हो, धन-धान्य, सुख-समृद्धि और पुत्र-पौत्रों से संयुक्त सुखी जीवन का भोग करो।"

इतना कहकर स्वामीजी समीप ही चौकी पर बैठ गये। हाथ में रखी रोटी को मोदक के साथ खाने लगे। बहू समीप ही थाल लिए खड़ी रही।

दो पल में स्वामीजी ने दो रोटियाँ समाप्त कर लीं। उस समय दो दासियाँ आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयीं। एक चाँदी के लोटे में जल लिए हुए थी और दूसरी स्वर्ण थाल में रोटी और मिष्ठान्न लिए हुए।

स्वामीजी ने रोटी समाप्त कर कमण्डलु आगे करते हुए कहा, "भगवती! इस में जल डाल दो। अब और भोजन नहीं चाहिए।"

"महाराज! यह तो बहुत ही कम है।"

"नहीं लक्ष्मी! इस शरीर के लिए इतना ही पर्याप्त है।"

स्वामीजी ने कमण्डलु में जल लिया और फिर पीने लगे। जल पीकर और कुल्ला कर स्वामीजी ने पुनः आशीर्वाद देते हुए कहा, "धन-धान्य और पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न सुखी जीवन का भोग करो।"

प्रवरसेन बोला, "भगवन्! आपकी वाणी सार्थक हो। अभी तक यह निःसन्तान है।"

"नहीं महाराज! यह लक्ष्मी माँ बनने के मार्ग पर चल रही है।" स्वामीजी ने पुत्रवधू की ओर देखकर कहा।

युवराज्ञी तब तक वहीं खड़ी थी। उसने हाथ का थाल भूमि पर रखा और स्वामीजी के चरणों के समीप भूमि पर अपना माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया।

प्रवरसेन जिज्ञासा से अपनी पुत्रवधू को देख रहा था, किन्तु वह उधर नहीं देख रही थी। उसने प्रणाम किया और लज्जित-सी वहाँ से अपने प्रासाद की ओर चली गयी।

उसके जाने पर स्वामीजी ने पूछा, "युवराज्ञी की आयु कितनी है?"

"भगवन्! इसका विवाह हुए दस वर्ष से अधिक हो गये हैं। अभी तक इसके सन्तान नहीं हुई। छोटी पुत्रवधू दो सन्तानों को जन्म दे चुकी है।"

"परन्तु इसकी सन्तान तो कश्मीर-नरेश बनेगी।"

प्रवरसेन स्वामीजी की भविष्यवाणी पर प्रसन्न और सन्तुष्ट था। योगेश्वरानन्द बोले, "अब मैं उस विदेशी साधु के पास जा रहा हूँ। वहीं से मैं मार्तण्ड के लिए चला जाऊँगा। यदि आपने वहाँ लोगों की भीड़ न भेजी तो वहाँ रहकर स्वाध्याय और तपस्या करने का विचार है।"

"परन्तु महाराज! आपने युवरानी को जो आशीर्वाद दिया है, उसके सुफली होने पर तो आप कश्मीर में छिपकर नहीं रह सकेंगे। पूर्णिमा के चन्द्र के समान आपके दर्शनों के लिए कश्मीर की जनता उमड़ पड़ेगी।"

"उससे मैं निपट लूंगा। मैं राज्याधिकारियों की भीड़-भाड़ वहाँ नहीं चाहता।"

"जो आज्ञा भगवन्!"

योगेश्वरानन्द ने हाथ उठा प्रवरसेन को आशीर्वाद दिया--"यशस्वी बनो, आनन्द भोगो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने स्वामीजी के चरणस्पर्श किये।

प्रवरसेन को वहीं खड़ा छोड़ स्वामीजी अपना दण्ड-कमण्डलु उठा प्रासाद से बाहर चल दिये।

प्रवरसेन और उसकी रानी तथा पुत्रवधुएँ स्वामीजी को छोड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे प्रासाद के द्वार तक आये, किन्तु स्वामीजी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

संन्यासी यशु सरोवर के दूसरे छोर पर था। उसकी कुटिया भी आसपास की कुटियों से विलक्षण ही थी। आसपास के झोंपड़े घास-फूस के बने थे, किन्तु उसकी कुटिया पत्थर की बनी हुई थी। वह दूर से ही अलग पहचानी जाती थी। स्वामी योगेश्वरानन्दजी ने उसकी कुटिया पर पहुँचकर 'हरि ओ३म' का नाद किया। उनका नाद सुनकर फटे-पुराने कपड़े पहने एक गृहस्थ उस कुटिया से बाहर आया।

उसने कहा, "महाराज! भीतर पधारिये। सन्तजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"कब से?"

"आज प्रातःकाल से ही वे कह रहे थे कि एक महापुरुष भटकता हुआ इधर आ रहा है।"

योगेश्वरानन्द समझ गये कि यह साधु दीर्घ-दृष्टि वाला है। इससे वे यही समझे कि उस साधु ने कुछ योगाभ्यास तो अवश्य किया है।

स्वामीजी भीतर कुटिया में प्रविष्ट हुए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक कृशकाय व्यक्ति दाढ़ी-मूंछ बढ़ाये फर्श पर मृगचर्म बिछाकर बैठा हुआ है।

स्वामीजी ने उसे प्रणाम किया तो उसने ध्यान से योगेश्वरानन्दजी के मुख पर देखा और फिर अपने स्थान पर बैठे ही अपना माथा भूमि को स्पर्श कर उसने भी प्रणाम कर दिया।

योगेश्वरानन्द बोले, "भगवन्! आपके उपासक ने मुझे कहा है कि आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप मेरे विषय में क्या जानते हैं? जहाँ तक मुझे स्मरण है, हम दोनों इससे पूर्व कभी कहीं मिले नहीं हैं।"

"आपका कहना यथार्थ है। मुझे तो आपके विषय में आज से तीन मास पूर्व एक वैरागी महाराज ने बताया था। वे वैरागी पहले भी मुझे मेरे बाल्यकाल में मिले थे, किन्तु मैं भूल गया था और उनको जब यहाँ अब देखा तो मैंने उनको पहचाना नहीं। आठ-नौ मास पूर्व वे मुझसे मिलने आये थे, तब मैंने उनको नहीं पहचाना।

"इस बार जब वे दोबारा आये तो उन्होंने मुझे मेरे बाल्यकाल की कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाएँ बताईं तो फिर मैंने उनको पहचाना था। वे सप्ताह में दो-तीन बार मुझे मिलते रहते हैं।

"उन्होंने ही बताया कि मेरे कल्याण में रुचि रखने वाले एक महापुरुष मुझसे मिलने के लिए आने वाले हैं। उनकी सूचना के आधार पर ही मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आज प्रातः मेरे मन ने कहा कि आप आज आ रहे हैं।"

"आप तो बहुत कुछ जानते हैं। परन्तु मैं तो आपसे एक प्रयोजन विशेष से मिलने के लिए आया हूँ। वह प्रयोजन दो प्रकार का है। एक है आपके वर्तमान के विषय में और दूसरा है आपके भविष्य के विषय में। वर्तमान तो भूत पर आधारित होता है। इस कारण वर्तमान के विषय में यह जानना कि वह ठीक दिशा में है अथवा मिथ्या दिशा में, यह भूत को जानकर ही हो सकता है।

"उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप कैलाश की यात्रा पर जा रहे हैं। उसके लिए आपको यह जानना आवश्यक है कि कैलाश किस ओर को है। फिर आपको यह जानना होगा कि आप किधर खड़े हैं। इसके लिए भी यह जानना आवश्यक होगा कि आप किधर से आये हैं और वर्तमान में किस प्रकार पहुँच गये हैं।"

साधु मुस्करा रहा था। वह कहने लगा, "वर्तमान का यदि ठीक ज्ञान हो जाए तो भूत को जानने की आवश्यकता नहीं रहती।"

"आप ठीक कहते हैं। वर्तमान का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर भूत के ज्ञान की आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु मैंने तो यह कहा है कि वर्तमान को जानने के लिए भूत का जानना आवश्यक है।

"आप यहाँ श्रीनगर में हैं। आप यहाँ क्यों हैं? आप यहाँ के निवासी तो हैं नहीं। फिर आप यहाँ क्यों आये? आप यहाँ रह क्यों रहे हैं? यह स्थान कैलाश पर्वत से कितनी दूर है? यह वर्तमान की स्थिति और स्थान जानने से ही विदित हो सकता है।"

सन्त निरुत्तर हो रहा था। उसने कहा, "परन्तु भगवन्! मैं वर्तमान को तो जानता हूँ। मैं इस संसार में भँवर मात्र हूँ।"

"आपके जीवन का भँवर किसमें पड़ रहा है?"

"इस व्योम में।"

"और वह व्योम क्या है? व्योम के विषय में भी तो ज्ञान होना चाहिए। भँवर तो आप हो गये। परन्तु वह भँवर किसमें पड़ रहा है और क्यों पड़ रहा है?"

"इसी जगत् में कुछ भी गतिशील नहीं होता। यदि उसमें कोई गति उत्पन्न करने वाला न हो तो।"

"भगवन्! यही बात उस वैरागी ने भी पूछी थी। मैं उसको भी उत्तर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे पाया था। उस समय उन्होंने मेरे बाल्यकाल की कथा का वर्णन किया था।

"उन्होंने मुझे बताया कि मेरे जन्म से कुछ समय पूर्व से ही वे त्रिविष्टप में रह रहे थे। एक दिन प्रातःकाल के समय किसी ने उनको बताया कि इस पृथ्वी पर एक महात्मा आने वाला है। उनको आदेश हुआ कि वे उस महात्मा की देख-रेख करें और उसकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करें। उन्होंने उस आदेश का पालन करने के लिए त्रिविष्टप से मेरे जन्म-स्थान तक की यात्रा की।

"उन्होंने बताया कि वे मेरे जन्म-स्थान पर मेरे जन्म से कुछ घड़ी पूर्व पहुँचे थे तथा मेरा जन्म होने के कुछ क्षण उपरान्त उन्होंने मुझे देख लिया था। उस समय उन्हें मैं परमात्मा की विशिष्ट विभूति लगा था।

"वे मेरे बाल्यकाल में वहाँ रहे, तदपि वे मुझे शिक्षा नहीं दे सके। उसका कारण यह था कि लोकापवाद के कारण मेरी माँ उनके साथ जाना नहीं चाहती थी। मैं भी अपनी माँ को छोड़कर इधर उनके पास नहीं आ सका था।

"मैं जब पाँच-छः वर्ष का ही था कि उन्होंने मुझे एक चमत्कार दिखलाया था। वह मुझे आज तक स्मरण है। हमारे गाँव के सहस्राधिक व्यक्ति उनको मेरी माता से दूषित सम्बन्ध रखने वाला पापी समझकर उनकी हत्या करने के लिए आ गये। वे उस मकान पर निरन्तर पत्थर फेंक रहे थे, जहाँ पर वे रह रहे थे। वे पत्थर मार-मारकर उनकी हत्या कर देना चाहते थे।

"किन्तु एक भी पत्थर उनको लगा नहीं था। हत्या करना तो दूर की बात थी। मैं और मेरी माता अपने मकान के झरोखे से यह सब देख रहे थे। वैरागीजी उस मकान के आँगन में खड़े थे और गाँववासी उन पर पत्थरों की वर्षा कर रहे थे। हम विस्मय से यह देख रहे थे कि एक भी पत्थर उनके समीप नहीं गिरा था।

"ग्रामवासी निशाना साधकर पत्थर फेंकते थे, किन्तु प्रत्येक पत्थर या तो इनकी दायीं ओर दस पग पर या बायीं ओर दस पग पर जाकर गिरता था। जब गाँव वालों ने उनके चारों ओर पत्थरों का ढेर देखा और उस ढेर के मध्य में उनको मुस्कराता हुआ पाया तो गाँव वाले डर गये। वे डरकर अपने घरों में घुस गये। उनको भय यह था कि वह कोई शैतान हैं और गाँव वालों से इसका बदला लेंगे।

"इस घटना के कुछ दिन बाद ही वे वैरागी वहाँ से चले आये। उसके कुछ दिन बाद ही स्थानीय शासन नवजात शिशुओं और फिर पाँच वर्ष की आयु के बालकों की हत्या की योजना बनाने लगा और मेरी माता को इसका ज्ञान हुआ तो मेरी माँ और नाना मुझे लेकर मिस्र की ओर चले गये।

"सात-आठ वर्ष वहाँ रहकर मेरी माता और नाना फिर वापस अपने गाँव आ गये। वहाँ मेरे विवाह की तैयारियाँ होने लगीं तो मुझे वैरागी की बात स्मरण हो आयी। उन्होंने मुझे बताया था कि वे भारत के रहने वाले हैं और भारत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आत्मरक्षा की विद्या सिखायी जाती है।

"मैं विवाह करना नहीं चाहता था। और अवसर पाकर उस विद्या को सीखने की लालसा से मैं घर से भागकर यहाँ चला आया। यहाँ मैं उन वैरागीजी की खोज करता रहा। उस अवसर पर मुझे एक अन्य व्यक्ति मिल गया। उन्होंने मुझे यह विद्या सिखाने का वचन दिया तो मैं उनके साथ हो लिया।

"उन्होंने मुझे योग-क्रियायें सिखानी आरम्भ कर दीं। मैंने कुछ ही क्रियायें सीखी थीं कि उससे पहले ही उन योगीजी महाराज का देहान्त हो गया। मुझे बड़ी निराशा हुई और उसी निराशा में मैं अपने घर को लौट गया।

"जो कुछ मैंने उन योगिराज से सीखा था वही मैं अपने देश के लोगों को सिखाने लगा। कुछ लोग मेरी बात सुनते थे। वे उसे ठीक भी मानते थे। परन्तु करते वे वही थे जो परम्परागत उन्होंने अपने माता-पिता से सीखा था।

"मुझे यह सब बुरा लगा और मुझे क्रोध आने लगा। एक दिन मैंने मन्दिर के पुजारियों के विरुद्ध कटु वचन भी कह दिये। फिर मैं नित्य उनकी आलोचना करने लगा। युवक वर्ग मेरी बातों का समर्थन करता था इसलिए मैंने उनका नेता बन मन्दिरों को उजाड़ने के लिए उनके बाहर बनी दुकानों को उजाड़ना आरम्भ कर दिया। वे युवक उन दुकानों को लूटने लगे। मन्दिर के पुजारियों ने मेरे विरुद्ध विद्रोह और लूट-पाट का अभियोग लगा दिया।

"मुझे बन्दी बनाया गया। फिर मुझ पर न्यायालय में अभियोग लगाया गया। उस अभियोग में मुझे मृत्युदण्ड की घोषणा की गयी।

"वहाँ की प्रथानुसार मुझे मृत्युदण्ड दिया गया। लकड़ी के तख्ते पर आदमी को लेटा दिया जाता है और उसके हाथ-पाँव में कील ठोककर तख्ते को खड़ा कर दिया जाता है। इस प्रकार दण्डप्राप्त अपराधी उन कीलों के सहारे तख्ते पर लटका रहता है और शनैः-शनैः उसका शरीर शिथिल और फिर निर्जीव हो जाता है।

"मेरे साथ भी यही किया गया। किन्तु जब मेरे वे हाथ-पैरों में कील गाड़ने लगे तो मैंने स्वयं को समाविस्थ कर लिया। अधिकारियों ने मुझे मरा समझकर शूली से उतारकर वहाँ की प्रथानुसार एक सन्दूक में बन्द किया और भूमि में गाड़ दिया।

"मेरे शिष्यों में से किसी को मेरी समाधि के विषय में ज्ञान था। उसने यह बात अपने साथियों तथा मेरी माता और सम्बन्धियों को बताई तो उसी रात को चोरी-चोरी मेरी समाधि को खोदा गया और मुझे सन्दूक से निकालकर बाहर रख दिया।

"जब मैं सचेत हुआ तो मुझे स्थिति से अवगत कराया गया और मुझसे कहा गया कि मैं अपने देश से तुरन्त पलायन कर किसी विदेश में चला जाऊँ। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय फिर मुझे भारत का स्मरण आया और अपनी शेष विद्या प्राप्त करने की दृष्टि से मैं इस ओर चल दिया।

"परन्तु मुझे कोई ऐसा नहीं मिला जैसे वे वैरागी थे, जिनकी कि मेरे गाँव वाले मिलकर भी हत्या नहीं कर सके थे।

"संयोग की बात है कि एक मास पूर्व वे वैरागीजी इधर आये थे। मैंने जब उनके सम्मुख अपनी जिज्ञासा व्यक्त की तो वे कहने लगे कि उनमें तो यह सामर्थ्य कई जन्मों के निरन्तर प्रयास से आयी थी।

"किन्तु मुझे न तो पुनर्जन्म पर विश्वास है, न ही जन्म लेने वाले आत्मा पर। मुझे यह भी ज्ञान नहीं कि इस संसार का कोई रचयिता भी है।

"उस दिन के बाद वे वैरागीजी नित्य ही एक वैरागी को यहाँ मेरे पास भेजते रहते हैं। वह मुझे एक विद्या पढ़ाया करते हैं। उस विद्या को वे अध्यात्म-विद्या कहते हैं।

"इस विद्या को सीखते हुए अभी बीस-बाईस दिन ही हुए हैं।

"महाराज! यह है मेरा भूत और वर्तमान। अब आप ही बताइए कि इस से आप क्या समझ पाये हैं और मेरा भविष्य क्या है?"

स्वामी योगेश्वरानन्द ने दो क्षण तक आँखें मूँदीं और फिर कुछ विचार कर कहने लगे, "इस जन्म में तो आप वह विद्या प्राप्त कर नहीं सकेंगे, क्योंकि आप की आयु अधिक लम्बी नहीं है। तदपि आप जो कुछ इस जन्म में सीख लेंगे वह अगले जन्म में काम आयेगा। इसीलिए आपको यत्न करते रहना चाहिए। वृद्धावस्था में किया गया यत्न भी व्यर्थ सिद्ध नहीं होता। समय पाकर किसी-न-किसी जन्म में वह पूर्ण हो जायेगा।"

"तो फिर?"

"मैं उन वैरागी से मिलकर कहूँगा कि वे इस प्रकार की व्यवस्था कर दें कि जिससे आपकी शिक्षा-दीक्षा चलती रहे।"

"जब तक स्वअस्तित्व का ज्ञान न हो तब तक उसकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं हो सकता।"

"देखो सन्त! मैं तुम्हें बताता हूँ कि भूल कहाँ हुई है। तुम्हारे आचरण में यह भूल हुई कि तुमने स्वयं को समझाने का अधिकारी मान लिया, परन्तु तुमने समझाने के साथ दूसरों को विवश करना भी आरम्भ कर दिया था। यह मंदिर वालों अथवा मन्दिर के बाहर बैठे लोगों का कर्तव्य नहीं था कि तुमने अथवा किसी ने भी जो बात कही उसको वह अवश्य ही माने।

"तुम किसी के स्वभाव को बलपूर्वक बदल नहीं सकते। इस भूमण्डल में बल प्रयोग करने वाले कार्यसिद्धि नहीं कर सकते। इस अवस्था में तुम्हारा कार्य केवल प्रेरणा देना ही हो सकता था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशु ने बीच में ही कहा, "परन्तु भगवन् ! पुजारी लोग यह मिथ्यावाद फैला रहे थे कि जो मन्दिर के सम्मुख देवता को भेंट-पूजा चढ़ायेंगे, परमात्मा उन के प्रति कृपादृष्टि रखेगा। यह असत्य था। यह सरलचित्त व्यक्तियों के साथ छलना थी।"

"हाँ, यह छलना थी और उस छलना को प्रकट करना तुम्हारा अधिकार था; परन्तु तुम उसकी प्रेरणा ही दे सकते थे, बल का प्रयोग करने का तुम्हारा अधिकार नहीं था।

"प्रेरणा की अपेक्षा बल-प्रयोग करके तुमने पाप किया था। उसका फल भी तुमको भोगना पड़ा है।

"जीव कर्म करने में तो स्वतन्त्र है, किन्तु उसके कर्मों का फल देने वाला तो परमात्मा है। फल देने वाले तुम भी नहीं थे और न उन मन्दिरों के पुजारी ही फल देने वाले थे।"

"परन्तु राज्य को दण्ड देने का अधिकार किसने दिया है ?"

"राजा दण्ड देने के लिए नहीं बना है। उसका कार्य तो शान्ति से जीवन-यापन करने वालों की रक्षा करना है। यदि अपराधी अपराध करना न छोड़े तो राज्य उसको मृत्युदण्ड भी दे सकता है।

"मृत्युदण्ड तो वैसे ही है, जैसेकि कोई खड्ग किसी मूर्ख के हाथ लग जाए और मूर्ख यह जाने बिना कि जिस पर वह उस खड्ग का प्रहार करने वाला है वह इसके योग्य है भी अथवा कि नहीं, उस पर प्रहार कर दे, ऐसी अवस्था में उसके हाथ से खड्ग छीन लेना पड़ता है।

"मृत्युदण्ड तो बस यही है। यह शरीर, जिससे वह दूसरों पर बलात्कार करने लगता है, उससे शरीर छीन लेना खड्ग छीन लेने के समान ही है।

"दण्ड अपराधी को कष्ट देने के लिये नहीं होता। वह निरपराधों की रक्षा के लिये होता है। दण्ड भी उतना ही दिया जाना चाहिये कि जितने से पाप को रोका जा सके।"

सन्त यशु मुख देखता रह गया। योगेश्वरानन्द ने पुनः कहा, "मैं तो इसके बाद तुमको मिल नहीं सकूँगा। वैरागीजी से मिलते रहा करो तो तुम्हारा लाभ होगा।

"तुम्हारी यह कुटिया अन्धकारमय है। इसमें कहीं वातायन का होना आवश्यक है। इससे प्रकाश और वायु दोनों भीतर आयेंगे। परमात्मा ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रकाश दिया है, उसका लाभ नहीं उठाओगे तो अज्ञानी ही रह जाओगे।

"यदि तुम चाहो तो यहाँ के नरेश से कहकर तुम्हारे लिये स्वच्छ और वायु-युक्त सुन्दर आवास बनवा दूँ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राज्य आपकी बात मान लेगा ?"

"उसकी तुममें रुचि है, इसलिये वह तुम्हें सुखी रखने का हर प्रयत्न कर सकता है।"

"उसकी मुझमें क्यों रुचि है ?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि वैरागी आनन्द ने यहाँ के महाराज को तुम्हारी जीवन-कथा बताई होगी। इस कारण वह तुमको परमात्मा की विशेष विभूति समझकर सुखी रखने का यत्न करेगा।"

यशु विस्मय कर रहा था। स्वामी योगेश्वरानन्द वहाँ से उठ खड़े हुए। उन्होंने एक बार फिर यशु से कहा, "स्वामी आनन्द वैरागी की बात को सुनो, उस पर मनन करो। यदि उसको उपयुक्त समझो तो तदनुसार आचरण करना आरम्भ कर दो। उसी से तुम्हारी उन्नति सम्भव है।"

इतना कहकर स्वामी योगेश्वरानन्दजी उसकी कुटिया से बाहर निकलकर अपने मार्ग पर चल दिये।

: ४ :

वह रात स्वामीजी ने श्रीनगर के शिव मन्दिर में व्यतीत की। दूसरे दिन प्रात:काल जब स्वामीजी मार्तण्ड को जाने के लिये मंदिर के द्वार से बाहर निकलने लगे तो द्वार के सम्मुख उन्हें राजकीय रथ खड़ा दिखाई दे गया।

स्वामी योगेश्वरानन्द ने उस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। कदाचित् उन्होंने समझा कि कोई दर्शनार्थी आया होगा। उन्हें उससे क्या सरोकार ! स्वामीजी जब आगे बढ़ने लगे तो रथ का सारथी उनके सम्मुख नतमस्तक होकर कहने लगा, "भगवन् ! महाराज ने मुझे आपकी सेवा के लिये भेजा है।"

"क्या सेवा करने के लिये ?"

"आपको इस रथ पर आरूढ़ कराकर मार्तण्ड तक पहुँचाने के लिये।"

"परन्तु मैं तो अभी कोसों-कोस चल सकता हूँ। इन पैरों के आश्रय तो मैं पाटलिपुत्र से यहाँ तक पहुँच गया हूँ, उसी प्रकार मार्तण्ड तक भी पहुँच जाऊँगा।"

"महाराज ने निवेदन किया था कि वहाँ एक कार्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। उनका कहना था कि आपकी सुरक्षा का ध्यान करते हुए आपको शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचा दिया जाए।"

"कितनी देर में पहुँचा दोगे ?"

"भगवन् ! अब तक दो घड़ी दिन बीत चुका है। मैं समझता हूँ कि मध्याह्न के भोजन तक मैं आपको मार्तण्ड पहुँचा दूँगा।"

"अच्छा, चलो।"

स्वामीजी रथ पर आरूढ़ हुए तो रथ हवा से बात करता हुआ मार्ग पर सरपट दौड़ चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्तण्ड मन्दिर के कर्मचारी स्वामीजी की कुटिया को ठीक करवा ही रहे थे कि स्वामीजी का रथ वहाँ जा पहुँचा। एक साधु महात्मा उस कार्य का निरीक्षण कर रहे थे।

पण्डित शिवकुमार का यह भवन पाँच आगार वाला था। स्वामी योगेश्वरानन्द के आने का समाचार वहाँ महाराज ने पहले ही भिजवा दिया था और निर्देश कर दिया था कि मध्याह्न से पूर्व वहाँ सब व्यवस्था ठीक कर दी जाए।

सन्देश मिलते ही मार्तण्ड मन्दिर के अध्यक्ष स्वामी निर्मलानन्द गिरि सेवकों को साथ लेकर उसकी सफाई आदि करवा रहे थे। मध्याह्न तक वह कार्य समाप्त हो गया था।

स्वामी निर्मलानन्द कुटिया का निरीक्षण-परीक्षण कर सन्तोष अनुभव करने ही लगे थे कि उसी समय स्वामी योगेश्वरानन्द को लिये हुए रथ वहाँ पर पहुँच गया।

रथ की आहट पाकर स्वामी निर्मलानन्द तथा अन्यान्य सेवारत कर्मचारी मन्दिर से बाहर आ गये। स्वामी निर्मलानन्द ने जब स्वामी योगेश्वरानन्द को रथ से नीचे उतरते देखा तो विस्मय में उनका मुख देखते रह गये। क्षण-भर किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रहे और फिर तुरन्त स्वामीजी के पास जाकर उनके चरण-स्पर्श किये।

स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "किसके चरणस्पर्श कर रहे हो महाराज!"

"इस कुटिया में निवास करने वाले महात्मा के। परन्तु मुझे विस्मय इस बात का है कि मैं ठीक समझ पाया हूँ अथवा कि नहीं।

"मुझे यह सूचना मिली है कि एक सौ बीस वर्ष के एक वृद्ध संन्यासी महाराज इस कुटिया में कुछ दिन निवास करने के लिये पधार रहे हैं। तदनुसार आप वह तो प्रतीत होते नहीं, किन्तु आपको राजकीय रथ से उतरते देखकर सन्देह भी नहीं किया जा सकता।

"भगवन्! यही मेरे विस्मय का कारण है। अर्थात् आप ही वे संन्यासीजी महाराज हैं अथवा वे और आप दो भिन्न-भिन्न हैं?"

योगेश्वरानन्द ने कहा, "वत्स! विस्मय त्याग दो। हूँ तो मैं वही जिसके लिये आपको कुटिया ठीक करने का निर्देश दिया गया है। शेष बातें समयानुसार समझ में आने लगेंगी।"

निर्मलानन्द ने पूछा, "तो महाराज! आप स्नान करेंगे अथवा भोजन की व्यवस्था की जाए?"

"स्नान तो मैं श्रीनगर में ही कर आया था, केवल हाथ-मुख धो लूँगा। किन्तु आप भोजन की क्या व्यवस्था करेंगे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ! हमें आज्ञा है कि आप जब द्वार पर खड़े होकर 'नारायण हरि' का नाद करें उसी समय पाचक आपकी सेवा में भोजन उपस्थित कर दे ।"

"और हमने यदि 'नारायण हरि' का निनाद न किया तो ?"

"तो महाराज, यह समझ लिया जायेगा कि आप तृप्त हैं और भोजन की इच्छा नहीं है ।"

योगेश्वरानन्द हँस पड़ा । वह समझ रहा था कि राज्य कर्मचारी यही तो किया करते हैं । बिना विचार किये उन्हें आज्ञा का पालन करना होता है । यही कारण था कि वह किसी ब्राह्मण अथवा संन्यासी को राज्य का वेतनभोगी सेवक होने को दोषपूर्ण मानता था ।

स्वामीजी को मार्तण्ड में पहुँचे एक सप्ताह ही हुआ था कि दूर-दूर से लोग बहुत बड़ी संख्या में उनके दर्शनों के लिये आने आरम्भ हो गये । यह उनके लिये नित्य का कार्य हो गया था कि आधा प्रहर दिन बीत जाने पर वे अपनी कुटिया से निकल मार्तण्ड मन्दिर के पुस्तकालय में अध्ययन के लिये जाते । उस समय कुटिया से पुस्तकालय तक का पूर्ण मार्ग दोनों ओर से जनाकीर्ण होता था । लोग उनके दर्शन करने के लिये एकत्रित हो जाते थे ।

स्वामी योगेश्वरानन्द ने इस अवसर पर लोगों से बात करनी आरम्भ की तो फिर तो नित्य ही उनको किसी-न-किसी से बात करनी पड़ जाती थी । उसके बाद यह भी हुआ कि नित्य स्वामीजी उस समय एक घड़ी-भर वहाँ पर खड़े होकर प्रवचन करने लगे ।

स्वामीजी के प्रवचन में अधिकांशतया युद्धकाल में जनता के कर्तव्य की बात होती थी । यह तो स्वामीजी को एक-दो दिन में ही ज्ञात हो गया था कि उनके दर्शन करने वाले केवल स्थानीय जन ही नहीं होते थे अपितु उनमें से बहुत-से ऐसे भी होते थे जो दूर-दूर से वहाँ आते थे ।

मार्तण्ड पहले से ही तीर्थ-स्थान माना जाता था, इसलिये वहाँ नित्य ही बाहर से आने वालों का ताँता लगा रहता था । परन्तु ज्यों-ज्यों स्वामीजी के जीवन के कृत्यों की चर्चा श्रीनगर तथा समस्त कश्मीर राज्य में फैलने लगी त्यों-त्यों उनके दर्शनों के लिये आने वालों की संख्या में वृद्धि होती गई ।

इस प्रचार का श्रीगणेश महाराज प्रवरसेन ने स्वयं आरम्भ कर दिया था । उसके अतिरिक्त वैरागी साधु भी घर-घर जाकर यह कहते थे कि मार्तण्ड में एक ऐसे साधु विराजमान हैं जो कि अद्वितीय विद्वान् और योगी हैं । इसके कारण मार्तण्ड में भीड़ बढ़ती जा रही थी ।

स्वामीजी नित्य प्रवचन में कहा करते थे कि राज्य तो जनता के धर्म-कर्म की रक्षा के लिये होता है । इसलिये राज्य की रक्षा करना जनता का कर्त्तव्य है । मृत्यु से डरकर धर्म और नित्य-कर्म को छोड़ देना महान् भूल है । मरने से तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरन्त नया जन्म मिल जाता है। परन्तु जो कर्म करना छोड़ देता है उसको नरक मिलता है।

स्वामीजी कहते कि नरक कहीं अन्यत्र नहीं है। वह इस पृथ्वी पर ही है। ये कीट-पतंग और पशु-पक्षी की योनियाँ ही नरक हैं। इन योनियों में जीवन नियन्त्रित रहता है। नियन्त्रण कर्मफलों का होता है। कर्मफलों के अधीन जीव एक नियमित जीवन ही पालन करता है। इसमें नित्य-कर्मों के अतिरिक्त कर्म करने की प्राणी को स्वतन्त्रता नहीं होती। इस कारण उन योनियों को नरक अर्थात् निम्न योनियाँ कहा है।

उस समय देश में जो युद्ध हो रहा था उसकी चर्चा भी स्वामीजी यथावसर कर दिया करते थे, तब राजनीति के आधार पर भी चर्चा हो जाया करती थी।

स्वामीजी कहते कि राज्य प्रजा की सम्पत्ति है। अतः इसकी रक्षा का दायित्व भी प्रजा का ही है। राजा अपना अथवा पराया इस कारण होता है क्योंकि वह प्रजा को अधिक स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत करने का अवसर देता अथवा नहीं भी देता है। यह अवस्था तभी प्राप्त हो सकती है जब राजा और प्रजा की विचार-धारा समान ही हो। विचार की इस दिशा को धर्म कहते हैं। राजा का धर्म और प्रजा का धर्म समान न हो तो प्रजा को राज्य अपना राज्य नहीं समझना चाहिये।

विचार की दिशा में केवल राजा का विधि-विधान ही नहीं अपितु राजा और प्रजा में स्वतन्त्र कर्म की दिशा भी सम्मिलित है।

सरल भाषा में यह कहा जा सकता है कि राज्य और प्रजा का कार्य समान होना चाहिये। इस समानता में आज्ञा से अथवा नियन्त्रण से बलपूर्वक थोपने से समानता प्रकट नहीं होती। वह समानता नहीं होती है, वरन् बलशाली की आज्ञा का दुर्बल पर थोपना होता है।

जो व्यवहार हृदय से विचार कर स्वीकार किया जाए वह ही अपना विचार माना जाता है और वह राजा और प्रजा में समान हो सकता है।

इस प्रकार प्रतिदिन प्रवचन होता रहता था।

स्वामी योगेश्वरानन्द की ख्याति और उनका राजा और प्रजा में समानता का विश्लेषण राज्य-भर में चर्चा का विषय बनता जा रहा था। इसके परिणामस्वरूप प्रजा पैदल ही मार्तण्ड तीर्थ की यात्रा के लिये आने लगी। देश के धनी-मानी लोग अपने-अपने रथों में आरूढ़ होकर इस तीर्थ की यात्रा के लिये आते रहते थे।

कश्मीर-नरेश तथा उनके परिवार के लोग स्वामीजी के आने के बाद निरन्तर वहाँ की यात्रा करते रहते थे। इस अवधि में प्रवरसेन के बड़े पुत्र के घर पर पुत्र उत्पन्न हुआ। युवराज्ञी ने इसे स्वामीजी के आशीर्वाद का प्रसाद समझा और ज्यों ही वह अपने प्रसव के उपरान्त स्वस्थ हुई तो स्वामीजी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये मार्तण्ड जा पहुँची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार प्रजा और राजा सभी स्वामीजी के दर्शन और उपदेश सुनने के लिये वहाँ आते थे और फिर उनके विचार सम्पूर्ण देश में प्रसार पा जाते थे।

इसी प्रकार एक दिन आनन्द वैरागी भी आ गया। उसने स्वामीजी को युद्ध की पूर्ण स्थिति से अवगत कराया। उसके वैरागियों का युद्धभूमि के साथ सीधा सम्पर्क बना हुआ था।

आनन्द स्वामी ने युद्ध की स्थिति बताते हुए कहा, "महाराज! युद्ध आरम्भ हुए एक वर्ष से अधिक समय बीत गया है। हूणों के आक्रमण के प्रथम चरण में तो उनकी विजय होती रही थी। वे हमारे देश में भीतर तक प्रविष्ट हो गये थे। पंचनद में तो वे लवपुर तक आ धमके थे। परन्तु अब उनकी स्थिति वैसी ही है जैसी कि किसी पशु की शक्ति मानव-सामर्थ्य और बुद्धि के सम्मुख पराजित हो जाया करती है। हूण अब पराजित होने लगे हैं। इस समय वितस्ता और सिन्धु नदी के भीतरी क्षेत्रों में युद्ध हो रहा है।

"हमारा पक्ष अब प्रबल हो गया है। उसका कारण यह है कि मैदानी क्षेत्र में तो शत्रु आगे बढ़ने में सफल हो गया था, किन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में वह पिछड़ गया था। यदि वह पंचनद में आगे बढ़ गया है तो हमने कश्मीर की सेना को उसकी पीठ पर उतार दिया है। उसका परिणाम यह हुआ कि शत्रु को अपने देश से धन, जन और शस्त्रास्त्र की सहायता आनी रुक गई है। यह सबसे बड़ा कारण हो गया है कि शत्रु की देश में आगे बढ़ने की सामर्थ्य क्षीण होकर अब उसको अपने पीछे की सुधि लेने की आवश्यकता अनुभव हुई है।

"देश की जनता में जागृति के कारण शत्रु को सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा है। जनता अपनी सेना से सक्रिय सहयोग कर रही है।

"इससे यह निश्चित है कि यह आक्रमण निश्शेष हो रहा है और इसका अन्त विदेशियों से मुक्ति के रूप में ही होगा।"

सहसा योगेश्वरानन्द को सन्त यशु का स्मरण हो आया। उन्होंने पूछा, "वह विदेशी सन्त क्या कर रहा है?"

"वह तो अभी यही कह रहा है कि यह युद्ध अनावश्यक है।"

"वह इसको किस दृष्टि से अनावश्यक कहता है?"

"उसका कहना है कि शासक तो शासक ही होता है। वह चाहे अपने देश का हो अथवा विदेश का। प्रजा को चाहिये कि शासकों के मध्य होने वाले युद्ध में वह तटस्थ रहे।"

"विदेशी आक्रमण करने वालों ने जो अत्याचार किये हैं उनको किस प्रकार रोका जा सकता है?"

"वह कहता है कि देशी शासन भी तो अत्याचार करता है, वैसे ही इस समय विदेशी आक्रमण करने वाले कर रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो यह बात है !" योगेश्वरानन्द के मुख से निकल गया।

आनन्द स्वामी ने कहा, "वैसे तो दुर्बल आत्मायें सर्वत्र और सदा ही रहती हैं। यह कश्मीर घाटी की स्त्रियाँ देश के अन्य भागों से कुछ अधिक सुन्दर हैं और धनी-मानी राज्याधिकारी उनको पतित करते रहते हैं। यह संसार की सामान्य स्थिति है। उसका संकेत उसकी ओर ही है। उसको बताया गया कि विदेशी जो हमारे रीति-रिवाज को स्वीकार नहीं करते और जो देश के राजनियम को भी नहीं मानते थे वे यदि विजयी हो गये तो अत्याचार भी कर सकते हैं।

"यह युक्ति उस साधु की समझ में नहीं आती है। उसका तो यही कहना है कि कोई जाति कुछ अधिक अत्याचार करती है और कोई दूसरी जाति कम करती है। इसके आधार पर युद्ध जैसी भयंकर स्थिति क्षम्य नहीं कही जा सकती।

"यह वास्तव में बौद्ध जीवन-मीमांसा है। यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर दो जिससे कि वह प्रसन्न हो सके।

"यह जीवन-मीमांसा अवैदिक है। वह बेचारा इतिहास के ज्ञान से भी सर्वथा शून्य ही है।"

"आनन्द ! आदिकाल से दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ चली आ रही हैं। एक दैवी प्रवृत्ति है और दूसरी आसुरी प्रवृत्ति है।

"ऐसा कहा जाता है कि आदिकाल में सब लोग मिलजुलकर रहा करते थे। अपने और पराये की सीमारेखा उनको विदित थी। मैं समझता हूँ कि यह उस काल की बात है जब मानव अमैथुनीय सृष्टि की उपज था। उस अमैथुनीय सृष्टि में अधिकांशतया दैवी प्रवृत्ति के लोग ही उत्पन्न हुए थे।

"परन्तु जब मैथुनीय सृष्टि होने लगी तो देव और असुर दोनों प्रकार की प्रवृत्ति के लोग उत्पन्न होने लगे। तब से ही देवासुर संग्राम चल रहे हैं। और ये सृष्टि के अन्त तक चलते रहेंगे।

"देवताओं को अपना बीज नाश न हो, इसके लिये निरन्तर यत्न करना पड़ेगा। इससे ही संसार रहने के योग्य रहेगा और फिर लोक-कल्याण भी होगा।

"यह धर्मयुद्ध है। यदि इस भयंकर घटना से बचते-बचते इससे भी अधिक भयंकर स्थिति निर्माण होने की सम्भावना न होती तो मैं तो इस युद्ध में कभी सम्मिलित भी न होता।

"इसका परीक्षण किया जा चुका है। मुनि गौतम ने इसी दिशा में परीक्षण किया था। इतिहास बताता है कि वह परीक्षण असफल रहा था। युद्ध भी हुए, विदेशीय और आसुरी आक्रमण भी हुए, परन्तु उस नीति से सबसे बड़ी हानि यह हुई कि देश में भी लूटपाट करने वाले उत्पन्न हो गये। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि उनकी संख्या सीमा से बहुत अधिक बढ़ गयी है।

"सन्त यशु के विचार बौद्ध शिक्षा और जीवन-मीमांसा से प्रभावित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको समझाना चाहिये।"

"भगवन्! मैंने उसको बहुत समझाया है। एक वर्ष तक मैंने एक वैरागी नित्य उसको सुपथ पर लाने के लिए नियुक्त किया था। वह उसकी दूषित मनोवृत्ति को धोने का यत्न करता रहा, किन्तु सफल नहीं हो सका।

"उस वैरागी का कहना था कि उसका मस्तिष्क तो सूखे काष्ठ के समान मृतप्राय हो चुका है। वह अब ठीक नहीं हो सकता। उस वैरागी की तो यहाँ तक सम्मति थी कि महाराज को कहकर उसको बन्दीगृह में डलवा देना चाहिये।

"किन्तु मैंने इसे उचित नहीं समझा। मैं राज्य की ओर से किसी भी प्रकार के विचारों के प्रसार में प्रतिबन्ध का पक्षपाती नहीं हूँ और न ही विपक्षियों की ओर से उस पर हिंसात्मक आक्रमण के पक्ष में हूँ। मैं तो यही उचित समझता हूँ कि हमको उसकी बात छोड़कर उसके विचार सुनने वालों को समझाना चाहिये। उसको निश्शेष करने की अपेक्षा उसके दूषित प्रचार को अनुचित सिद्ध करने का यत्न किया जाना चाहिये। हमारा वैरागी अब उसको पढ़ाने के लिए नहीं जाता है। उसको जो लोग मिलने जाते हैं, हमने उनको समझाना आरम्भ कर दिया है। जहाँ तक मेरी सूचना है हमारा यह उपाय सफल सिद्ध हो रहा है।"

"ठीक है। यही वैदिक विधि है। यदि वह मौखिक प्रचार के अतिरिक्त किसी प्रकार धर्म-विरुद्ध व्यवहार करने लगे तो नागरिकों के अधिकार में उसकी चिकित्सा नहीं छोड़नी चाहिये। यह रक्षा का कार्य है। मैं समझता हूँ कि कश्मीर-नरेश अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को भली-भाँति समझते हैं। इस कारण इस सन्त के प्रति किये जाने वाले व्यवहार और आचरण को उन पर ही छोड़ देना चाहिये। उनको चाहिये कि वे इससे सावधान रहें जिससे कि उसके प्रचार के कारण देश के इस युद्ध में किसी प्रकार का विपरीत प्रभाव न हो सके।"

इस प्रकार स्वामी योगेश्वरानन्द को इस युद्ध में स्वपक्ष की गुप्त रूप से सहायता करते हुए एक वर्ष और बीत गया।

एक दिन स्वामी योगेश्वरानन्द अपने प्रातःकाल के अभ्यास से निवृत्त हो कुटिया से निकलकर पहाड़ों से ऊपर मार्तण्ड भगवान् को उदय होते देखने की लालसा से जाने लगे तो कुटिया के बाहर एक युवक खड़ा था। उस युवक ने जब स्वामीजी को अपनी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते पाया तो वह आगे बढ़ा। उसने स्वामीजी के चरणस्पर्श कर उनको प्रणाम किया और फिर बोला, "मैं आपसे कुछ परामर्श करने की लालसा से आया हूँ।"

"ठीक है, मैं एक घड़ी-भर इस प्रांगण में टहला करता हूँ। तुम मेरे साथ टहलते हुए अपने आने का प्रयोजन बता सकते हो।"

इस प्रकार दोनों कुटिया के उस प्रांगण में एक कोने से दूसरे कोने तक टहलने लगे तो साथ-साथ चलते हुए युवक ने अपना परिचय दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगवन् ! मैं महाराज कश्मीर का युवराज तोरमाण हूँ । जिस समय आप कश्मीर में पधारकर श्रीनगर में मेरे घर बालक होने की शुभ सूचना दे रहे थे उस समय मैं युद्धभूमि पर गया हुआ था। मैं उस समय अपने राज्य की सीमा पर शत्रु के वहाँ आने, फिर उसको वहाँ से भगा देने की प्रतीक्षा कर रहा था। लगभग एक वर्ष तक मैं वहाँ अपने देश की रक्षा में रहा । इस काल में मेरी पत्नी ने आपके आशीर्वाद से एक पुत्र को जन्म दिया। लगभग नौ मास की प्रतीक्षा करने पर ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि युद्ध में भारत की सेना के सर्वोच्च अध्यक्ष कुमार स्कन्दगुप्त का आदेश आया है कि मुझे सीमा पार कर शत्रु सेना के पीछे से उसके पास कुमुक को रोक देना चाहिये ।

"मैं बलूच क्षेत्र में घुस गया और सेनाध्यक्ष के आदेशानुसार युद्ध की काया पलटने में सफल हो गया। इस घटना को भी अब एक वर्ष से अधिक समय बीत गया है। आक्रमण करने वाले केवल सौराष्ट्र में सीमित रह गये हैं। उत्तरी भारत के शेष भाग से उनको खदेड़ा जा चुका है।

"अब सर्वोच्च सेनाध्यक्ष ने यह आज्ञा दी है कि भारतीय सेना अपने-अपने खेमे में लौट जाए। महाराज स्कन्दगुप्त की सम्मति है कि सौराष्ट्र की समस्या को राजनैतिक उपायों से सुलझा लेंगे।

"इस आदेश के अनुसार मैंने भी अपनी सेना को बलूच देश से लौटने की आज्ञा दी और श्रीनगर आ पहुँचा। यहाँ आकर एक नई समस्या उत्पन्न हो गयी है। मेरा छोटा भाई जो मेरे घर में सन्तान न होते देख यह समझ रहा था कि राज्याधिकार उसको और उसकी सन्तान को मिलेगा, मेरे घर सन्तान होने से निराश होकर मेरी सन्तान के विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगा है। उसने यह प्रचार आरम्भ कर दिया है कि युवराज्ञी के पुत्र का पिता मैं नहीं हूँ। वह यह घोषित कर रहा है कि यह सन्तान शंकराचार्य मन्दिर में ठहरे हुए योगिराज आनन्द वैरागी की है। इससे राज्य परिवार में विस्फोट होने की सम्भावना है।

"मेरी पत्नी ने मुझे सम्मति दी है कि मैं इस विषय में आपसे परामर्श करके अपने कर्तव्य का निर्धारण करूँ।"

यह सुनकर योगेश्वरानन्द ने पूछा, "अपनी सन्तान के विषय में तुम्हारी क्या धारणा है ?"

"महाराज ! मैं आनन्द वैरागीजी से मिला हूँ। उनका कहना है कि उनका मेरी धर्मपत्नी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी धर्मपत्नी निष्ठावान स्त्री है।"

"आनन्द वैरागी यह किस प्रकार जानते हैं ?"

"वे एक कथा बता रहे थे। मैंने राजप्रासाद के दास-दासियों से भी पूछताछ की है। मेरी पत्नी सती-साध्वी है। वह कभी राजप्रासाद से बाहर गयी ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ही कभी किसी ने आनन्द वैरागीजी को राजप्रासाद में प्रविष्ट होते देखा है।

"इस समस्या को मैंने महाराज के सम्मुख रखा था। उन्होंने मुझसे पूछा कि युद्ध पर जाने से पूर्व मैं अपनी पत्नी से कब मिला था। मैंने बताया कि मैंने युद्ध पर जाने की पहली रात ही पत्नी से सहवास किया था। तब उस तिथि से सन्तान होने की तिथि की गणना की गयी। दोनों तिथियों में ग्यारह मास और पाँच दिन का अन्तर है।

"सबका यही कहना है कि इतने दिन तक माँ के पेट में बालक नहीं रह सकता। इसका परिणाम यह हुआ है कि महाराज और परिवार के अन्य सदस्य युवराज्ञी के चरित्र पर सन्देह करने लगे हैं। वे सब उसके विरुद्ध होते जा रहे हैं।"

यह वृत्तान्त सुनकर योगेश्वरानन्द ने अनुमान लगा लिया कि यह बालक भी ब्रह्मा की अमैथुनीय सृष्टि का घटक है। परन्तु वे आनन्द से इस विषय में जानना चाहते थे।

स्वामीजी ने पूछा, "आनन्द वैरागीजी इन दिनों कहाँ हैं?"

"इस समय तो वे श्रीनगर में ही हैं। उन्होंने भी अपना केन्द्र कश्मीर से उठा दिया है और उनके सब वैरागी अपने-अपने मठों को वापस जा रहे हैं। सुना है, आनन्द स्वामीजी महाराज भी कुछ ही दिनों में कौशाम्बी को प्रस्थान करने वाले हैं।"

योगेश्वरानन्दजी सब समझ गये थे। उन्होंने कहा, "युवराज! इस समय तो इस विषय में मैं किसी भी प्रकार की सम्मति नहीं दे सकता। यदि सम्भव हो तो तुम आनन्द वैरागीजी को यहाँ ले आओ। वे ही इस समस्या का सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं। यदि उन्होंने परामर्श किया तो मैं अपनी सम्मति उनको दूँगा।"

"महाराज! आनन्द स्वामीजी मेरे कहने से यहाँ किस प्रकार आ सकते हैं?"

"वे अवश्य आयेंगे और यदि तुमने मेरा नाम लिया कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ तो वे सब काम छोड़कर यहाँ चले आयेंगे।"

तोरमाण को इससे उत्साह मिला और वह स्वामीजी को प्रणाम कर वहाँ से विदा होते हुए बोला, "मैं तुरन्त श्रीनगर जा रहा हूँ और वैरागीजी को आपकी इच्छा की सूचना दे दूँगा। यदि उन्होंने आपसे मिलने आना स्वीकार किया तो मैं भी उनके साथ ही आऊँगा।"

"ठीक है। युवराज! आनन्द वैरागी कभी असत्य भाषण नहीं करते, तो भी मैं इस बालक के सम्बन्ध में उनसे परामर्श करने के उपरान्त ही किसी प्रकार की सम्मति दे पाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवराज तोरमाण विदा हुआ। स्वामीजी दूध ग्रहण करने के लिए रसोई की ओर चल दिये। महाराज कश्मीर की ही ओर से स्वामीजी की भोजन आदि की व्यवस्था थी।

इस वार्तालाप के तीसरे दिन ही तोरमाण आनन्द वैरागी को लेकर पुनः मार्तण्ड आ पहुँचा।

सदा की भाँति जब स्वामीजी अपने अभ्यास के उपरान्त कुटिया से निकलकर टहलने जाने लगे तो तोरमाण के साथ आनन्द वैरागी को सम्मुख खड़े देखकर हँस पड़े। हँसकर बोले, "वैरागीजी महाराज! यह क्या उलझन खड़ी कर दी है?"

आनन्द ने आगे बढ़कर स्वामीजी के चरणस्पर्श किये। तोरमाण ने भी उसके बाद स्वामीजी के चरणस्पर्श किये। उसके बाद वैरागी बोले, "भगवन्! मेरा इसमें तनिक भी हस्तक्षेप नहीं है। आज से दो वर्ष से भी अधिक समय पूर्व की बात हैं। मैं एक दिन सायंकाल शंकराचार्य मन्दिर के बाहर पहाड़ी पर बैठा नगर की शोभा देख रहा था कि वैसा ही एक तारा आकाश से उतरता दिखाई दिया जैसा कि यरुशलम के आकाश पर उतरता दिखाई दिया था।

"यह मुझे अपनी दिव्य दृष्टि से प्रायः दिखायी दे जाता है। इस कारण उस दिन भी मैंने यह सामान्य बात ही समझी थी। परन्तु वह एक विशेष दिन था। शिवरात्रि का आरम्भ था। इस कारण मैं उत्सुक था कि यह ईश्वरीय विभूति किस घर में प्रविष्ट हो रही है। मैंने जानने का यत्न तो किया किन्तु जान नहीं सका।

"इस प्रकार की विभूति-युक्त आत्मायें इस संसार में आती रहती हैं। अधिकांशतया तो वे पत्नियों के अपने पतियों के सहवास के समय आती हैं। अपवादस्वरूप ही कभी बिना पति-पत्नी के संयोग के भी आ जाती हैं।

"मैं तो उस दिन की घटना को भूल भी गया था, किन्तु आज से कुछ दिन पूर्व युवराज मेरे पास आये और इन्होंने अपनी समस्या मुझे बतायी। इन्होंने कहा कि इनकी पत्नी ने इन्हें मेरे पास भेजा है।

"मैंने ध्यान लगाकर जानना चाहा कि इनकी पत्नी की समस्या क्या है। मैंने इसे अपने योगबल से जाना है। वह कौशाम्बी की कहारिन थी जिसे मैंने पुत्रवती होने की बात कही थी। इनकी धर्मपत्नी को उसने अपनी बात बतायी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस कहारिन ने ही इनकी धर्मपत्नी को मेरे इस प्रकार के ज्ञान की बात बताई है।

"मैंने इनको बताया है कि इनकी पत्नी सती-साध्वी है। मैंने यह भी बताया है कि यह सन्तान मुझसे नहीं है।

"ऐसा प्रतीत होता है कि उस कहारिन के परामर्श से ही ये श्रीमान् आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास आये हैं।

"वस्तुस्थिति कुछ ऐसी प्रतीत होती है कि यह युग-परिवर्तन का काल है और ईश्वर की ही कृपा से यह हो रहा है। ईश्वर की शक्तियाँ काम कर रही हैं।"

योगेश्वरानन्द कहने लगे, "परन्तु इस बालक के कारण तो राज्य में भयंकर विस्फोट होने की स्थिति आ गयी है?"

"इन छोटे-छोटे विस्फोटों से ईश्वरीय प्राण कर्म करने से रोका नहीं जा सकता। मैं समझता हूँ कि तोरमाण को कश्मीर छोड़कर यहाँ से मालवा चला जाना चाहिये। यह बालक भविष्य में भारत के इतिहास में महान् कार्य सम्पादन करने वाला है।

"मालवा-नरेश निस्सन्तान ही इस संसार से विदा होने वाले हैं। ये यदि वहाँ चले गये तो अवश्य वहाँ के नरेश बन जायेंगे। मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ। तदपि मैं भविष्यवाणी नहीं कर सकता। मनुष्य का स्वतन्त्र आत्मा विपरीत आचरण भी कर सकता है। वह कार्य करने में स्वतन्त्र है। यह इन पर निर्भर करता है कि ईश्वर के आदेश के अनुसार कार्य करें अथवा न करें।"

तोरमाण हँस पड़ा। वह बोला, "स्वामीजी! मेरी समझ में तो वैरागीजी की बात आयी नहीं है। और जब तक मैं उसको ठीक से समझ नहीं लेता तब तक उस पर व्यवहार करना असम्भव है।"

स्वामीजी चलते-चलते रुक गये। वे आकाश की ओर देखकर विचार करने लगे। फिर बोले, "ठीक है। तुम मेरे साथ कुटिया में चलो। कदाचित् मैं तुम्हें विश्वास दिला सकूँ।"

तोरमाण ने इस बार वैरागीजी की ओर देखकर पूछ लिया, "योगिराज! आप क्या परामर्श देते हैं?"

योगिराज बोले, "स्वामीजी कुछ दिखाना चाहते हैं। तुम चाहो तो वह भी देख लो। तदपि तुम कर्म करने में स्वतन्त्र हो।"

इस प्रकार तीनों स्वामीजी की कुटिया के भीतर चले गये।

: ५ :

कुटिया के भीतर वे लोग केवल एक घड़ी-भर रहे होंगे। तदनन्तर जब वे बाहर निकलकर आये तो तोरमाण का मुख दीप्तिमान था। उसने प्रसन्न मन से स्वामीजी के चरणस्पर्श किये और फिर बोला, "मैं तो इस सम्भावना को शुभ ही समझता हूँ। परन्तु भगवन्! गृहस्थ में रथ के दो चक्र होते हैं। एक चक्र तो मैं हूँ, किन्तु दूसरा चक्र मेरी पत्नी है। रथ पर आरूढ़ केवल बालक यशोधर्मन है। मैं घर जाकर अपनी पत्नी से परामर्श करूँगा और फिर भावी जीवन का निर्माण करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार जब तोरमाण स्वामीजी से विदा माँगने लगा तो आनन्द वैरागी ने उससे कहा, "युवराज ! मैं भी आपके साथ जाने वाला हूँ। स्वामीजी की आज्ञा है कि हम यहीं अल्पाहार करें। आप भी आज संन्यासी का भोजन ग्रहण कर लीजिये। इससे लाभ ही होगा।"

"क्या लाभ होगा ?"

"राजप्रासाद में असमय में पाचकों को कष्ट नहीं देना पड़ेगा। यहाँ अल्पाहार तैयार है, वहाँ तैयार होने में समय लगेगा। श्रीनगर में पहुँचते-पहुँचते सायंकाल का समय भी हो जायेगा।"

"परन्तु यहाँ स्वामीजी को कष्ट होगा।"

योगेश्वरानन्दजी बोले, "नहीं, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। पाचक ने आप लोगों के लिए अल्पाहार तैयार कर लिया है। उस दिन भी आपके लिये भोजन तैयार था, किन्तु मैं आपको कह नहीं सका। उसका कारण यह है कि राजकीय पाकशाला के समान यहाँ भोजन का प्रबन्ध हो नहीं सकता था।"

"तब ठीक है।"

स्वामीजी ने पाचक को आवाज दी। वह आया तो कहा, "तुरन्त अल्पाहार की व्यवस्था कर दो।"

अल्पाहार करते हुए आनन्द वैरागी स्वामीजी को बताने लगे, "सौराष्ट्र में अभी हूणों का अधिकार है। तदपि सेनापति महाराज स्कन्द की आज्ञा से युद्ध-विराम की आज्ञा हो गयी है। सम्भव है, भारतवर्ष के कुछ नरेश ढाई वर्ष के निरन्तर युद्ध से श्रान्त हो गये हैं। युद्धविराम की आज्ञा से पूर्व ही उन्होंने अपनी सेनायें अपने-अपने राज्यों को लौटानी आरम्भ कर दी थीं।"

योगेश्वरानन्द ने कहा, "मुझे तो यह सूचना मिली है कि इस युद्ध में सैनिकों की अत्यधिक हानि हुई है। इस कारण सेना में निराशा और भय व्याप्त हो गया था।"

तोरमाण ने बीच में ही कहा, "मेरी सूचना वैरागीजी महाराज की सूचना से कुछ भिन्न है। वह यह कि सेनाओं में यह प्रचार हो रहा था कि हूण समुदाय चण्डी का उपासक है। चण्डी महादेव शिव की पत्नी होने से शिव चण्डीदेवी को सन्तुष्ट करने के लिए भारतीय सैनिकों की बलि देता रहा है।

"सैनिकों में यह प्रचार किया जा रहा था कि विजय भले ही भारत की हो, एक भी भारतीय सैनिक युद्धभूमि से जीवित वापस नहीं जा पायेगा। एक-एक हूण की मृत्यु के लिए चण्डी को तृप्त करने के लिए पाँच-पाँच भारतीयों की बलि दी जायेगी।"

इस सूचना पर योगेश्वरानन्द हँस पड़ा। उसने कहा, "इस विनाश और पराजय का बीजारोपण भी सम्राट समुद्रगुप्त के शासनकाल में ही हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और मनुष्यों के समान उनके भोजन की इच्छा उन्हीं दिनों अथवा उसके कालोपरान्त ही प्रचलित की जाने लगी थी। जब भगवान् विष्णु के लिए खोये के लड्डू और हनुमानजी के लिए बूँदी के मोदक और भैरव के लिए मरे मनुष्य का मांस तथा काली के लिए बकरे का मांस निश्चय हुआ तो चण्डी के लिए मानव मांस का विधान किया गया। अर्थात् पुजारियों ने अपने खाने-पीने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था कर ली थी।

"अपने पुरोहित काल में मैंने मूर्तियों को प्रतीक मात्र कहकर उनके भोजन के विधान को रोकने का यत्न किया था, परन्तु ब्राह्मणों ने इसे स्वीकार नहीं किया और अपने-अपने प्रिय भोजन की व्यवस्था अपने देवता के नाम पर करने लगे।

"इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि देवताओं का भोजन निश्चय किया गया और उस भोजन की इच्छा वाले उस देवता के उपासक हो गये।

"अब यदि आप यह कहें कि देवता तो खाता नहीं तो पुजारी बोल उठते हैं कि पुजारी द्वारा ग्रहण किया गया भोजन देवता को तृप्त करता है।

"उस समय की यह व्यवस्था आज जनमानस में इतनी गहन पैठ गयी है कि शत्रु द्वारा फैलाया गया यह मिथ्यावाद सहस्रों जीवनदान, करोड़ों स्वर्ण के व्यय और अनेक नागरिकों का निःशुल्क परिश्रम सब मिट्टी में मिल रहा है।"

तोरमाण स्थिति समझ रहा था। उसने कहा, "हाँ भगवन्! हमारी सेना में भी यह विसंगति फैलने लगी तो मैंने इसके स्रोत को ढूँढ़ा और जब मुझे स्रोत मिल गया तो मैंने तो उनको सेना के सामने खड़ा करके उनसे यह स्वीकार करवाया कि वे शत्रु के गुप्तचर विभाग के घटक हैं।

"इसी का यह परिणाम था कि हम शत्रु के देश में रहकर भी किसी प्रकार की विशेष जन-हानि के बिना पराजय के मुख को विजय की ओर करने में सफल हो गये थे।"

योगेश्वरानन्द के मुख से सहसा निकल गया, "देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और फिर उनके वस्त्राभूषण, भोजन, शयन, विश्राम आदि की व्यवस्था करने की परम्परा प्रचलित होने से भारत सुदीर्घ अवधि के लिए दासता की शृंखलाओं में बँध जायेगा।

"मूर्ख जन पशु-बल से भले ही कुछ समय के लिए विजय प्राप्त कर लें, किन्तु मूर्खता की विद्यमानता में वह विजय न तो पूर्ण हो सकती है और न वह स्थायी ही रह सकती है।"

अल्पाहार समाप्त कर दोनों अतिथि वहाँ से अपने रथ में आरूढ़ होकर श्रीनगर के लिए प्रस्थान कर गये।

आनन्द ने जब तोरमाण की सेना में प्रचलित किंवदन्ति सुनी तो उसी समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसको परेशानी होने लगी थी। उसको आभास हो रहा था कि उसने अपने जीवन-भर जिस कार्य के लिए प्रयत्न किया था वह इस मिथ्यावाद के कारण अपूर्ण ही रह जायेगा। उसे बहुत निराशा हो रही थी। उसी निराशा में उसने समाज से इस दोष को निकाल बाहर करने के उपाय पर विचार करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार विचार करता हुआ वह रथ में बैठा श्रीनगर पहुँच गया। उसने तोरमाण को बताया कि उसे वह शंकराचार्य के मन्दिर में उतार दे। तोरमाण जानता था। वह उसको वहीं से लेकर मार्तण्ड गया था।

अपने डेरे पर जाकर उसने देखा कि वैरागी जन दो-दो, चार-चार की टोलियों में झोले उठाये हुए दक्षिण के मैदान की ओर जाने लगे थे।

आनन्द का प्रिय शिष्य सुमन उसकी प्रतीक्षा में बाहर ही खड़ा था। वह भी यह सब देखता हुआ कुछ विचार कर रहा था।

सुमन को वहाँ खड़ा देख आनन्द उसके पास जाकर पूछने लगा, "सुमन! क्या विचार कर रहे हो?"

"गुरुदेव! मैं आपकी प्रतीक्षा में था। यहाँ तो अब एक पाचक और मैं ही शेष रह गये हैं। पाचक भी आज अपने घर जाने के लिए अवकाश माँग रहा है।"

"उसको अवकाश दिया?"

"पाचक के बिना यहाँ आपके भोजन की व्यवस्था सम्भव नहीं है, इसलिए मैंने उसको अवकाश नहीं दिया।"

"उसको भी अवकाश दे दो। हम आज ही यहाँ से प्रस्थान कर देंगे।"

"किस दिशा को?"

"अभी तो नीचे नगर में जाकर किसी पन्थागार में टिकेंगे। वहाँ कुछ खा-पीकर विश्राम करेंगे। फिर कल प्रातःकाल ही बनिहाल शैल शृंग को चल देंगे। दो दिन में उसे पार करके मैदान की ओर चल देंगे।"

"मार्ग की व्यवस्था किस प्रकार होगी?"

"वैसे तो अभी मेरे पास कुछ स्वर्ण हैं। और यदि न भी हो तो हम तो वैरागी हैं। हमें भिक्षा करने में किस प्रकार की लज्जा?"

"हाँ, यह ठीक है। वैसे पिछले आठ वर्ष में आपके साथ रहकर भिक्षा की तो मैं बात ही भूल गया था। वह अब स्वभाव नहीं रहा, इसलिए उसका विचार आया ही नहीं।"

"स्वभाव तो निर्माण किया जाता है। जो निर्माण किया जाता है, वह भुलाया भी जा सकता है। फिर नया स्वभाव बन जाता है।"

सुमन विचारमग्न था।

आनन्द ने कहा, "जाओ, पाचक को अवकाश दे दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमन ने पाचक को बुलाकर पूछा, "भोजन कर लिया है ?"

"महाराज ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आप कर लें तो फिर मैं करूँगा।"

"हम इस समय भोजन नहीं कर रहे हैं। तुम पेट-भर खा लो। यदि कुछ बच जाए तो उसको पशु-पक्षियों के खाने के लिए खुले मैदान में छोड़ दो। आज से तुमको अवकाश दिया जाता है।"

आनन्द ने उसको कुछ द्रव्य देते हुए कहा, "लो, यह तुम्हारे मार्ग-व्यय के लिए है।"

पाचक रघु ने हाथ में एक स्वर्ण देखा तो वह कहने लगा, "प्रभु ! यह तो बहुत अधिक है। मेरा मार्ग-व्यय तो दो रजत से भी कम होगा।"

"ठीक है, मेरे पास रजत नहीं हैं। तुम यह रख लो। इसमें से जो बच जाए, उससे अपने बाल-बच्चों के लिए तथा पत्नी के लिए मिठाई और वस्त्रादि खरीद लेना।"

रघु ने कृतज्ञता व्यक्त की।

आनन्द और सुमन ने अपने-अपने कम्बल कन्धों पर डाले और कमण्डलु उठा-कर पहाड़ी से नीचे उतरने लगे। उस समय एक पल दिन अभी अवशेष था। दीपक जलने से पूर्व ही ये दोनों नगर में पहुँच गये।

नगर में पहुँचकर पन्थागार का पता किया और उस ओर चल दिये। उनका विचार था कि कहीं यदि दूध मिल जाए तो उसको पीकर रात पन्थागार में बिता-कर प्रातःकाल वहाँ से आगे की यात्रा आरम्भ की जाए।

पन्थागार के बाहर एक व्यक्ति खड़ा देखा तो सुमन ने उससे पूछा "भद्र ! यहाँ कोई दूध की दुकान भी है ?"

उस व्यक्ति ने पहले तो प्रश्नकर्ता की ओर देखा और फिर मुस्कराकर उत्तर दिया, "भगवन् ! है तो, परन्तु यहाँ तो भेड़ का दूध मिलता है। उसका स्वाद आप सहन नहीं कर पायेंगे। यदि थोड़ा-सा कष्ट करें तो यहाँ से कुछ दूर पर ही मेरा निवास है, वहाँ पधारिये। वहाँ आपको गाय का स्वादिष्ट दूध मिल जायेगा।

"दूध पीने के उपरान्त यदि आप कहीं जाना चाहेंगे तो वहाँ तक आपको छोड़ भी आऊँगा।"

"कितनी दूर है भक्त का निवास ?"

"महाराज ! समीप ही है। और मेरे पास रथ है। उसमें आपको आराम से ले जाऊँगा और समय भी नहीं लगेगा।"

"ठीक है, आप हमें दूध पिलाकर यहीं पन्थागार में छोड़ दीजिये। हम आज की रात यहीं विश्राम करना चाहते हैं।"

"और यदि आपको इससे भी अधिक स्वच्छ और वायुयुक्त स्थान मिल जाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ?"

"हम रात में किसी गृहस्थ के यहाँ वास नहीं करते।"

"भगवन् ! वह गृहस्थ का घर नहीं है। वह भी पन्थागार ही है, किन्तु वह इसकी अपेक्षा स्वच्छ है। वह पुष्पवाटिका में स्थित है।"

"तो चलिये। '

इस प्रकार वे दोनों वैरागी पन्थागार में जाते-जाते उसके साथ चल पड़े। रथ का संचालन वह व्यक्ति स्वयं ही कर रहा था।

"आप स्वयं ही रथ चलाते हैं ?" आनन्द ने पूछा।

"जी। मैं रथवान हूँ।"

"यह रथ किसका है ?"

"रथ का स्वामी मैं नहीं हूँ।"

"तो कौन है ?"

"इस रथ के स्वामी कश्मीर-नरेश के द्वितीय पुत्र कुमार यादवेन्द्रजी हैं।"

"देख लो। कहीं ऐसा न हो कि इस प्रकार तुम्हारा हमें आतिथ्य के लिए ले जाना तुम्हारे स्वामी को अरुचिकर हो ?"

"नहीं महाराज ! मैं जानता हूँ कि वे रुष्ट नहीं होंगे। और यदि उनको पता चल जाए कि मेरे अतिथि कौन हैं तो नंगे पाँव भागे-भागे चले आयेंगे।"

"तो आप जानते हैं कि हम कौन हैं ?"

"भगवन् ! मैं आपको तो जानता हूँ, परन्तु आपके साथ जो अन्य उपासक हैं, उनके विषय में नहीं जानता। परन्तु नौका पर रखे जाने पर तो लोहा और सोना दोनों ही समान रूप से पार हो जाते हैं। इस कारण मुझे आपको भी निमन्त्रण देने में हर्ष होता है।"

आनन्द को हँसी आ गयी। वह विचार कर रहा था कि इसने कभी उसको यादवेन्द्रकुमार के साथ देखा होगा। अतः उस ओर ध्यान न देते हुए आनन्द ने उससे कहा, "आपके स्वामी के दर्शन तो हमने किये नहीं हैं। वे भी हमको केवल नाम से ही जानते होंगे।"

"भगवन् ! आपकी चर्चा राजप्रासाद का मुख्य विषय है और राजप्रासाद के सब मुख्य व्यक्ति आपकी चर्चा करते हैं।"

"भद्र ! इस समय तो हम यही चाहते हैं कि हम यहाँ अज्ञात ही रहें।"

"महाराज ! मैं इतना ही कर सकता हूँ कि किसी को आपका परिचय नहीं दूँगा। किन्तु यदि किसी ने आपको पहचान लिया और आपके यहाँ होने का समाचार प्रसारित कर दिया तो आप मुझे दोष न दीजियेगा।

"भेड़ वालों के पन्थागार में बिना आपके बताये ही मैं आपको पहचान गया था। इसी प्रकार यदि किसी ने उस पन्थागार में भी आपको पहचान लिया तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मैं क्या कर सकता हूँ।"

आनन्द को इस सारथी के वार्तालाप पर विस्मय हो रहा था। वह अनुमान लगा रहा था कि यह साधारण सारथी नहीं अपितु किसी उच्च पद पर आसीन कोई अधिकारी है। उसने उसी से पूछा, "भक्त ! हम समझते हैं कि आप साधारण सारथी-मात्र नहीं हैं, आप किसी उच्च पद पर हैं। भला बताइये तो आप कौन हैं ?"

इस समय तक वे लोग राजप्रासाद के पृष्ठ भाग पर एक विशाल प्रांगण में पहुँच गये थे। राजप्रासाद के वातायन इस ओर खुलते थे, इस कारण वहाँ से उनके द्वारा राजप्रासाद में होने वाला प्रकाश स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

इस प्रांगण के दूसरी ओर एक भव्य भवन था। इसमें भी कई आगार दिखाई दे रहे थे। किन्तु उसके किसी-किसी आगार के गवाक्षों से प्रकाश दिखाई दे रहा था। इसका अभिप्राय था कि अन्य आगार बन्द पड़े हैं।

आनन्द ने उससे पूछा, "दायीं ओर तो यह राजप्रासाद है, उधर मैं आ चुका हूँ, इस कारण जानता हूँ, किन्तु दूसरी ओर यह कौन-सा भवन है ?"

"भगवन् ! यह राजकीय अतिथिगृह संख्या दो है। आजकल यह प्रायः खाली ही है। युद्ध समाप्त हो गया है, इसलिए जो लोग दो वर्ष से यहाँ टिके हुए थे, वे अब अपने-अपने गाँव, देश आदि को चले गये हैं।"

रथ रुका और सारथी रथ से उतरकर यात्रियों को भी उतरने के लिए कहने लगा। वे रथ से उतरे तो उनको पन्थागार के द्वार पर ले गया। उसने प्रतिहार को किसी प्रकार का संकेत किया और दोनों वैरागियों को भीतर एक खुले आगार में लेकर चला गया। वहाँ उसने उनको एक बड़ी चौकी पर बैठाया और द्वार पर लगी डोरी को खींचने लगा।

दूर कहीं घण्टी बजती सुनाई दी। सारथी ने फिर आनन्द से कहा, "भगवन् ! सेवक आ रहा है। आप तब तक स्नानागार में हाथ-मुख धो लीजिये।"

"हाँ, दिन-भर की यात्रा की सारी धूल भरी पड़ी है। हाथ-मुख धोना आवश्यक है।" आनन्द ने कहा और वह स्नानागार की ओर चला गया।

सारथी ने सुमन से कहा, "भगवन् ! आप उस स्नानागार में जाकर हाथ-मुख धो लीजिये।" उसने दूसरी ओर संकेत करके बताया।

सारथी ने दोनों स्नानागारों में दीपक जला दिये और यात्री अपना हाथ-मुख धोने लगे।

सुमन को तो हाथ-मुख धोने में अधिक समय नहीं लगा था, क्योंकि वह यात्रा पर से भी नहीं आया था। आनन्द तो सीधा मार्तण्ड से ही यात्रा करता आ रहा था। जब तक आनन्द हाथ-मुख धोकर स्नानागार से बाहर निकला तब तक उनकी चौकी के पास खड़े एक दम्पति उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दम्पति अन्य कोई नहीं, युवराज यादवेन्द्रकुमार और उसकी पत्नी थे। आगार के द्वार पर भी सेवक-सेविकाओं की भीड़ खड़ी दिखाई दे रही थी।

"तो आपने हमारे यहाँ आने की सूचना प्रासाद वालों को दे ही दी न ?"

इसका उत्तर देते हुए यादवेन्द्र ने कहा, "नहीं भगवन्! इसने कोई सूचना नहीं दी। इस पन्थागार का मुख्य प्रतिहार द्वार पर खड़ा था। उसने आपको देखा तो वह पहचान गया। वह भागकर युवराज को सूचना देने जा रहा था कि मार्ग में हम दोनों मिल गये। हम दोनों सरोवर-तट पर भ्रमण करके वापस आ रहे थे। हमने उससे पूछा कि वह किधर भागा जा रहा है तो उसने बताया कि पन्थागार में आप पधारे हुए हैं। अतः हम प्रासाद के अपने कक्ष की ओर जाते-जाते इधर आ गये हैं। हम समझते हैं कि युवराज महोदय भी आते होंगे।"

"सारथी ने तो हमको आश्वासन दिया था कि यह हमारा यहाँ आना किसी को बतायेगा नहीं।"

सारथी बोला, "भगवन्! मैंने तो उस प्रतिहार को आपका परिचय नहीं दिया था। मैंने उससे कुछ कहा नहीं, यह तो आपने भी देखा ही होगा। वह आपको पहचानता होगा। यहाँ तक कि मैंने तो उसको संकेत से मौन रहने का निर्देश किया था, परन्तु उसका कहना है कि उसने उस संकेत का यह अर्थ ग्रहण किया कि तुरन्त राजप्रासाद में सूचना देनी है।"

आनन्द हँस पड़ा। उसने युवराज और युवराज्ञी को चौकी पर बैठने के लिए कह दिया।

वे लोग बैठे ही थे कि तभी महाराज प्रवरसेन और राजकुमार तोरमाण वहाँ आ उपस्थित हुए। दोनों ने उनको प्रणाम किया और फिर महाराज बोले, "भगवन्! हम तो आपको दूसरे अतिथिगृह में ले चलने के लिए आये हैं।"

"वहाँ क्या विशेषता है ?"

"वह नरेशों के ठहरने के लिए है।"

"महाराज, हम तो बहुत ही छोटे स्थान पर रहने के लिए जा रहे थे। भाग्य की बात है कि यह सारथी वहाँ खड़ा मिल गया। हमने इससे दूध मिलने की बात की तो यह हमें गाय का शुद्ध दूध पिलाने के लिए यहाँ ले आया। हम तो जानते भी नहीं थे कि हमको कहाँ ले जाया जा रहा है।"

"भगवन्! अब तो यह हो गया है। आपका यहाँ आना ज्ञात हो गया है। यदि आप उस आगार में नहीं गये तो अन्तःपुर की सभी महिलायें यहाँ आ जायेंगी। वे सब आपकी महिमा से परिचित हो चुकी हैं।"

तब तक पाचक चाँदी के कटोरों में उष्ण दुग्ध ले आया था।

महाराज ने उससे कहा, "राजकीय अतिथिगृह के आगार संख्या एक में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुग्ध ले जाओ। स्वामीजी वहीं पधार रहे हैं।"

विवश होकर आनन्द और सुमन को महाराज के साथ चलना पड़ा।

यादवेन्द्र और उसकी पत्नी तथा अन्यान्य सेवक-सेविकायें जो सब वहाँ पर एकत्रित हो गये थे, वे भी उसी ओर उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

: ६ :

आनन्द अनेक बार इस राजप्रासाद में महाराज से मिलने के लिए आ चुका था। इसलिए वह उस स्थान को भली-भाँति जानता था, जहाँ महाराज राज्याधिकारियों के अतिरिक्त विशिष्ट अतिथियों से मिला करते थे।

महाराज उनको उस कक्ष में ले गये तो आनन्द स्वामी ने कहा, "महाराज! यह तो आपके बाहरी व्यक्तियों से भेंट करने का कक्ष है। परन्तु मैं तो आपसे भेंट करने के लिए आया नहीं हूँ?"

"यह मुझे विदित है भगवन्! पर हम आज योगिराज से भेंट करना चाहते हैं, इसलिए उनको यहाँ ले आये हैं।"

"महाराज! हम तो सारथी के निमन्त्रण पर केवल दूध पीने के लिए आये थे।"

"चिन्ता मत कीजिये। चेतन अभी दूध लेकर आ रहा है।"

'चेतन' नाम सुनकर आनन्द स्वामी को कुछ आभास-सा हुआ कि यह नाम तो उसका जाना-पहचाना-सा है। वह सोचने लगा कि उसने यह नाम कहाँ सुना होगा।

तब तक सभी लोग उस आगार में आ गये थे। सेवक-सेविकायें बाहर थे।

जब सब बैठ गये तो युवराज ने ताली बजाई। बाहर खड़ा प्रतिहार भीतर आ गया। महाराज ने कहा, "योगिराज और उनके साथी योगीजी के लिए मँगाया गया दूध भीतर भेज दो।"

दूध के कटोरे भीतर आ गये।

दूध पीते हुए आनन्द को ध्यान आया कि उसने चेतन का नाम कहाँ सुना था। उसको ध्यान आ गया कि यह तो वही कहार है, जिसकी पत्नी को उसने कौशाम्बी में कहा था कि उसके पेट में पुत्र पल रहा है।

यह स्मरण आते ही वह समझ गया कि राजप्रासाद में युवराज की पत्नी के गर्भ में बालक होने की जो बात बताई गयी थी उसका स्पष्टीकरण भी इसी ने किया होगा।

चेतन वहाँ दिखाई नहीं दे रहा था। वैरागीजी ने राजकुमार से कहा, "युवराज! आपका सारथी कहाँ है?"

"महाराज! आप क्या उसको कुछ कहना चाहते हैं? वह तो बेचारा पहले ही भय से काँप रहा है और वहीं पन्थागार में ही रह गया है। अनजाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उससे यह अपराध हो गया है कि आपका यहाँ होने का समाचार हम तक पहुँच गया है।

"परन्तु भगवन्! इसमें उसका तनिक भी दोष नहीं है। यह तो मेरी आज्ञा है कि उस पन्थागार में जब कभी कोई नया व्यक्ति आये तो उसकी सूचना तुरन्त मेरे पास भेज दी जाए। वह पन्थागार राजप्रासाद से सम्बन्धित होने के कारण मेरी देख-रेख में है।"

महाराज प्रवरसेन ने बात बदलकर कहा, "योगिराज! युवराज के आपके साथ मार्तण्ड जाने और वहाँ आप लोगों में जो वार्तालाप हुआ है तथा आप दोनों के साथ ही लौटने का सारा समाचार हम लोगों को विदित हो चुका है।"

"क्या विदित हुआ है? वहाँ तो बहुत सारी बातें और बहुत सारे विषयों पर चर्चा हुई थी?"

"मुख्य विषय तो आजकल राजप्रासाद में युवराज तोरमाण की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही है।"

"उस बालक के विषय में तो मैंने कहा है कि यह सब परमात्मा की देन है। तदपि वह युवराज की ही सन्तान है। उसका कारण यह है कि वह युवराज की पत्नी के क्षेत्र से उत्पन्न हुआ है। अतः यह सम्पत्ति युवराज की ही मानी जायेगी।"

"परन्तु उसके कारण हमारे परिवार में हलचल मच गई है।"

"यह तो निर्बुद्धि और अशिक्षित लोगों की चर्चा का विषय हो सकता है, सभ्य लोगों का नहीं। आपको चाहिए, इस प्रकार के अशिक्षित लोगों की सम्मति पर आप ध्यान न दें।"

"भगवन्! राजकुमार और उसकी पत्नी की इस घटना में कोई विशेष रुचि नहीं है। एक तो यह है कि उसको सारथी चेतन की बात पर विश्वास नहीं होता कि बिना पुरुष की संगति के कभी स्त्री के गर्भ में बालक भी जन्म ले सकता है।

"दूसरे यह कि उस अनिश्चित पिता की सन्तान को वे राज्याधिकारी नहीं मानते।

"तीसरे वे समझते हैं कि बिना पिता के सहयोग से जिसने बालक को जन्म दिया है उस माता और उस बालक के लिये बन्दीगृह ही सबसे उपयुक्त स्थान है।"

"इससे तो भगवान् कृष्ण का पद पा जायेगा। और यदि चन्द्रवंशियों की भाँति आपने भी उसे राज्यकार्य में भाग नहीं दिया तो वह पूर्ण परिवार को उसी भाँति नष्ट करने में समर्थ होगा जिस प्रकार कि कृष्ण थे।"

राजकुमार यादवेन्द्र ने जब यह सुना तो उसने कह दिया, "योगिराज! तब तो वह महाभयंकर जीव है। उसको तो अभी बाल्यकाल में ही समाप्त कर देना चाहिये।"

आनन्द स्वामी दूध पीता-पीता रुक गया। उसने दूध का प्याला चौकी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा और फिर यादवेन्द्र से कहा, "राजकुमार ! क्या तुम स्वयं को ईश्वर से भी ऊपर मानते हो ? क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि ऐसा करने पर कंस की कैसी दुर्गति हुई थी ?"

"वह तो मूर्ख था। उसने अपने पड़ौसी गाँव वृन्दावन में पल रहे बालक को पलने दिया। यह उसकी मूर्खता थी। संसार में सब उस जैसे ही मूर्ख नहीं होते।"

"आप अपने को बहुत ही बुद्धिमान समझते हैं ?"

"बुद्धिमान न सही, सावधान तो हूँ। मैं राजकाज करता हूँ और महाराज जानते हैं कि मेरे कार्य में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं पाया जाता।"

आनन्द यह सुनकर मुस्कराकर बोला, "क्या बात करते हो। यहाँ से उठकर उस बैठक में जाने तक का सामर्थ्य तो तुममें है नहीं। इसमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता और तुम्हारी सावधानी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगी।"

वहाँ बैठे सब यादवेन्द्र की ओर देखकर उसकी प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक दिखाई दिये।

यादवेन्द्र चौकी पर पालथी मारकर बैठा हुआ था। उसके पीछे उसकी पत्नी बैठी हुई थी। वार्तालाप के इस प्रकरण को वह रुचिकर नहीं समझ रही थी। उसको आशा थी कि उसका पति यह सुनकर उठकर उस बैठक से निकलकर चला जायेगा। इसलिये वह अपने पति के पीछे-पीछे जाने के लिये स्वयं उठने के लिए उद्यत हो गई थी। परन्तु उसने देखा कि उसका पति उठ नहीं रहा था।

आनन्द स्वामी के ऐसा करने पर भी जब यादवेन्द्र अपने स्थान पर से उठा नहीं तो स्वामीजी ने उससे कहा, "राजकुमार ! यदि तुममें बुद्धि, सावधानी और सामर्थ्य है तो जाओ यहाँ से उठकर।"

उस आगार में विद्यमान लोगों ने देखा कि यादवेन्द्र उठने का यत्न कर रहा है, परन्तु वह उठा नहीं।

आनन्द स्वामी को हँसी आ गई। उन्होंने सामने रखा कटोरा उठाया और उसमें अवशिष्ट दूध को गटागट पीकर कटोरा भूमि पर रख दिया।

यादवेन्द्र मौन था। वह न कुछ कह रहा था और न हिल-डुल रहा था। वहाँ बैठे सब यह देख रहे थे।

प्रवरसेन ने पूछा, "योगिराज ! इसका क्या अभिप्राय है ?"

आनन्द स्वामी उत्तर देने की अपेक्षा मुस्कराते रहे। उन्होंने अपने शिष्य सुमन की ओर देखा। उसने भी दूध समाप्त कर लिया था। वैरागीजी ने कहा, "चलो सुमन ! यहाँ इन लोगों की संगति में नहीं रहना चाहिए।"

अपने गुरुजी की आज्ञा पाते ही सुमन उठ गया। उसे उठा देख आनन्द वैरागी भी उठा। उसने आशीर्वाद देते हुए कहा, "भगवान् आप लोगों को सद्बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान करे।"

यह कहकर दोनों उठकर बैठक से बाहर निकल गये।

प्रवरसेन चाहता था कि वह स्वामीजी को रोककर यादवेन्द्र के न उठ सकने का कारण जाने। महाराज ने द्वार पर खड़े प्रतिहार से कहा, "जाओ, योगिराज को रोको, उनको मत जाने दो।"

परन्तु प्रतिहार तो द्वार पर जड़वत् खड़ा था। वह जाना चाहता था किन्तु हिल नहीं सका। उसके देखते-देखते दोनों वैरागी बाहर होकर चल दिये।

जब प्रतिहार नहीं हिला तो प्रवरसेन ने रक्षकों से कहा, "योगिराज को रोको। मुझे उनसे काम है।"

रक्षक भी आगे नहीं बढ़ सके। सभी रक्षक और सभी सुभट्ट वहाँ खड़े के खड़े ही रह गये। वे सब आनन्द स्वामी और उनके शिष्य को वहाँ से जाते देखते रह गये।

प्रवरसेन भी यह सब देखता रह गया। उसके देखते ही देखते वे प्रासाद के मुख्य द्वार से भी बाहर निकल गये। अब इस समय महाराज को अपने पुत्र यादवेन्द्र का स्मरण हो आया। वह तो अभी भी मूर्तिवत् बैठा था।

प्रवरसेन कठिनाई में पड़ गया। उसने यादवेन्द्र से पूछा, "तुम चुप क्यों हो?"

उस समय तोरमाण ने कहा, "महाराज! आपने ठीक नहीं किया। आपने उनको रोकने का यत्न नहीं किया।"

प्रवरसेन कहने लगा, "योगिराज कहा करते थे कि अग्नि को वस्त्र में लपेट-कर नहीं रखा जा सकता। उनके कथन का अर्थ तब तो मैं समझा नहीं था, किन्तु अब भली-भाँति समझ गया हूँ। कम से कम इतना तो समझ गया हूँ कि कपड़े ने उस अग्नि को अपने में बाँधने का यत्न नहीं किया। यदि ऐसा करता तो कपड़ा ही जलकर भस्म हो जाता।"

अब यादवेन्द्र का मुख खुला। उसने कहा, "वैरागी अपने योगबल का चमत्कार दिखा गया है। मैं तो उसको उसी समय पकड़कर बन्दीगृह में डालने की योजना बनाने लगा था।"

युवराज ने कहा, "तो बनाया क्यों नहीं?"

"उसने मुझे अपने योगबल से काष्ठवत् स्थिर कर दिया था। परन्तु अब तो वह यहाँ नहीं है। मैं समझता हूँ कि उसने तुम्हारी पत्नी की रक्षा के लिए यह अपने योगबल का प्रदर्शन किया है। इसी से मेरा विश्वास है कि इस ढोंगी का भाभी से अवश्य लगाव रहा है।"

प्रवरसेन समझ रहा था कि यह वार्तालाप सीमा से अधिक अशिष्ट हो गया है। उसने कहा, "कुमार! उस समय तो तुम्हारी जिह्वा काष्ठवत् हो गई थी। अब यह शेखी क्या बघार रहे हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादवेन्द्र चुप रहा।

प्रवरसेन ने कहा, "तोरमाण कहता है कि योगिराज स्वामी योगेश्वरानन्द ने उसको सम्मति दी है कि वह अपनी पत्नी सहित कश्मीर छोड़कर चला जाए, क्योंकि कश्मीर में प्रलय आने वाली है।"

यादवेन्द्र ने पूछा, "कहाँ चला जाए ?"

प्रवरसेन ने तोरमाण से पूछा, "बताओ, तुम्हें कहाँ जाने के लिए कहा है ?"

"मुझे यह बताने की आज्ञा नहीं है।"

यादवेन्द्र कहने लगा, "तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि तुम भी पिताजी की भाँति कहीं छिपकर सेना एकत्रित करने के लिए जा रहे हो। मैं यह नहीं करने दूँगा। मैं कह चुका हूँ कि मैं कंस के समान मूर्ख नहीं हूँ। मैं तो इस पाप के बीज को नष्ट करके ही रहूँगा।"

प्रवरसेन को क्रोध आ रहा था। उसने डाँटकर कहा, "कुमार ! कुछ सभ्यता सीखो।"

यादवेन्द्र उठा और तुरन्त उसका हाथ अपनी कमर पर बंधे खड्ग की मूठ पर चला गया।

प्रवरसेन तथा सभी ने यह देखा था। उस समय सभी उठकर अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गये। वे यादवेन्द्र को पकड़ने का यत्न करने लगे जिससे कि वह किसी की हत्या न कर सके।

परन्तु यादवेन्द्र वहाँ से निकलकर बाहर चला गया उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी भी बैठकघर से निकलकर चली गई।

तोरमाण को सन्देह हुआ कि वह उसके आगार में जाकर बालक की हत्या कर देगा। वह तुरन्त वहाँ से अपने आगार की ओर दौड़ गया। प्रवरसेन भी उस के पीछे-पीछे चल पड़ा।

इस प्रकार फिर सभी वहाँ से अपने-अपने आगार की ओर जाने लगे। द्वार की ओर जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी।

यादवेन्द्र तोरमाण के आगार तक तो पहुँच गया, किन्तु वह भीतर नहीं गया। वहीं बाहर वह जड़वत् खड़ा दिखाई दिया।

तोरमाण और प्रवरसेन जब तक भागकर उसके पीछे वहाँ पहुँचे तो यादवेन्द्र का हाथ उसी प्रकार खड्ग की मूठ पर था, किन्तु वह खड्ग निकाल नहीं पा रहा था। न ही वह आगार के भीतर जा पा रहा था। वह वहीं द्वार पर जड़वत् खड़ा अपने पीछे-पीछे आने वालों को टुकुर-टुकुर देख रहा था।

इससे प्रवरसेन यह तो समझ गया कि यादवेन्द्र तोरमाण के बालक की हत्या करने के उद्देश्य से बैठक से भागकर इधर आया है। इसीलिये वह और तोरमाण भी यहाँ भागकर आये थे। अब जब उसको वहाँ पर फिर उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़वत् खड़ा देखा तो वे समझ गये कि पुनः उसको आनन्द वैरागी की शक्ति ने जकड़ लिया है।

जब वे सब वहाँ पहुँचे और उनके पीछे यादवेन्द्र की पत्नी शोभा भी पहुँची तो प्रवरसेन उसके समीप खड़ा होकर परेशानी में उससे पूछने लगा, "यहाँ किसलिये खड़े हो ?"

उसे उत्तर न देते देख उसकी पत्नी ने कहा, "चलिये, हमारे निवास के आगार इधर नहीं, उधर हैं।"

तोरमाण की पत्नी की सेविकायें भी इस समय वहाँ आकर खड़ी हो गई थीं, किन्तु वे कुछ दूरी पर ही थीं।

यादवेन्द्र न हिल सकता था और न बोल सकता था।

जब उसकी पत्नी शोभारानी ने अपने पति का हाथ पकड़कर अपने आगार की ओर चलने की प्रेरणा दी तो यादवेन्द्र के शरीर में कुछ स्फूर्ति-सी आने लगी। वह लज्जित-सा सिर घुमाकर अपनी पत्नी के साथ चल दिया।

उसके जाने पर प्रवरसेन ने तोरमाण से कहा, "भीतर चलो।"

प्रवरसेन सेविकाओं के सम्मुख किसी प्रकार की बात करना नहीं चाहता था।

तोरमाण बोला, "पिताजी ! आप अब विश्राम कीजिये। प्रातःकाल इस समस्या पर विचार कर लेंगे।"

प्रवरसेन भी समझ गया कि बालक यशोधर्मन आनन्द वैरागी की शक्ति से सुरक्षित है। उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उसने कहा, "ठीक है। हड़बड़ी में कुछ करना उचित नहीं। इस उजड्ड मूर्ख के विषय में प्रातःकाल विचार कर लेंगे।"

प्रवरसेन भी अपने आगारों की ओर चला गया।

जब तक तोरमाण भीतर पहुँचा तब तक सेविकायें उसके द्वार पर हुए नाटक के विषय में युवराज्ञी को बता रही थीं।

अपने देवर की मनोवृत्तियों को सुनकर युवराज्ञी चिन्ता का अनुभव कर रही थी। तोरमाण वहाँ पहुँचा तो सेविकायें वहाँ से बाहर हो गईं।

तोरमाण भीतर गया और अपनी पत्नी से बोला, "इस घटना की सम्भावना तो मुझे प्रातःकाल स्वामी योगेश्वरानन्दजी ने प्रकट कर दी थी। उन्होंने यह भी सम्भावना व्यक्त की थी कि वह कुछ कर नहीं पायेगा। उस समय तो मैं उनके कहने का अभिप्राय समझ नहीं पाया था, किन्तु अब जब घटना पूर्ण हो चुकी है तो मेरी समझ में आ रहा है। इससे मैं यही उचित समझता हूँ कि हमको यह राज्य और यह नगर तुरन्त ही छोड़ देना चाहिये।

"यही स्वामीजी की सम्मति थी।"

"ठीक है। हमारे अपने जीवन-भर के निर्वाह के लिए पर्याप्त है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवराज ने कहा, "किन्तु जाते हुए हमें सावधानी से काम लेना होगा। कोई हमें यहाँ से जाते हुए देख न सके, तभी सफलता मिल सकती है। पिछवाड़े के द्वार पर नियुक्त प्रहरी को किसी प्रकार समझा-बुझाकर हमें उस ओर से निकलना चाहिये।"

इस निश्चय के बाद दोनों नगर छोड़ने की तैयारी करने लगे।

प्रवरसेन अपने आगार में जाकर अपनी बड़ी महारानी, जो तोरमाण की माँ थी, को सारी घटना सुनाने लगा।

महारानी गान्धार-नरेश की पुत्री थी। सारा वृत्तान्त सुनने के बाद उसने महाराज से कहा, "महाराज ! आप इस घटना से पर्याप्त कष्ट अनुभव कर रहे हैं ?"

"हाँ, आज प्रातःकाल सूर्योदय से आधा प्रहर पूर्व ही तोरमाण अपने रथ पर वैरागियों के डेरे की ओर गया था। यह देखकर मैंने सोचा कि आज वह पुनः मार्तण्ड जाने वाला है। मेरा अनुमान ठीक ही निकला था। वह मार्तण्ड गया और दिन के तीसरे प्रहर वहाँ से लौटकर आया था। आने के बाद उसने मुझे वह सारा वार्तालाप सुनाया, जो वहाँ पर स्वामीजी तथा वैरागीजी के साथ हुआ था।

"स्वामीजी ने उसको बताया है कि देश की अवस्था अभी सर्वथा सुरक्षित नहीं है। उसे चाहिए कि वह देश की सुरक्षा की दृष्टि से कश्मीर छोड़कर मध्य भारत में मालवा की ओर चला जाए।

"किन्तु मैंने उसके अपने देश को छोड़कर जाने के विचार को पसन्द नहीं किया। मैंने उसको समझाया है कि उसको देश छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। मैं तथा मेरा पूर्ण राज्य उसकी तथा उसके पुत्र की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हैं।

"परन्तु आज जो घटना हुई है, उससे मुझे भारी चिन्ता हो रही है।"

तोरमाण की माँ कहने लगी, "आपका छोटा लड़का मूर्ख माँ का पुत्र होने से महामूर्ख ही है। उसे राज्यकार्य पर नहीं लगाना चाहिये।"

"जहाँ तक राज्यकार्य का सम्बन्ध है, वह पिछले दो वर्ष से यह कार्य कर रहा है और उसके किसी भी कार्य में कभी कोई त्रुटि दिखाई नहीं दी। प्रजा भी प्रसन्न है और उसके अधीनस्थ सभी कर्मचारी भी उसके कार्य से तथा व्यवहार से प्रसन्न हैं।

"उसकी वर्तमान मानसिक स्थिति के लिए राज्यकार्य उसके हाथ में देना भी तो कारण है। अब उसको राज्य की चसक लग गई है।"

"मैं भी कुछ ऐसा ही समझ रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि उसको बन्दी बनाकर किसी बन्दीगृह में डाल दूँ। परन्तु उसको वहाँ डालने से पूर्व उस कारागार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति को सौंपना होगा, अन्यथा वह वहाँ से निकलने का षड्यन्त्र कर सकता है।"

"जो कुछ करना हो, तुरन्त कीजिये। वह किसी भी समय कुछ भी कर सकता है।"

प्रवरसेन ने कुछ क्षण तक विचार किया और फिर वह वहाँ से राज्य कार्यालय को चला गया।

: ७ :

प्रवरसेन ने दो विवाह किये थे। बड़ी रानी युवराज तोरमाण की माता गान्धार की राजकन्या थी। उसकी दूसरी पत्नी राजस्थान के एक राज्यपरिवार की राजकन्या थी। उसका पुत्र ही यादवेन्द्र था। यादवेन्द्र तीन वर्ष का बालक ही था कि उसकी माता का देहान्त हो गया। इस प्रकार उसका पालन-पोषण सेवक-सेविकाओं द्वारा किया गया था।

तोरमाण और यादवेन्द्र में पाँच वर्ष का अन्तर था। तोरमाण का विवाह लक्ष्मीपुर के बड़े भूमिपति की पुत्री पुष्पावती से हुआ था। विवाह के अनेक वर्ष तक भी जब उन दोनों के कोई सन्तान नहीं हुई तो पुष्पावती का अधिकांश समय देवी-देवताओं के पूजा-अनुष्ठान में व्यतीत होने लगा।

यादवेन्द्र का विवाह गान्धार देश की निवासिनी और तक्षशिला की स्नातिका शोभा से किया गया। विवाह होने के बाद पाँच वर्ष की अवधि में उसने दो बालकों को जन्म दिया था। तब यह एक प्रकार से निश्चय-सा ही माना जाने लगा था कि यदि उन बालकों के सज्ञान होने तक महाराज प्रवरसेन जीवित रहे तो पितामह का राज्य उसके पौत्र सुरेन्द्रकुमार को मिल जायेगा। तोरमाण की रुचि राज्य की अपेक्षा सैनिक-प्रबन्ध में अधिक थी।

इस बीच हूणों का आक्रमण हो गया। उस समय तोरमाण कश्मीर सेना का अध्यक्ष बनकर देश की पश्चिमी सीमा पर जा पहुँचा। उस समय प्रवरसेन ने अपनी सहायता के लिये यादवेन्द्र को अनेक अधिकार देकर राज्य-कार्य सम्हला दिया।

तोरमाण जब सैनिक-शिविर में ही था कि उसकी बन्ध्या मानी जाने वाली पत्नी के गर्भस्थित होने की बात चलने लगी। यादवेन्द्र इससे शंकित हो गया। वह समझ नहीं पाया कि यह किस प्रकार सम्भव है, क्योंकि वह भली-भाँति जानता था कि उसका बड़ा भाई तो विगत तीन मास से घर और देश से बाहर सैनिक-शिविर में है।

उसे जब इस विषय पर सन्देह हुआ तो उसने इधर-उधर पूछताछ करनी आरम्भ कर दी। यादवेन्द्र को जब इस प्रकार परेशान देखा तो उसके सारथी चेतन ने उसको अपने घर की कहानी सुना दी। उसने बताया कि एक दिन उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी को देखकर योगिराज आनन्द ने कह दिया कि उसकी पत्नी के बालक होने वाला है।

चेतन ने बताया कि बिना पति-पत्नी के सहवास के उसकी पत्नी में उसी दिन से गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे थे। चेतन ने अपनी पत्नी की बात बताते हुए कहा, "वह समझती है कि योगिराज में इतनी सामर्थ्य है कि वे देखने मात्र से सन्तान प्रदान कर देते हैं।"

यादवेन्द्र को पता चला कि आनन्द वैरागी उन दिनों श्रीनगर में डेरा डाले हुए हैं। उसने उसकी टोह लेनी आरम्भ कर दी। उसने यह जानने का यत्न किया कि उसने उसकी भाभी को कब और किस प्रकार गर्भवती किया।

उसे पुष्पावती में किसी प्रकार का भी अनियन्त्रित व्यवहार दिखायी नहीं दिया, किन्तु यह तो निश्चय ही था कि तोरमाण कई मास से श्रीनगर तो क्या, कश्मीर में ही नहीं था। तब उसने अपने मन में यह धारणा सुदृढ़ कर ली कि उसकी भाभी के गर्भ में योगिराज आनन्द का ही बालक है। हो, न हो किसी प्रकार उन दोनों का सम्पर्क हुआ है।

समय पाकर तोरमाण की पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक बड़ा ही सुन्दर और ओजस्वी दिखायी देता था। यह देखकर तो यादवेन्द्र का आनन्द स्वामी पर और भी सन्देह सुदृढ़ हो गया। इसके विपरीत उसका अपना पुत्र बड़ा ही हीन रूपराशि का था। इससे उसे भाई के पुत्र पर ईर्ष्या होने लगी। उसने अपनी भाभी की निन्दा करनी आरम्भ कर दी।

यादवेन्द्र चाहता था कि तोरमाण के पुत्र को किसी भी प्रकार कश्मीर का राज्य न मिलने पाये। उसने अनेक प्रकार की योजनाएँ बनायीं किन्तु वह किसी में भी सफल नहीं हो पाया। इसी अवधि में एक प्रकार से अनिर्णीत ही युद्ध भी समाप्त हो गया। हूणों को धीरे-धीरे देश से बाहर निकाला जा रहा था। तदपि सिन्धु नदी के पूर्वी तट पर उनका जमाव बना ही हुआ था और सौराष्ट्र में तो उनकी प्रबल सेना का शिविर विद्यमान था।

उस समय जब भारतीय सैनिक धीरे-धीरे अपने-अपने देश को लौटने लगे तो भारतीय सेना के सर्वोच्च सेनाध्यक्ष स्कन्दकुमार को इसकी सूचना मिली। उसने भी यही समझा कि वर्तमान सेना दो वर्ष तक युद्धभूमि में रहने से बहुत थक गयी है। अतः वह थककर लौट रही है। अतः उसने सौराष्ट्र में हूण सरदार से समझौता करके युद्धविराम की घोषणा कर दी।

युद्धविराम की घोषणा करते ही पंचनद प्रान्त की स्थिति अति भयंकर हो गयी। वहाँ हूणों की अनेक टुकड़ियाँ पड़ी हुई थीं। तब स्थानीय शासकों से उनके छुटपुट झगड़े होते रहते थे।

सौराष्ट्र में हूण राज्य स्थापित हो गया और उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पंचनद में युद्धरत हूणों की सहायता करने लगा।

जिस समय स्वामी योगेश्वरानन्द के सम्मुख तोरमाण की पत्नी से उत्पन्न पुत्र की समस्या आयी उस समय देश की यह स्थिति थी। योगेश्वरानन्द ने तोरमाण की सैनिक योग्यता का अनुमान लगा लिया था। वे चाहते थे कि उसको स्कन्द के स्थान पर सैनिक अधिकारी बनाकर हूणों से युद्ध को चालू रखा जाए।

उस समय आनन्द वैरागी ने स्वामीजी को सूचना दी कि मालवा का सिंहासन खाली होने वाला है।

स्वामी योगेश्वरानन्द ने निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार तोरमाण को मालवा पहुँचाकर उसको वहाँ का सेनापति नियुक्त किया जाए।

आनन्द वैरागी ने भी तोरमाण के पुत्र को ईश्वरीय विभूति से विभूषित देखा तो उसे मालवा में स्थिर करने के लिए उचित वातावरण निर्माण करते हुए स्वयं मालवा के लिये प्रस्थान कर गया।

आनन्द वैरागी ने यात्रा प्रारम्भ ही की थी कि श्रीनगर वाली घटना घटित हो गई। उसने अपने योगबल से यशोधर्मन की रक्षा का प्रबन्ध किया और स्वयं मालवा के लिये प्रस्थान किया।

राज्यप्रासाद की बैठक में उस रात्रि को हुई घटना के उपरान्त महाराज प्रवरसेन अपनी पत्नी के प्रोत्साहन पर यादवेन्द्र को बन्दी बनाकर उधमपुर के दुर्ग में रखने का प्रबन्ध करने के लिये अपने कार्यालय में चला गया था।

उसने सारा प्रबन्ध ठीक-ठीक कर दिया। इस कार्य में उसको दो घड़ी का समय लग गया। उसके बाद वह विश्राम करने के लिये अपने शयनागार को गया।

प्रातःकाल जब उसने प्रतिहार को भेजा कि वह तोरमाण को बुलाकर लाये, जिससे कि वह उसको राज्यकार्य सम्हाल दे तो प्रतिहार ने आकर उसको बताया कि युवराज के आगार रिक्त हैं। वहाँ न युवराज हैं, न उनकी पत्नी है और न पुत्र ही है।

दूसरी ओर यादवेन्द्र को उसी रात बन्दी बनाकर उधमपुर दुर्ग में भेज दिया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस वृद्धावस्था में महाराज प्रवरसेन को पुनः सारा राजकाज अपने हाथ में लेना पड़ा। उसने रणवीरसिंह को सेनापति बनाकर उसको सेना का संगठन करने के लिए कह दिया।

तोरमाण ने रातोंरात प्रबन्ध किया और तीव्रगामी रथ पर सवार होकर सपरिवार मालवा के लिये प्रस्थान कर दिया।

आनन्द तो सायंकाल ही उधर को चल निया था।

कश्मीर के नये सेनाध्यक्ष रणवीर को उन हूणों से युद्ध करना पड़ा जो वितस्ता और सिन्धु नदी के मध्य में रह गये थे। उन हूणों ने जब भारतीय सेना को लौटते देखा तो पुनः अपने को संगठित करने लगे। इससे कश्मीर के सेनाध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रणवीर को अपना पद सम्हालते ही हूणों के साथ जूझना पड़ गया। हूण भी भारत के मैदानों से कश्मीर की ओर बढ़ने लगे।

पुरु को पाटलिपुत्र में यह समाचार मिला कि युद्ध को अनिर्णीत छोड़कर भारतीय सेनायें युद्धभूमि से लौट रही हैं। इससे उसको परेशानी होने लगी थी। इस समय उसके घर में भी एक सन्तान उत्पन्न हो चुकी थी। अब उसको अपनी तथा अपनी सन्तान के भविष्य के विषय में चिन्ता होनी स्वाभाविक थी।

पुरु का श्वसुर सुरेन्द्रमणि भी युद्ध पर गया हुआ था। वह सौराष्ट्र में हूणों का विरोध कर रहा था। उसको भी जब युद्धविराम की सूचना मिली तो वह इसका अर्थ समझने में असमर्थ रहा। वह आशा कर रहा था कि ज्यों ही हूणों की मुख्य सेना सिन्धु नदी के पार धकेल दी जायेगी तो सौराष्ट्र के हूण अपने को अरक्षित जानकर स्वयं ही वापस हो जायेंगे।

सुरेन्द्रमणि के लिये युद्धविराम की यह घोषणा अप्रत्याशित थी। सौराष्ट्र में हूण सेनापति ने सुरेन्द्रमणि को सन्देश भेजा कि युद्ध बन्द हो गया है और भारत के सेनाध्यक्ष से यह निश्चय हुआ है कि वह उसके अधीन सौराष्ट्र का अधिपति होगा।

सुरेन्द्रमणि ने इस समाचार की पुष्टि के लिये अपना एक सन्देशवाहक स्कन्द-कुमार के पास लवपुर भेजा। उस समय स्कन्दकुमार लवपुर में ही था। दो मास बाद सुरेन्द्रमणि को समाचार की पुष्टि मिली कि हूण-नरेश कुषाण को सौराष्ट्र का अधिपति नियुक्त कर दिया गया है और युद्धविराम हो गया है।

इस सूचना के मिलते ही सुरेन्द्रमणि ने भी अपनी सेना को कौशाम्बी के लिये कूच करने की आज्ञा दे दी।

सुरेन्द्रमणि ने सेना को तो कौशाम्बी भेज दिया, किन्तु वह स्वयं पाटलिपुत्र के लिये चल पड़ा। वह समझ रहा था कि स्कन्द की मति में कुछ विकृति आ गई है। सम्भवतया वह पुरु के साथ वहाँ किसी प्रकार का विवाद न कर बैठे। अतः वहाँ की स्थिति को देखने के लिये उसने पाटलिपुत्र के लिये प्रस्थान किया।

स्कन्द के पाटलिपुत्र पहुँचने से एक मास पूर्व ही सुरेन्द्रमणि पाटलिपुत्र पहुँच गया था। हूण सैनिकों के सिन्धु नदी पार करने तक के लिये स्कन्द पंचनद में ही रुक गया था।

उधर पुरु को भी पाटलिपुत्र में युद्धविराम की सूचना प्राप्त हो गयी थी। जब पुरु को सुरेन्द्रमणि के पाटलिपुत्र पहुँचने का समाचार मिला तो वह उसके स्वागत के लिये राजप्रासाद के द्वार पर गया और उसको अपने आगारों में ले गया।

वत्सला को उसके पिता के आने का समाचार दिया गया तो वह भी अपने एकवर्षीय पुत्र को लेकर पिता से भेंट करने के लिये आ गयी।

कुशल समाचार पूछने पर विदित हुआ कि सुरेन्द्रमणि सीधा युद्धभूमि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाटलिपुत्र ही आ रहा है। वह कौशाम्बी गया ही नहीं है। तब वत्सला ने उसको बताया कि उसको प्रतिमास कौशाम्बी का समाचार मिलता रहता है, वहाँ सब प्रकार से कुशल है।

वत्सला ने यह भी बताया कि मन्त्रिमण्डल ने सदाशिव के अपराध को क्षमा कर दिया है और उसको पुनः अपने मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर लिया है।

कौशाम्बी के समाचार सुनकर सुरेन्द्रमणि को सन्तोष हुआ। पुरु ने पूछा, "आपको वहाँ का समाचार नहीं मिलता रहा ?"

"युद्धभूमि में इतना अवकाश ही कहाँ था।"

वत्सला बोली, "आपको शीघ्रातिशीघ्र कौशाम्बी लौट जाना चाहिये।"

सुरेन्द्रमणि ने कहा, "मुझे तो तुम्हारी चिन्ता थी। कौशाम्बी में तो मुझे अपने मन्त्रिमण्डल पर विश्वास था, किन्तु यहाँ की राजमाता पर मुझे सन्देह था। मुझे यह सूचना मिली है कि वह स्त्री हत्यारी है। उसने अपने पुत्र की पत्नी और उसके पुत्र की भी हत्या करवा दी है। इस कारण यहाँ की चिन्ता से मुक्त होने के लिये मैं प्रथम यहीं चला आया।"

वत्सला ने कहा, "हमें इनके बड़े भाई अपनी माता के विषय में सतर्क कर गये थे। इसलिये हम सावधान रहे।"

"मैं चाहता था कि मगध राज्य में तुम्हारा स्थान सुरक्षित हो जाए, तभी मैं यहाँ से जाऊँ।"

पुरु बोला, "वह तो सुरक्षित है। आपको उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हम दोनों की यह योजना है कि भैया के युद्ध से वापस होते ही यह राज-पाट हम उनको सौंपकर गंगा द्वार में जाकर रहेंगे। हमें राज्य की आवश्यकता नहीं है।

"यदि नेपाल राज्य में पुनः मेरी सेवाओं की आवश्यकता पड़ गयी तो मैं वत्सला को लेकर नेपाल भी जा सकता हूँ।"

यह सुनकर सुरेन्द्रमणि ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि मैं मगध में तुम्हारा स्थान सुरक्षित कर दूं।"

"मुझे यहाँ नहीं रहना है।"

"आखिर क्यों ?"

"मैं इसके लिये स्कन्द से झगड़ा करना नहीं चाहता।"

"मैं उसके लौटने तक यहाँ रहने का विचार करता हूँ।"

"यदि आपकी यही इच्छा है तो हम आपके लिये अतिथिगृह में व्यवस्था कर देते हैं।"

"नहीं। मैं लक्ष्मी पन्थागार में टिका हूँ। मैं वहीं पर स्कन्द के लौटने की प्रतीक्षा करता रहूँगा।"

पुरु ने अपने श्वसुर से अधिक बातचीत कहीं की, किन्तु अपनी पत्नी वत्सला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसका विचार-विनिमय हो चुका था कि राज्य-कार्य की अपेक्षा वह अपना शेष जीवन ज्ञानार्जन में व्यतीत करेगा।

पुरु को राज्य की अपेक्षा तो सैनिक-शिविर में ही अधिक सुख प्राप्त होता था। उसकी पत्नी भी यह जानती थी।

शेष बचे हूणों को सिन्धु पार कराने में स्कन्द को तीन मास लग गये। इस कारण महाराज सुरेन्द्रमणि के पाटलिपुत्र पहुँचने के एक मास बाद वह पाटलिपुत्र पहुँच पाया था। स्कन्द के पाटलिपुत्र पहुँचने के उपलक्ष्य में नगर में दीपमाला की गयी। स्कन्द विजयी होकर लौट रहा था। अब उसके राज्याभिषेक के विषय पर भी विचार होने लगा था।

इस बार जब विचारगोष्ठी हुई तो उसमें महाराज सुरेन्द्रमणि भी विद्यमान था। यदि अभाव था तो पण्डित शिवकुमार का। स्कन्द को यह सूचना मिल गयी कि पण्डितजी ने संन्यास ले लिया है और वे इस समय मार्तण्ड में निवास करते हैं। उसने लवपुर से ही स्वामी योगेश्वरानन्दजी को सन्देश भेजा था कि वह और पुरु पाटलिपुत्र में उनकी अपेक्षा रखते हैं।

स्वामी योगेश्वरानन्द ने इसके उत्तर में लिखा कि उसने निश्चय कर लिया है कि अब वह पाटलिपुत्र में कभी पग नहीं रखेगा।

इस प्रकार उस पारिवारिक गोष्ठी में पण्डित शिवकुमार और आनन्द वैरागी दोनों ही उपस्थित नहीं थे।

गोष्ठी की मुखिया महारानी पद्मावती ही थीं। जब सब लोग वहाँ एकत्रित हो गये तो उन्होंने कहा, "स्कन्द ! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे राज्याभिषेक की तिथि का निश्चय करने से पूर्व तुम्हारे भाई पुरु का स्थान निश्चय कर लिया जाना चाहिये।"

स्कन्द ने पूछा, "मां ! तुम क्या चाहती हो ?"

"मैं चाहती हूँ कि पुरु को मगध के पूर्वांश का शासक निश्चित कर दिया जाय।"

स्कन्द और सुरेन्द्रमणि दोनों के लिये प्रस्ताव अप्रत्याशित था। स्कन्द ने पूछा, "शासक अथवा अधीनस्थ राजा ?"

"मैं तो स्वतन्त्र शासक नियुक्त करने के विषय में कह रही हूँ। वह तुम्हारे साथ कैसा सम्बन्ध रखे, यह उस पर छोड़ दिया जाए।"

इस अवसर पर पुरु ने कहा, "माताजी ! मुझे राज-काज की लालसा नहीं है।"

"तो राजकुमारी से विवाह क्यों किया था ?"

"माताजी ! हम दोनों की रुचि समान है।"

"परन्तु मैं उससे पुत्री के समान स्नेह करने लगी हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्री राजरानी का-सा जीवन व्यतीत करे।"

सुरेन्द्रमणि इस पारिवारिक परिस्थिति को समझने में असमर्थ रहा। वह राजमाता का मुख देखता रहा।

पुरु ने राजमाता को उत्तर देते हुए कहा, "माताजी! राज्य की इच्छा के बिना तो राज्य सुखकारक नहीं हो सकता।"

स्कन्द बोला, "भैया! अभी तुम लोगों की संन्यास लेने की आयु नहीं है। इसके साथ ही मैंने निश्चय किया है कि मैं अब विवाह नहीं करूँगा। इस प्रकार तुम्हारा पुत्र नरसिंह ही अब इस राज्य का राज्याधिकारी होगा। यदि तुम और नरसिंह की माँ वन को चल दिये तो फिर तुम्हारा पुत्र किस प्रकार राज्य का अधिकारी बन सकेगा?"

सुरेन्द्रमणि को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वत्सला ने भी इस पर विचार किया और बोली, "यदि बड़े राजकुमार विवाह नहीं करते तो हमारा गंगाद्वार पर जाकर शेष जीवन बिताने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।"

पुरु ने स्कन्द से पूछा, "दादा! ऐसा क्यों?"

"कारण तो है, किन्तु मैं बताना नहीं चाहता।"

इससे पद्मावती चिंतित हुई। उसने कहा, "अभी तुम्हारी विवाह करने की आयु पार तो नहीं हुई है। मेरे प्रस्ताव से भी तुम्हारे विवाह का विरोध नहीं होता। मैं तो अनजाने में पूर्वकृत पापों के प्रायश्चित्त के रूप में यह प्रस्ताव कर रही थी। मैं विगत दो वर्ष निरन्तर वत्सला बेटी की संगति का सुख भोग चुकी हूँ। उससे मेरा स्नेह हो गया है और मैं चाहती हूँ कि उसको उसका प्राप्य मिले जिससे कि वह सुखभोग कर सके।"

स्कन्द बोला, "माँ! तुम ठीक कह रही हो, किन्तु मेरे विवाह न करने और तुम्हारा अपनी पुत्रवधू के प्रति पुत्रीवत् स्नेह का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों पृथक्-पृथक् हैं।"

पद्मावती पुरु से कहने लगी, "पुरु! अभी तुम्हारी वानप्रस्थ की आयु नहीं है। इसलिए तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लो। कहीं भी रहकर जो कुछ भी लोक-कल्याण का कार्य करोगे, उसमें तुम्हारा अपना कल्याण होगा।"

पुरु अपनी पत्नी वत्सला की ओर देखने लगा। वह बोली, "माताजी के प्रस्ताव में अभी तो ऐसी कोई बात है नहीं जो कि आपत्तिजनक हो। यदि भविष्य में ऐसी कोई बात हुई तो फिर उस समय विचार कर लिया जायेगा। तब हम अपने व्यवहार पर भी पुनरावलोकन करने के लिए स्वतन्त्र होंगे।"

पुरु ने इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा।

इसके बाद राज्याभिषेक की तिथि और उसके विधि-विधान के विषय में विचार होने लगा। यह कोई अधिक विचार-विनिमय का विषय नहीं था। स्कन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोला, "यह कार्य तो पुरोहितजी का है। उनसे उपयुक्त तिथि और विधि-विधान पूछकर उसकी सूचना महामात्य राघवेन्द्रजी को देकर घोषणा एवं व्यवस्था करवा दी जाए।

"कल मैं महामात्य से विचार-विमर्श कर पुरु भैया के विषय में भी घोषणा करवा दूंगा।"

स्कन्द ने इस पारिवारिक गोष्ठी का विवरण तथा उसमें अपनी माता का व्यवहार आदि सारा कुछ लिखकर स्वामी योगेश्वरानन्दजी के पास भेज दिया। उसने अपने पत्र में यह भी लिखा कि अब उनको पाटलिपुत्र में न आने के विचार के लिए कोई आधार नहीं रह गया। अतः वे तुरन्त आकर उनका मार्गदर्शन करें।

पत्र को उसने एक तीव्रगामी अश्वारोही को देकर मार्तण्ड के लिए विदा किया। पत्रवाहक चालीस दिन बाद मार्तण्ड से लौटा तो उसने सूचना दी कि सम्पूर्ण कश्मीर में हूण प्रविष्ट हो गये हैं और वहाँ का राज्य प्रभावहीन हो गया है। हूणों ने वहाँ के निवासियों पर प्रत्येक प्रकार के अत्याचार करने आरम्भ कर दिये हैं। नारी की लाज लूटी जा रही है। महाराज का सेनापति रणवीरसिंह वीरगति को प्राप्त हो गया है और अब कौन सेनापति है इसका ज्ञान सेना को भी नहीं है।

सबसे बड़ी बात यह है कि मार्तण्ड को उजाड़ दिया गया है। वहाँ मन्दिर गिराकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया।

स्कन्द के राज्याभिषेक का समय था अतः उससे निवृत्त होने के उपरान्त ही स्कन्द ने हूणों के सेनाध्यक्ष मिहिरकुल को एक भर्त्सनापूर्ण पत्र लिखा, परन्तु उसका उसके पास कोई उत्तर ही नहीं आया।

उस समय एक अन्य स्थिति भी उत्पन्न हो गयी। स्कन्द के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने के लिए दो-चार नरेश ही आये थे। शेष कोई नहीं आया। इसका यही अभिप्राय समझा गया कि उन्होंने मगध से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया है।

इस विषय में जाँच-पड़ताल की गयी। उसका निष्कर्ष यह निकला कि उनसे पूछे बिना स्कन्द ने जो युद्धविराम की घोषणा की, वह उसकी भूल थी। उन्होंने स्कन्द को मूर्ख मान लिया और इस प्रकार उस मूर्ख नरेश से अपना संबंधविच्छेद कर लिया। अब वे स्वतन्त्र हो गये थे।

: ८ :

हूणों से होने वाले युद्ध के समय मालव-नरेश की आयु अस्सी वर्ष की थी, इस कारण वह स्वयं युद्ध में सम्मिलित होने में असमर्थ था। तदपि वीरसिंह सेनापति के अधीन उसकी सेना मगध की सेनाओं के साथ राजस्थान में हूणों के प्रवेश को रोकने के लिए नियुक्त थी। उन्हें अपने कार्य में पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालव सेनापति अपना कार्य नियत रीति से कर रहा था, किन्तु जब उसको विदित हुआ कि बिना उसके परामर्श किये युद्धविराम की घोषणा कर दी गयी है तो इससे वह भी रुष्ट हो गया। उसे निराशा भी हुई। इसलिए वह अपनी सेना लेकर मालव की राजधानी को लौट आया।

वीरसिंह जब मालवा पहुँचा तो मालव-नरेश नरहरिसिंह प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। उसको वीरसिंह के सहसा वहाँ पहुँच जाने पर आश्चर्य हो रहा था। वीरसिंह ने भारतीय सेना के सर्वोच्च अध्यक्ष स्कन्दकुमार की युद्धविराम की घोषणा के विषय में बताया और उसके साथ ही यह भी बता दिया कि हूण अभी भी युद्ध के विचार से सुदृढ़ स्थिति में हैं। इससे मालव-नरेश को बड़ा आघात-सा लगा। वह रुग्ण होकर शय्याग्रस्त हो गया।

इसी समय योगिराज आनन्द वैरागी वहाँ पहुँच गये। यह संयोग की बात थी कि उसी दिन कश्मीर का युवराज तोरमाण भी अपने परिवार के साथ वहाँ पहुँच गया था। तोरमाण मध्याह्न के समय पहुँचा था और वैरागीजी सायंकाल पहुँचे थे।

तोरमाण राजधानी के एक पन्थागार में जाकर ठहर गया। वह विचार करने लगा कि किस प्रकार वह मालव-नरेश से भेंट करे और किस प्रकार अपना परिचय देकर मालव में आने का कारण बताये। उसी समय उसने योगिराज को पन्थागार के द्वार पर पन्थागार में प्रविष्ट होते देख लिया।

तोरमाण सब कुछ छोड़कर उनके चरणस्पर्श करने द्वार की ओर दौड़ा तो आनन्द स्वामी ने जब तोरमाण को वहाँ विद्यमान पाया तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा, "कहो, परिवार को भी साथ ही लाये हो?"

"जी महाराज! मैं आज मध्याह्न काल यहाँ पहुँचा हूँ। अभी तक महाराज से भेंट नहीं की है। मैं किसी साधन के विषय में विचार कर रहा था।"

"तुम इसकी चिन्ता छोड़ो। मेरा महाराज से परिचय है। मैं यह समस्या सुलझा दूँगा। मैं आज ही उनसे भेंट करने का यत्न करूँगा।"

इससे पूर्व भी आनन्द वैरागी मालव में आ चुके थे और यह उनकी प्रेरणा का ही परिणाम था कि मालव-नरेश मगध साम्राज्य से सम्बद्ध न होते हुए भी स्कन्द के नेतृत्व में उन्होंने युद्ध में अपनी सेना को भेज दिया था।

मालव-नरेश को जब विदित हुआ कि आनन्द स्वामीजी पधारे हैं तो उन्होंने उनको शय्या के समीप ही बुलवा लिया।

आनन्द स्वामी भीतर गये और महाराज को आशीर्वाद देकर उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछने लगे।

महाराज ने कहा, "अभी तक तो मैं भारत की विजय सुनने की आशा में जीवित था, परन्तु ज्यों ही मुझे सन्धि और युद्धविराम की सूचना मिली है, मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साह विलीन हो गया और मैंने शय्या का आश्रय ले लिया है। अब तो भगवत् भजन में ही अपने श्वास गिन रहा हूँ।"

आनन्द ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, "महाराज ! चाहे कोई कितना ही सिद्ध क्यों न हो जाए, परन्तु मनुष्य के कर्म पर किसी का नियन्त्रण नहीं होता।

"एक बात का विस्मय तो मुझे भी हो रहा है कि स्कन्द ने मेरे और पण्डित शिवकुमारजी की सम्मति से युद्ध आरम्भ किया था, किन्तु जब उसने युद्धविराम किया तो उस समय हमसे पूछना तो दूर, हमें उसकी सूचना भी नहीं दी।

"तदपि जब तक युद्ध चलता रहा तब तक स्कन्द की युद्ध-कुशलता में न किसी प्रकार की शिथिलता आयी और न किसी प्रकार की न्यूनता ही दिखाई दी थी।

"मैं और पण्डित शिवकुमार, जो अब संन्यास ग्रहण कर स्वामी योगेश्वरानन्द भी बन गये हैं, भी समझ नहीं पाये कि यह सब किस प्रकार हो गया है। मुझे अभी पाटलिपुत्र जाने का अवसर नहीं मिला है। मुझे सर्वाधिक आपके स्वास्थ्य की चिन्ता थी।

"युद्धविराम का समाचार मुझे श्रीनगर में मिला था। मैं वहाँ से सीधा इधर ही आ गया हूँ।

"मुझे समाचार मिला है कि स्कन्दकुमार पाटलिपुत्र लौट आया है। मैं यहाँ से पाटलिपुत्र ही जाने वाला हूँ। वहाँ जाकर मैं देख पाऊँगा कि उसमें पुनः युद्ध आरम्भ करने का सामर्थ्य है भी अथवा कि नहीं।

"अभी तो मुझे यहाँ की चिन्ता है।"

महाराज बोले, "मैंने सेनापति वीरसिंह को कल बुलाया है। मैं चाहता हूँ कि यहाँ राज्य-परिषद् की नियुक्ति कर दूं।"

इस अवसर पर आनन्द स्वामी ने कहा, "मैं इस विषय पर ही एक सुझाव देने के लिए यहाँ आया हूँ। कश्मीर का सेनापति, जिसने कश्मीर में हूणों के प्रवेश को सफलतापूर्वक रोका था, मेरे साथ आया, यदि आप उसे उस राज्य-परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त कर दें तो मैं समझता हूँ कि इससे देश तथा जाति का कल्याण होगा। मुझे इसी में भारत का भविष्य उज्ज्वल भी दिखायी दे रहा है।"

"वहाँ का सेनापति तो महाराज प्रवरसेन का बड़ा पुत्र था ?"

"हाँ, वही। गृहकलह के कारण उसने कश्मीर के सिंहासन की लालसा को त्याग दिया है और मेरे निर्देश पर यहाँ चला आया है।"

"आप इसमें क्या भविष्य देख रहे हैं ?"

आनन्द स्वामी बोले, "यदि आप आँख मूँदकर चिन्तन करने लगें तो आपको भी भारत का भविष्य दिखायी देने लगेगा।"

इसी प्रकार इससे पूर्व भी आनन्द स्वामीजी ने महाराज को भविष्य के दर्शन कराये थे। इस बार भी जब आनन्द स्वामीजी ने ऐसा कहा तो उन्होंने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखें मूँद लीं।

क्षण-मात्र में ही उन्होंने देखा कि भयंकर युद्ध हो रहा है। उसमें उन्होंने देखा कि एक ओजस्वी और शौर्यवान् युवक उस युद्ध का नेतृत्व कर रहा है।

मगध की सेनायें इस बार उसके साथ नहीं हैं। पंचनद क्षेत्र, स्थाणेश्वर, सिन्ध, कश्मीर की सेनायें ही उसके साथ युद्ध कर रही थीं। महाराज देख रहे थे कि इस बार विशाल संख्या में हूणों की हत्या हो रही थी। घोर युद्ध के उपरान्त तैरते-डूबते-से हूण सिन्ध नदी के पूर्वी तट से पश्चिमी तट को पलायन करते दिखाई दिये थे।

महाराज ने यह भी देखा कि हूणों का सम्राट, जिसकी घनी दाढ़ी-मूँछ थी, उस युवक के चरणस्पर्श कर रहा था। वह उस युवक से जीवनदान की याचना कर रहा था।

युवक ने उस हूणों के सरदार को अपने चरणों से उठने की आज्ञा दी और उसने उसको कहा, "जीवनदान तो दिया जा सकता है, परन्तु राज-सिंहासन नहीं दिया जा सकता। तुमने राजसिंहासन का दुरुपयोग किया है, इसलिए इस बार अब वह तुमको नहीं दिया जायेगा।

"भूपाल दुर्ग में आजीवन वन्दी के रूप में रहोगे।"

यह भविष्य देखकर महाराज नरहरिसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने आँखें खोलकर पूछा, "कहाँ है वह युवक?"

"वह परमात्मा की विभूति अभी तो केवल दो वर्ष की ही है। वह युवराज तोरमाण के साथ है। महाराज! यह जो आपने देखा, वह अवश्यम्भावी है। स्कन्द वीर था, किन्तु बुद्धि का दुर्बल सिद्ध हुआ। यह विभूति ईश्वर की देन प्रतीत होती है। आज से बीस वर्ष के बाद वह भारत के भाल पर लगी इस कालिमा को धोकर उसे उज्ज्वल कर देगा। मुझे ऐसा ही भविष्य दिखाई दे रहा है।"

"आप मुझे उसके दर्शन करा दीजिए। उसके बाद मैं कल राज्यपरिषद् के गठन में परिवर्तन कर दूंगा।"

आनन्द स्वामी ने कहा, "महाराज! यह योजना ईश्वरीय योजना है। परन्तु फिर भी मनुष्य का जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र होता है। उसके कर्मों पर तो परमात्मा का भी नियन्त्रण नहीं होता। हाँ, उस पर यदि किसी बात का नियन्त्रण हो सकता है तो वह उसकी शिक्षा-दीक्षा का ही नियन्त्रण हो सकता है।

"स्कन्द की शिक्षा हीन होने के कारण ही वह युद्ध को अन्तिम सफल परिणाम तक नहीं पहुँचा सका।

"मैंने और पण्डित शिवकुमारजी ने प्रबल प्रयास से भारत की सैन्य शक्ति को एक ध्वज के तले करके असुरों की बाढ़ को रोका तो है, परन्तु हम उसको निस्तेज नहीं कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब यह मेरा द्वितीय प्रयास है। मैं समझता हूँ कि यदि यह बालक पन्द्रह वर्ष तक मेरी शिक्षा के अधीन रहा तो फिर इसके हाथों निश्चित ही भारत का उद्धार होकर रहेगा।"

"फिर तो आप उसको शिक्षा दीजिए। हमें भी तो उसके दर्शन कराइये।"

"मैं कल प्रातः उसको अपने साथ लाऊँगा।"

इस प्रकार आश्वासन देकर आनन्द स्वामी वहाँ से चले आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल आनन्द स्वामी अपने साथ तोरमाण, उसकी पत्नी तथा पुत्र को लेकर महाराज नरहरिसिंह की शय्या के समीप पहुँच गये।

आनन्द ने परिचय कराते हुए कहा, "ये हैं कश्मीर सेना के सेनापति जिन्होंने आक्रमणकारी हूणों की पीठ पर पहुँचकर उनकी खाद्य-सामग्री रुकवा दी थी। इसके साथ ही हूणों के भारत-प्रवेश को भी उस समय इन्होंने अवरुद्ध कर दिया था। वास्तव में पहले वर्ष के युद्ध में हूणों की विजय को पराजय में परिवर्तित करने में इस वीर का शौर्य ही मुख्य कारण था।

"ये इनकी पत्नी पुष्पावती हैं। यह है इनका पुत्र यशोधर्मन।"

महाराज ने उठकर बालक को देखा। उन्हें वह वैसा ही दिखाई दिया, जैसा कि स्वामीजी ने बताया था।

महाराज ने कहा, "योगिराज! मैं आपके कथन पर सम्पूर्ण रात्रि विचार करता रहा हूँ। मैंने यह निश्चय किया है कि आज मध्याह्नोत्तर मैं इस बालक को गोद लेकर इसको मालव का उत्तराधिकारी घोषित कर दूँगा। तदनन्तर इस विषय को मैं राज्यपरिषद् के सम्मुख रखूँगा और फिर पूर्ण परिषद् के सम्मुख ही मैं आपको इस बालक का संरक्षक नियुक्त कर दूँगा।"

इतना निश्चय हो जाने के उपरान्त महाराज ने अपने मरणोपरान्त राज्य-कार्य के संचालनार्थ परिषद् का गठन किया और उसके सदस्यों की घोषणा कर दी।

परिषद् में छः व्यक्ति तो मालव के ही थे, किन्तु सातवाँ तोरमाण था। उन सबकी यथावत् गोष्ठी की गयी और फिर उनको राज्य के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ दिलायी गयी। इस प्रकार महाराज ने उस परिषद् को राज्य का कार्य-भार सौंप दिया।

राज्यपरिषद् की नियुक्ति का कार्य तो महाराज ने प्रातःकाल सम्पन्न कर दिया था। मध्याह्न के समय यशोधर्मन को धर्मपुत्र के रूप में ग्रहण करने का आयोजन किया गया।

दोनों कार्यवाहियों के पूर्ण होने पर समुस्थित समारोह में उन्होंने आनन्द स्वामी वैरागी को उस बालक का शिक्षक और संरक्षक भी नियुक्त कर दिया।

यह रीति-रिवाज और कार्यवाही पूर्ण हुए तीन दिन ही हुए थे कि महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरहरिसिंह का देहान्त हो गया।

आनन्द ने बालक को उसके माता-पिता के पास ही रखा और स्वयं वहाँ से चलकर पाटलिपुत्र की राह पकड़ी। उसको वहाँ की परिस्थिति तथा युद्ध-विराम के कारण को जानने की उत्कण्ठा थी।

जिस समय आनन्द स्वामी पाटलिपुत्र पहुँचे उस समय वहाँ स्कन्द के राज्याभिषेक का समारोह आयोजित किया गया था। केवल तीन नरेश ही इस समारोह में उपस्थित थे। उनमें से एक थे वैशाली गणराज्य के गणपति, दूसरे अयोध्या-नरेश और तीसरे कौशाम्बी-नरेश।

इसका यही अभिप्राय था कि हूणों के साथ युद्ध में विजय को स्कन्द ने साधारण-सी भूल करके पराजय में परिवर्तित कर दिया था। वे सब नरेश, जिनका उसको युद्ध में सहयोग मिला था, उससे इस कारण रुष्ट हो गये थे कि उनसे पूछे बिना ही उसने युद्धविराम की घोषणा कर दी थी।

यही कारण था कि स्कन्द के राज्याभिषेक का समारोह उत्साहवर्द्धक और उल्लासपूर्ण नहीं रहा।

राज्याभिषेक-समारोह के तुरन्त उपरान्त आनन्द ने राजप्रासाद पर पहुँचकर महाराज स्कन्दगुप्त से मिलने की इच्छा व्यक्त की।

स्वामीजी को तुरन्त भीतर बुला लिया गया।

स्वामीजी को पाटलिपुत्र में आये तीन दिन हो गये थे। उन्होंने स्वयं को प्रकट नहीं किया और वे वैरागियों के मठ में ही ठहर गये थे।

स्वामीजी के पधारने की सूचना पाकर स्कन्दगुप्त, राजमाता, पुरु और सुरेन्द्रमणि उनसे मिलने के लिये राजप्रासाद की बैठक में एकत्रित हो गये।

वैरागीजी के पहुँचने पर सबने उनके चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया और फिर स्कन्द ने कहा, "मैंने राज्याभिषेक की सूचना स्वामीजी महाराज के पास भेजी थी, किन्तु वे नहीं आ पाये।"

"महाराज ! उसका कारण तो यह है कि हूणों से सन्धि करते समय आपने स्वामीजी को विश्वास में नहीं लिया। उनके जीवन में उस सन्धि का अत्यधिक महत्त्व था। राज्याभिषेक तो भारत में नित्य होने वाली घटनाओं जैसी ही एक घटना माननी चाहिये।

"स्वामीजी पिछले पाँच वर्ष से अपनी इतनी वृद्धावस्था में भी अपने कल्याण के कार्य को स्थगित कर अपनी मातृभूमि को इन क्रूर हूणों के आक्रमण से बचाने के लिये प्रयास कर रहे थे। यह उनके प्रयास का ही फल था कि एक बार पुनः भारत के नरेशों ने मिलकर मगध के सम्राट् को सम्पूर्ण भारतवर्ष का नेतृत्व सौंप दिया था।

"परन्तु सन्धि के समय आपने उनको स्मरण तक नहीं किया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द यह सुनकर मौन हो गया।

राजा सुरेन्द्रमणि ने कहा, "युद्ध में उस समय सैनिकों का कुछ ऐसा व्यवहार हो गया था कि महाराजाधिराज यह भूल कर बैठे। जब अपने सैनिक सैकड़ों की संख्या में नित्य सैनिक-शिविर छोड़कर घरों को लौटने लगे तो स्कन्द ने भारत की इस बिखरती सेना को बटोरने का यत्न किया।"

आनन्द स्वामी बोले, "यह सब मैं सुन चुका हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सेना में यह रोग था, किन्तु इसकी चिकित्सा की जानी चाहिये थी। उसकी चिकित्सा तो की नहीं, अपितु इसके विपरीत महाराजा ने एक महारोग को आमन्त्रित कर लिया।

"जो-जो नरेश इस युद्ध में सहयोगी थे, उनकी अनुमति के बिना युद्धविराम करना और शत्रु से सैनिक-सन्धि कर लेना किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं कहा जा सकता।"

इस अवसर पर पुरु ने कहा, "भैया के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया था कि वे भारत-सम्राट हैं। इसलिये इस भले-बुरे के लिये वे ही उत्तरदायी हैं। यह भूल तो हमारे परिवार के रक्त में है। मेरी योगिराज से प्रार्थना है कि इसकी चिकित्सा का कोई उपाय कर हमें कृतार्थ कीजिये।"

"वह भूल तो अब हो चुकी है। उसका ही परिणाम है कि भारत-सम्राट के राज्याभिषेक के अवसर पर केवल तीन नरेश ही यहाँ उपस्थित थे। उनमें से भी एक तो सम्राट के भाई के श्वसुर हैं और दूसरे अपने नरेश-पद के लिये मगध का आभारी होने के कारण।

"इस प्रकार महाराजाधिराज का केवल एक ही सहयोगी यहाँ पर उपस्थित था, वह था वैशाली का गणपति। आगामी निर्वाचनों में वह भी गणपति निर्वाचित हो पायेगा अथवा नहीं, यह सन्देहास्पद है।"

इस स्पष्टोक्ति को सुनकर स्कन्द के पैरों तले से धरती खिसकती दिखाई देने लगी। वह जानता था कि योगिराज जो कह रहे हैं, वह अक्षरशः सत्य है और उसके पास उसका कोई उत्तर भी नहीं है।

स्कन्द ने नतमस्तक होकर कहा, "योगिराज! पुरु का कहना यथार्थ है। मेरे मस्तिष्क में अभिमान और गर्व समा गया था। मैं स्वयं को भारत का सम्राट समझने लगा था और मैंने यह अपना अधिकार समझा था कि युद्ध को चालू रखना अथवा समाप्त करना मेरे अधीन है।

"मैं अब समझ गया हूँ कि यह मेरी नितान्त भूल थी; किन्तु वह भूल तो अब हो चुकी है। अब तो उसके निराकरण का प्रश्न है।"

वैरागीजी बोले, "महाराज! इस भूल का निवारण अब नहीं हो सकता। वह अब आपके वश में नहीं रहा। इसका प्रबन्ध तो अब प्रकृति कर रही है। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है कि भारत की महिमा अभी भी ईश्वर के संरक्षण में है और ईश्वरीय शक्तियाँ इसका प्रवन्ध कर रही हैं।

"किन्तु इसमें अभी विलम्ब है। यदि आप और हम उस समय तक जीवित रहे तो देख लेंगे।"

"मेरे लिये अब क्या करणीय है, कृपया इसका निर्देश कीजिये।"

"अब तो आप यही कर सकते हैं कि अपने शेष जीवन में प्रजा को यथाशक्ति सुख प्रदान कीजिये। वास्तविक ब्राह्मणों का आरक्षण करो, उनके जीवनयापन की व्यवस्था करो, शेष सब परमात्मा के अधीन छोड़ दो।"

"भगवन्! मैं अपनी ओर से पूर्ण यत्न करूँगा।"

"ठीक है, मैं यही देखने आया था, इस समय आपकी मानसिक स्थिति कैसी है। उचित अधिकारियों से परामर्श किये विना युद्धविराम की घोषणा की जो भूल आपने की है वैसी भूल भविष्य में नहीं करना। जिनके सहयोग और सहायता से आपके उद्योग चलेंगे उनसे सदा परामर्श करते रहना।

"मैं यहाँ पुरु की अवस्था भी देखना चाहता था। मुझे यह देखकर सन्तोष हुआ है कि अब उसके अपने उसके साथ न्याय कर रहे हैं।"

"इसका अभिप्राय यह हुआ कि आपको यह विदित हो गया है कि हमने परस्पर क्या प्रवन्ध किया है?"

"मुझे पाटलिपुत्र में आये तीन दिन हो गये हैं। मैं आर्यपुरा स्थित वैरागी मठ में टिका हुआ हूँ। इन तीन दिनों में वह सब जानने का मैंने यत्न किया है जो विगत वर्षों में यहाँ होता रहा है। पिछले एक मास की तो बात ही नई है।"

स्कन्द बोला, "भगवन्! आज भोजन के अवसर पर नगर के प्रतिष्ठित जनों को आमन्त्रित किया गया है। लगभग दस सहस्र व्यक्ति उस अवसर पर उपस्थित होंगे। आपसे प्रार्थना है कि आज की भिक्षा यहीं ग्रहण कर लीजिये।"

"महाराज! आपके भोजन का निमन्त्रण रात्रि के समय का है। मैं उस समय तक गृहस्थों की वस्ती में नहीं रहता। मैं आपको अभी आशीर्वाद दे देता हूँ। यदि आपने मेरे परामर्श के अनुसार कार्य किया तो आजीवन राज्यसुख का भोग करेंगे।"

इतना कहकर आनन्द स्वामी ने सबको आशीर्वाद दिया और उठकर वहाँ से चल दिये। पुरु उठकर उनके साथ-साथ चला गया। उसने चलते-चलते पूछा, "योगिराज! मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

"मैं समझता हूँ कि आपका जीवन अभी लम्बा है। बीस-बाईस वर्ष के बाद, हूणों से जो युद्ध अनिर्णीत समाप्त हुआ है, वह फिर होगा। उसमें यदि आपने सहयोग दिया तो आपका कल्याण होगा।"

"आप अब कहाँ जा रहे हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अभी तो मैं अपने मठ में ही जा रहा हूँ। कल प्रातःकाल वहाँ से कश्मीर के लिये प्रस्थान करूँगा। वहाँ की दशा शोचनीय है। वहाँ क्या-क्या हो गया है और क्या होने वाला है, यह जानना चाहता हूँ। यदि मैं कुछ भी उसमें कर सका तो करने का यत्न करूँगा।"

"मैं अब आपसे कहाँ मिल सकता हूँ ? मैं तो अपने और अपने परिवार के कल्याण की कामना से मिलना चाहता हूँ।"

"कल सूर्योदय के समय आर्यपुरा स्थित वैरागियों के मठ में आ जाइये। मैं वहाँ से प्रातःकाल का अल्पाहार करके चल दूंगा। उस समय एक-दो घड़ी का समय मिल जायेगा, आप आ जाइये।"

पुरु उत्साहित लौटा और दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही वह अपने परिवार को लेकर वैरागियों के मठ के द्वार पर जा पहुँचा।

मठ के भीतर जब स्वामीजी के पास उसकी सूचना भेजी गयी तो स्वामीजी स्वयं मठ के द्वार पर आ गये। स्वामीजी ने कहा, "हाँ, बोलो कुमार ! क्या बात करना चाहते हो ?"

"महाराज ! मेरी उत्कट इच्छा थी कि मैं अपना शेष जीवन ध्यान में व्यतीत करूँ, किन्तु वर्तमान व्यवस्था के अनुसार मुझे पूर्वी मगध की सीमा, जो कि अंग राज्य से लगती है, वहाँ का राज्य दे दिया गया है। आप तो महाराज ! भविष्य-ज्ञाता हैं। कृपया बताइये, यह मेरे जीवन की ठीक दिशा है ?"

वैरागीजी मुस्करा दिये। उन्होंने कहा "कुमार ! यह बात नहीं है। मैं भविष्य देखता नहीं हूँ। मैं केवल भविष्य की कल्पना ही करता हूँ। यदि उस कल्पना में मेरे ही करने की कोई बात हो तो तब तो मैं उस कल्पना को कार्यान्वित कर देता हूँ। तदपि ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो कि किसी अन्य को लिप्त किये बिना सम्भव हो। यही कारण है कि मेरी कल्पना पूर्ण रूप में सफल नहीं होती।

"दूसरा पक्ष अपनी बुद्धि और मनोकामना के अनुसार उसमें सहयोग देने अथवा विघ्न डालने लग जाते हैं। सब मनुष्य कर्म करने में तो स्वतन्त्र हैं। इस कारण सब अपने-अपने मन की भावना और बुद्धि की प्रेरणा से कार्य करते हैं।

"मैंने और पूज्य पिताजी ने योजना बनायी थी कि भविष्य में होने वाले हूणों के आक्रमण का विरोध किया जाए। हूणों का इतिहास और उनके क्रियाकलाप तिब्बत में रहते हुए हम जान चुके थे। भारत पर आक्रमण कर भारत की सम्पत्ति और स्त्री-धन को लूटने की उनकी मनोकामना का भी हमें ज्ञान था। इसलिए उसका विरोध करने के लिए आज से सात वर्ष पूर्व हम दोनों वहाँ से भारत आ गये थे।

"हमने योजना बनायी और उस पर लगन तथा परिश्रम से कार्य भी किया। उसमें पर्याप्त सफलता भी हमको मिली। परन्तु उसका अन्त वैसा नहीं हुआ जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हम चाहते थे। दूसरों के सहयोग तथा हस्तक्षेप के कारण विघ्न पड़ गया। किन्तु बिना दूसरों के सहयोग के भी समाज का भला किया नहीं जा सकता और वह उनके सहयोग के बिना चल भी नहीं सकता।

"यही कारण है कि मनुष्य के सब कार्य सफल नहीं होते। तदपि व्यक्ति के प्रयास का फल मिलता है। वह फल है भविष्य में उसको श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर जीवन का मिलना।"

"तब तो फिर संसार को छोड़कर अपने-अपने हित-साधन में लग जाना चाहिये?"

"यह सम्भव नहीं। संसार में रहते हुए एकाकी जीवन सम्भव नहीं है। एकाकी प्रयास तो हो सकता है। उसमें अन्य जन सहयोग करते हैं अथवा नहीं करते, यह उनके विचार करने की बात है। भविष्य में व्यक्ति को फल भी उसके व्यक्तिगत कार्यों का ही मिलता है। कार्य करने में सब स्वतन्त्र होने से फल भोगने में भी सब स्वतन्त्र हैं।

"मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि अपने जीवन का ध्येय बनाओ। उसमें दूसरों का हस्तक्षेप भी होगा। उनके सहयोग को ग्रहण करो। परन्तु अपने लक्ष्य की सिद्धि में लीन रहो। सामूहिक फल मिलेगा, परन्तु जीवन के उपरान्त तो व्यक्ति को व्यक्ति के कार्य का ही फल प्राप्त होगा। इस कारण सत्य हृदय से ठीक कार्य करते जाओ।

"बस, यही जीवन-मीमांसा है। इसी पर विचार करो और फल पाओगे।"

पुरु और उसकी पत्नी बड़े ध्यान से यह सब सुन रहे थे। आनन्द ने बात समाप्त की और हाथ उठाकर उन्हें आशीर्वाद दे दिया। उसने कहा, "मेरे जाने का समय हो रहा है। आपके लिये मेरा आशीर्वाद है।"

आनन्द वहाँ से उठकर भीतर अपने डेरे में चला गया। पुरु आदि वहाँ से चलकर अपने घर आ गये।

उसी दिन आनन्द वैरागी पाटलिपुत्र से चला और एक मास में मार्तण्ड जा पहुँचा। मार्ग में माद्र देश में शान्ति थी। युद्ध के विनाशकारी प्रभाव को उसने देखा था। प्रजा अपना जीवन स्थिर कर रही थी। पर्वतीय प्रदेश प्रारम्भ होते ही विनाश की लीला और अधिक विकट दिखायी दी। गाँव के गाँव उजड़े हुए दिखायी देने लगे थे। मकान जल गये थे। स्थानीय जनता अदृश्य थी और मध्य जम्बूद्वीप के लोगों को वहाँ की उजड़ी भूमि को पुनः बसाने का यत्न करते उसने देखा था।

ऐसे भी चिह्न दिखायी दे रहे थे कि जैसे वे लुटेरे लूटपाट करने में स्वयं भी परस्पर लड़ पड़े हों। कश्मीर की परम्परा का पालन करने वालों के तो वहाँ चिह्न भी दिखायी नहीं देते थे। कहीं-कहीं स्त्रियाँ काम करती हुई दिखायी दीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द को देखकर वहाँ बसने वाले हूण अकेले साधु को निरन्तर उत्तर की ओर जाते देख विस्मय करते थे। वे सोचते थे कि उनकी विनाश-लीला में यह एक व्यक्ति अकेला कैसे बच गया होगा।

कभी कोई उसकी हत्या करने का यत्न भी करता था, परन्तु इसमें सफलता न मिलने पर वह देखता रह जाता था।

अनेक स्थानों पर इन विदेशियों के झुण्ड ने मिलकर भी आनन्द को मारने का यत्न किया, परन्तु इसमें सफल नहीं हो सके। तब वे एक-दूसरे का मुख देखते थे। वे परस्पर विचार भी करते थे कि उनके आक्रमण का इस व्यक्ति पर प्रभाव क्यों नहीं हो रहा है।

इस प्रकार आनन्द अपनी यात्रा निर्विघ्न करता जा रहा था और अब उसको देखकर हूणों के मन में भय समाने लग गया था।

मार्तण्ड तो सब स्वाहा हो गया था। वहाँ का मन्दिर, वहाँ का पुस्तकालय, वहाँ के स्वामीजी की कुटिया, उसके खण्डहर देख आनन्द विचार कर रहा था, उसके पिता इस समय कहाँ होंगे?

उस समय उसको स्मरण हो आया उससे पचास वर्ष पूर्व का अपने पिता का कश्मीर से पलायन। और यह स्मरण आते ही वह त्रिविष्टप की ओर चल पड़ा।

पुंगी क्षेत्र में पहुँचकर उसको लगा कि आक्रमणकारी वहाँ नहीं पहुँच पाये हैं। आनन्द वहाँ के पन्थागार में गया। वहाँ उसने देखा कि प्रांगण में प्रवरसेन धूप का आनन्द ले रहा है। उसने जब कश्मीर-नरेश को ध्यानावस्था में बैठे देखा तो उसका ध्यान भंग न करने के उद्देश्य से वह उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गया।

आनन्द सोच रहा था कि प्रवरसेन का ध्यान भंग होने पर वह स्वामी योगेश्वरानन्द के विषय में उससे पूछेगा। परन्तु उससे पूर्व ही स्वामी योगेश्वरानन्द स्वयं वहाँ पर उपस्थित हो गये। उन्होंने संकेत से आनन्द को बुलाया और दूर पन्थागार के एक आगार में ले जाकर उसे बैठाया और पूछने लगे, "इधर का मार्ग किसने दिखाया है?"

"किसी ने नहीं, स्वयं अपने मन से इधर चला आया हूँ।"

"वैसे तो मैं मार्तण्ड में ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु इन पशुओं को तुमसे पहले पहुँचते देख मैं इधर चला आया। मैं आशा कर रहा था कि तुम आओगे, परन्तु ये पहले आ गये और मेरे साथ ही इधर को चल दिये।"

"कश्मीर राज्य का क्या हुआ है?"

"तोरमाण के श्रीनगर से चले जाने पर और यादवेन्द्र के उधमपुर दुर्ग में बन्दी बनाये जाने के उपरान्त नये सेनाध्यक्ष ने सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया भी नहीं था कि झुण्ड-के-झुण्ड हूण कश्मीर को आग लगाते हुए आगे बढ़ते चले। सेना-पति मारा गया तो सेना भी भाग गयी। बस, फिर क्या था, व्यापक विनाशलीला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई।

"जब मार्तण्ड मन्दिर जल रहा था तो मैंने अपना दण्ड पकड़ा और इधर को चल पड़ा। ठीक उसी समय यह नरेश भी वहाँ पहुँच गया। मैं इसको अपने साथ ही ले आया हूँ।

"मुझे यहाँ आये दो मास हो गये हैं और मैं तब से ही यहाँ पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

"मैं मालवा में तोरमाण को सेनापति पद दिलवा तथा उसके पुत्र यशोधर्मन को वहाँ के राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर पाटलिपुत्र गया था। मैं यह देखना चाहता था कि स्कन्द में अभी सामर्थ्य शेष है अथवा नहीं। मुझे ऐसा लगा कि स्कन्द वीर होते हुए भी शिथिल बुद्धि का प्राणी है। उससे किसी प्रकार की आशा न रहने पर आपकी टोह में इधर आ गया हूँ।

"मार्ग में कुरुक्षेत्र, स्थाणेश्वर, माद्र आदि राज्यों में तो स्थिति सुधर रही प्रतीत होती है। पंचनद के सब गणतन्त्र राज्यों का संघ बन गया है और उन्होंने वितस्ता नदी के तट पर अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लिया है। परन्तु कश्मीर अरक्षित जान पड़ा। ये पशु उसमें घुसकर उन्होंने उसका विनाश कर दिया है।

"वहाँ के पूर्व निवासी बहुत बड़ी संख्या में तो पंचनद में भागकर चले गये हैं। कुछ नेपाल को गये और कुछ त्रिविष्टप चले गये हैं।

"किन्तु स्वामीजी, अब क्या होगा?" अन्त में आनन्द ने अपने पिता योगेश्वरानन्द से प्रश्न किया।

"मैं तो अब अपने जीवन के अन्त तक यहीं कैलाश के समीप रहूँगा। इस शरीर को त्यागने में अब अधिक समय नहीं लगेगा।

"तुमको चाहिये कि तुम मालवा जाकर उस बालक की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करो जिसके संरक्षण का भार तुमने लिया है। यदि उसकी शिक्षा-दीक्षा ठीक हो गयी तो मुझे लगता है, भारत पर छाये काले बादल भी भगाये जा सकेंगे। मैं अब लौटकर भारत नहीं जाऊँगा। मेरा जीवन अब बहुत ही अल्प रह गया है। कभी कौशाम्बी जाओ तो अपनी माताजी को मेरी ओर से धन्यवाद कर मेरी शुभ-कामना उन तक पहुँचा देना।

"अब तुम लौट जाओ। तुम्हारा काम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

आनन्द वहाँ से उठकर दक्षिणाभिमुख हुआ कि उसके सामने प्रवरसेन खड़ा दिखायी दिया। आनन्द ने पूछा, "तो महाराज! अब क्या विचार है?"

"मैं भारत लौटने की इच्छा कर रहा हूँ। मुझे लज्जा आ रही है कि मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं किया। मैं चाहता हूँ कि तोरमाण मेरा दायाँ हाथ बनकर दक्षिण-पश्चिम से उमड़ने वाली हूणों की बाढ़ को रोके। वह इस कार्य के योग्य था। परन्तु वह मेरी इच्छा के बिना श्रीनगर से चल दिया था। स्वामीजी ने बताया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका परिवार सुरक्षित है। मैं वहाँ जाकर पुनः अपनी जन्मभूमि के उद्धार की योजना बनाना चाहता हूँ।"

"श्रीमन्, मेरा आग्रह है कि आप अभी यहीं स्वामीजी की सेवा में रहिये। मैं मालवा जाकर कश्मीर के उद्धार की योजना बनाना चाहता हूँ। वहाँ की स्थिति सुधरते ही आपको वहाँ बुला लूँगा।

"आप तो बालक यशोधर्मन के सज्ञान होने तक कदाचित् जीवित न भी रहें, परन्तु मैं आशा करता हूँ कि मैं इन हूणों के साथ होने वाले अन्तिम युद्ध में यशोधर्मन का पथ-प्रदर्शन कर पाऊँगा।

"दूर पश्चिम में एक प्रबल जीवात्मा का प्रादुर्भाव हुआ है। वह मिहिर नाम से विख्यात हो रहा है। वह इन असुरों का नेतृत्व करता हुआ पुनः भारत की ओर अभिमुख होगा; परन्तु वह भारत की सुदृढ़ चट्टान यशोधर्मन से टकराकर चूर-चूर हो जायेगा।

"आप तब तक जीवित नहीं रह सकते। मैं इस शुभ अवसर को देखने की आशा कर रहा हूँ।"

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की विवेचना-प्रधान रचनाएं

न्याय दर्शन (भाष्य)	५४.००
ब्रह्मसूत्र सरल सुबोध भाषा-भाष्य—१	४०.००
ब्रह्मसूत्र सरल सुबोध भाषा-भाष्य—२	२४.००
ईश-केन-कठ उपनिषद् (भाष्य)	१५ ००
तैत्तिरीय उपनिषद् (भाष्य)	१५.००
प्रश्न—ऐतरेय उपनिषद् (भाष्य)	१५.००
माण्डूक्य—मुण्डक-उपनिषद (भाष्य)	१५.००
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म	१०.००
विज्ञान और विज्ञान	१५.००
वेद प्रवेशिका भाग-१	१५.००
वेद प्रवेशिका भाग-२	१५.००
वेदों में सोम	१०.००
श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)	३०.००
सांख्य दर्शन	४०.००
सृष्टि रचना	१८.००

राजनीति

धर्म तथा समाजवाद	२४.००
प्रजातान्त्रिक समाजवाद	२०.००
भारत : गांधी नेहरू की छाया में (सम्पूर्ण)	४०.००
राष्ट्र राज्य और संविधान	१०.००
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान—हिन्दू राष्ट्र	१५.००
हिन्दुत्व की यात्रा	१५.००
स्व अस्तित्व की रक्षा	१८.००
रक्षा किसकी—किससे	१८.००

संस्मरण

भाग्य-चक्र	१२.००
भाव और भावना	१२.००
मैं हिन्दू हूं	१५.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त के कुछ उपन्यास

अन्तरिक्ष में	२६.००
अनदेखे बन्धन	१६.००
अमृत-मंथन	१५.००
अमानत	२०.००
अवतरण	३२.००
अस्ताचल की ओर—१	४५.००
अस्ताचल की ओर—२	४०.००
अस्ताचल की ओर—३	४५.००
आशा-निराशा	१४.००
आह्वान	१८.००
इबलीस	१२.००
ईमानदार	२६.००
उन्मुक्त प्रेम	३०.००
कला	२४.००
कामना	१०.००
कालचक्र	१२.००
कौमुदी	१२.००
खण्डहर बोल रहे हैं (भाग-१)	२६.००
खण्डहर बोल रहे हैं (भाग-२)	२४.००
खण्डहर बोल रहे हैं (भाग-३)	२४.००
गुण्ठन	२८.००
गृह संसद	२०.००
चितेरे	८.००
जमाना बदल गया (भाग-१)	४०.००
जमाना बदल गया (भाग-२)	३५.००
जमाना बदल गया (भाग-३)	३५.००
जमाना बदल गया (भाग-४)	३५.००
झरोखे	२४.००
दस साल बाद	२०.००
देश की हत्या	३५.००
द्रष्टा	१५.००
धरती और धन	३५.००
नये विचार नयी बातें	१५.००

167686

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्तिक	२४.००
न्यायाधिकरण	२०.००
पतन का मार्ग	२५.००
पथिक	३०.००
परिभव	१०.००
परिवर्तन	१५.००
पूर्वग्रह	२४.००
प्रवृत्ति	२४.००
प्रवंचना	२२.५०
प्रेयसी	१२.००
फैलती छाया	१५.००
बिखरे चित्र (कहानी-संग्रह)	१०.००
भावुकता का मूल्य	२४.००
भूत और भविष्य	२४.००
महानगर	१२.००
मानव	२४.००
यात्रा का अन्त	२५.००
रीति रिवाज	१८.००
लेखा नाल शाहाँ दे	३०.००
लोक परलोक	२४.००
वाम मार्ग	२६.००
विकृत छाया	३५.००
विडम्बना	२०.००
विधुर	२४.००
विलोम गति	२४.००
विश्वास	१०.००
सब एक रंग	२०.००
सर्वमंगला (मंगला)	२०.००
साहित्यकार	१५.००
सुमति	५.००
संस्कार	२०.००
संस्खलन	२४.००
स्नेह का मूल्य	१२.००
स्वराज्यदान	३०.००
स्वाधीनता के पथ पर	३०.००
हम और तुम	१५.००

Central Library
167686
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
081
167886

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनॉट सरकस (मद्रास होटल के नीचे), नयी दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

वर्ग संख्या.................. GUR-A आगत संख्या 167886

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त

जन्म : १८९४

शिक्षा : एम०एस-सी०

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद्, दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar